वैदिक ज्ञान का आदित्य

जीवन से सम्बन्धित महत्वपूर्ण

वेद मन्त्र एवं श्लोक

समस्त विद्यार्थियों एवं सज्जनों

द्वारा अवश्य पठनीय

विधुशेखर त्रिवेदी I.A.S (अ. प्रा.)

वैदिक ज्ञान के प्रचार प्रसार हेतु

श्रीमती चम्पा देवी वैदिक संस्थान

एवं

पं. उमादत्त त्रिवेदी वेद विद्यापीठ

6B वृन्दावन लखनऊ 226029,

द्वारा प्रकाशित

अक्षय तृतीया प्रथम संस्करण 1000 प्रतियाँ

30.4.25

मुद्रक विनायक ऑफसेट, लखनऊ,

सर्वाधिकार सुरक्षित

मूल्य – 140.00 **विधुशेखर त्रिवेदी** I.A.S (अ. प्रा.)

अपनी असीम अनुकम्पा से हमारे वेद विद्यालय के
मन्दिर में स्वयं प्रकट होने वाली माँ वैष्णव देवी जी

माता गुरुतरा भूमेः पिता उच्चतरश्च खात्।

माता भूमि से भी महान होती है
तथा पिता आकाश से भी ऊँचा होता है।

स्व. पं. उमादत्त जी त्रिवेदी
एवं
स्व. श्रीमती चम्पा देवी त्रिवेदी

श्री विधु शेखर त्रिवेदी
एवं
श्री मती प्रेमा त्रिवेदी

ओ३म्

पूज्य पिता

स्व. पं. उमादत्त जी त्रिवेदी आयुर्वेदाचार्य

एवं

स्नेहमयी पूज्या माँ

स्व. श्रीमती चम्पा देवी त्रिवेदी

तथा प्रिय धर्म पत्नी

स्व. श्रीमती प्रेमा त्रिवेदी

की पावन स्मृति में

सादर समर्पित

विधुशेखर त्रिवेदी

वेदो नारायणः साक्षात् स्वयम्भूरिति शुश्रुम ।
वेदस्य चेश्वरात्मत्वात् तत्र मुह्यन्ति सूरयः ॥

महर्षि वेदव्यास

स्वयम्भू नारायण ही साक्षात् वेद के रूप में प्रकट हुये हैं। ईश्वरीय ज्ञान होने के कारण उनका वास्तविक अर्थ समझने में विद्वान् भी मोहित हो जाते हैं।

अर्थ कामेष्वसक्तानां धर्मज्ञानं विधीयते ।
धर्मं जिज्ञासमानानां प्रमाणं परमं श्रुतिः ॥ मनु. 2/13

धन सम्पत्ति तथा विषय वासना में लिप्त न होने वालों को ही धर्म का ज्ञान होता है। धर्म का वस्तविक रूप जानने के लिये वेद ही परम प्रमाण है।

वेदोऽखिलो धर्ममूलं स्मृतिशीले च तद्विदात् ।
आचारश्चैव साधूनामात्मस्तुष्टिरेव च ॥ मनु.2/6

समस्त वेद धर्म के मूल हैं। वेद एवं स्मृतियों के नियम, साधु जनों का आचरण तथा आत्मा को सन्तुष्टि देने वाले श्रेष्ठ कर्म धर्म के भाग हैं।

योऽवन्मन्येत ते मूले हेतुशास्त्राश्रयाद् द्विजः ।
स साधुभिर्बहिष्कार्यो नास्तिको वेदनिन्दकः ॥

मनु. 2/11

जो निरर्थक तर्कों द्वारा वेदों का अपमान करता है उसे श्रेष्ठ पुरुषों द्वारा समाज से बहिष्कृत कर देना चाहिये। वेदों की निन्दा करने वाला नास्तिक होता है।

विनम्र निवेदन

अपने जीवन के अन्तिम समय, 95वें वर्ष की आयु में, मैं यह पुस्तक वेदों के सिद्धान्तों, निर्देशों एवं उपदेशों को सरल भाषा में प्रस्तुत करने के उद्देश्य से लिख रहा हूँ ताकि इस विषय में कोई भ्रान्ति न रहे और नवयुवक अपने विचारों एवं जीवन को वेद की शिक्षाओं के अनुरूप बना सकें तथा वैदिक वाङ्मय, विशेष रूप से शुक्ल यजुर्वेद, अथर्व वेद (कुन्ताप सूक्त), शतपथ ब्राह्मण, ऐतरेय ब्राह्मण आदि में धूर्तों द्वारा मिलायी गयी निकृष्ट बातें जैसे गाय,बैल, घो ड़ा,भेड़, बकरे आदि का वध करके उनकी चर्बी, मेद, माँस मदिरा आदि से यज्ञों में आहुति दिये जाने को हटाये जाने के लिये दृढ़ संकल्प ले सकें।

उल्लेखनीय है कि गीता, वाल्मीकि रामायण एवं आध्यात्म रामायण आदि अनेक श्रेष्ठ ग्रन्थों के प्रक्षिप्त अंशों को भी हटाया जाना अत्यंत आवश्यक है।

शौनक ऋषि ने लगभग 2800 वर्ष पूर्व चरणव्यूह में लिखा था कि शुक्ल यजुर्वेद में 1900 मन्त्र हैं जबकि इस समय इसमें 1975 मन्त्र हैं। इससे स्पष्ट है कि इसमें 75 फ़र्जी मन्त्र बाद में मिलाये गये हैं।

इसके लगभग 400 वर्ष पश्चात् कात्यायन मुनि ने यजुर्वेद सर्वानुक्रमणी के प्रारम्भ में ही लिखा है कि –

'माध्यन्दिनीये वाजसनेयके यजुर्वेदाम्नाये सर्वे सखिले सशुकिय ऋषिदैवतछन्दा ꣳ स्यानुक्रमिष्यामः' अर्थात् खिल और शुक्रिय मंत्रो के सहित माध्यन्दिनि शुक्ल यजुर्वेद के ऋषि देवता और छन्दों की अनुक्रमणी बनाता हूँ।

खिल का अर्थ है बाद में मिलाये गये मन्त्र।

इससे स्पष्ट है कि सर्वानुक्रमणी लिखे जाने के पूर्व ही यज्ञों में मेद, मांस मदिरा की आहुतियाँ दिये जाने आदि से सम्बन्धित 75 फ़र्जी मन्त्र मिलाये जा चुके थे। इसी काल में शतपथ ब्राह्मण, ऐतरेय ब्राह्मण, मनुस्मृति, तथा गृह्य सूत्रों आदि में भी गम्भीर मिलावट की गयी, जिसका हम लोगों की अकर्मण्यता, उदासीनता तथा बुराइयों को मौन सहमति देने एवं यथास्थित बनाये रखने के स्वभाव के कारण आजतक निराकरण नहीं हो सका है।

उपरोक्त 75 मिलावटी मन्त्र गाय, बैल, भेड़, बकरे तथा घोड़े आदि की वपा अर्थात् चर्बी और माँस तथा मदिरा से यज्ञ में आहुति देने और उनका भक्षण करने एवं अश्वमेध यज्ञ में अश्लीलता से सम्बन्धित हैं, जब कि यजुर्वेद में अन्यत्र कहीं इस प्रकार के घृणित कर्मों का उल्लेख नहीं है।

महाभारत के शान्ति पर्व में कहा गया है-

सुरां मत्स्यान्मधुमांसमासवं कृसरौदनम्।
धूर्तैः प्रवर्तितं यज्ञे नैतद्वेदेषु कल्पितम्।
मानान्मोहाच्च लोभाच्च लौल्यमेतत्प्रकल्पितम्।

महा. शा. 264/9-10

यज्ञों में मद्य, माँस आदि का प्रचार तो लोभी, लोलुप और धूर्तों ने किया है, इसका वेदों में कोई उल्लेख नहीं है।

उक्त 75 फ़र्जी मन्त्रों का विवरण निम्न प्रकार है-

अध्याय	मन्त्रों की क्र. सं.	योग	विवरण
6 -	7 से 11, 13,14, 18 से 21	11	गाय, बैल आदि के वध से सम्बन्धित
19 –	14,15,16,32,33,79,83,95	8	सुरा पान से सम्बन्धित
21-	29 से 40,	12	मदिरा से आहुति दिया जाना
21-	41 से 47 तथा 59,60	9	मेद, माँस की आहुति दिया जाना
22-	7 तथा 8	2	अश्व द्वारा मूत्र आदि करने के लिये स्वाहा
23-	18 तथा 20 से 29	11	अश्व मेध यज्ञ के अश्लील मन्त्र
23-	37,40 से 42	4	अश्व को सुइयों से छेदना तथा काटना
25-	32 से 45	14	अश्व का माँस पकाना आदि
28-	11, 23, 46	3	बकरे के माँस से सम्बन्धित
35-	20	1	पितरों के लिये मेद की सरितायें बहाना

योग = 75

उपरोक्त सभी मन्त्र उन्के हिन्दी अर्थ सहित मेरी पुस्तिका**'शुक्ल यजुर्वेद में धूर्तों द्वारा मिलाये गये 75 निकृष्ट मन्त्रों को हटाये जाने हेतु सभी के सहयोग के लिये विनम्र प्रार्थना'** में दिये गये हैं। कृपया उन्हें वेद से हटाये जाने के लिये भरपूर प्रयास करने का कष्ट करें।

आज से लगभग 3500 वर्ष पूर्व का समय हमारे सामाजिक पतन का प्रारम्भिक काल प्रतीत होता है जब वेदों का अध्ययन

लगभग समाप्त होगया। इस काल में वेदों की दिखावटी प्रशंसा करते हुये ऐसे पौराणिक ग्रन्थ लिखे गये जिनमें अधिकांश असत्य एवं काल्पनिक वेद विरुद्ध बातें लिखी गयीं । इसके फल स्वरूप बौद्ध, जैन आदि नास्तिक धर्मों एवं वाममार्ग आदि की निन्दनीय परम्पराओं का सूत्रपात हुआ जिससे हम लोग श्रेष्ठ वैदिक विचारों को छोड़ कर एक भ्रमित एवं दुर्बल राष्ट्र बन गये और बर्बर विदेशी आक्रमण कारियों पर विजय प्राप्त नहीं कर सके।

पता नहीं क्यों, प्रत्येक धार्मिक ग्रन्ध में मिलावट करना हम लोगों का स्वभाव सा बन गया है। उदाहरणार्थ रुद्राष्टाध्यायी के अन्त में **सद्योजातम् से प्रारम्भ करके ईशानः सर्वविद्यानाम्....** तक सभी छः मन्त्र प्रक्षिप्त हैं। वास्तव में शिवपुराण के श्लोक यहाँ मन्त्र के रूप में सम्मिलित कर दिये गये हैं। प्रायः सभी विद्वान् इन्हें पढ़ते हैं किन्तु कोई इन्हें हाटाये जाने की बात नहीं करता।

सबसे अधिक आश्चर्यजनक बात शिवलिंग की है । किसी भी वेद, ब्रा ह्मण, उपनिषद् तथा गीता में शिवलिंग का उल्लेख नहीं है। इसके विपरीत श्वेताश्वतर उपनिषद् में स्पष्ट रूप से '**न तस्य लिंगम्** कहा गया है।

वाल्मीकि रामायण तथा आध्यात्म रामायण में भी कहीं शिवलिंग के पूजन का उल्लेख नहीं है। वाल्मीकि रामायण के

अन्त में केवल एक श्लोक में लिखा गया है कि रावण जहाँ जाता था, वहाँ अपने साथ स्वर्ण का शिवलिंग ले जाता था । इससे स्पष्ट है कि शिवलिंग का विचार आसुरी है, ऋषियों का नहीं। आध्यात्म रामायण के अन्त में जानबूझ कर यह असत्य बात मिला दी गयी है कि श्री राम ने करोड़ों शिवलिंगों की स्थापना करवायी । यदि यह बात सत्य होती तो द्वापर में श्री कृष्ण के द्वारा भी कहीं शिवलिंग के पूजन का उल्ले ख होता। इससे स्पष्ट है कि शिवलिंग की कल्पना ही वेद विरुद्ध है।

ऐतरेय ब्राह्मण में की गयी मिलावट का संक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार है -

ऐतरेय ब्राह्मण के प्रथम अध्याय की द्वितीय पञ्चिका के तृतीय खण्ड में कहा गया है कि सोम याग में दीक्षा प्राप्त करने वाला यजमान अपने को पशु रूप में आलम्भन के लिये समर्पित करने के बजाय, अपने स्थान पर अग्नि और सोम के लिये अग्निषोमीय पशु का आलम्भन अर्थात् वध करता है। ब्रह्मवादियों के अनुसार इस अग्निषोमीय पशु को शुक्ल- कृष्ण वर्ण का होना चाहिये किन्तु यह मत आदरणीय नहीं है। वस्तुतः मोटे पशु का आलम्भन करना चाहिये।

ब्रह्मवादियों के अनुसार हवि देने के पश्चात् बचे हुये पशु का भक्षण नहीं करना चाहिये क्योंकि यह पशु यजमान का ही स्वरूप है किन्तु ब्रह्मवादियों का यह मत आदरणीय नहीं है। पशु के बचे हुये माँस का अवश्य भक्षण करना चाहिये और

भक्षण ही नहीं अपितु आदर से अधिक लेने की लिप्सा करनी चाहिये।

इसके आगे छठे खण्ड में शमिता अर्थात् मारने वाले के द्वारा पशु को काटने का निम्न प्रकार वीभत्स वर्णन है –

इसकी सम्पूर्ण त्वचा को (विच्छेदरहित) चारो ओर से उचाड़ लो और नाभि काटने से पूर्व ही वपा अर्थात् अतड़ियों को निकाल लो। इसकी साँस को (मुँह बन्द करके) भीतर ही रोक लो (अर्थात् मुँह बन्द करके संज्ञपन करे)।

अष्टम् खण्ड में लिखा है कि प्राचीन काल में देवों ने अपने यज्ञ में मनुष्य को पशु बनाकर आलम्भन किया किन्तु जब मनुष्य से मेध अर्थात् यज्ञ योग्य हविः भाग निकल गया और अश्व में प्रविष्ट हो गया तब अश्व यज्ञ में आलम्भन किये जाने के योग्य बन गया।

इसके पश्चात् गाय, उसके बाद बैल, फिर भेड़ और अन्त में बकरा आलम्भन के योग्य पशु बन गया।

बकरा ही चिर काल तक यज्ञ में काटे जाने योग्य पशु बना रहा। अन्त में जब मेध पृथिवी में प्रविष्ट करके व्रीहि अर्थात् धान बन गया तब उसी के पुरोडाश से यज्ञ किया जाना प्रारम्भ हुआ।

घृणित कल्पना यहीं नहीं रुकी और व्रीहि जिसका पुरोडाश यज्ञ के लिये बनाया जाता है, उसकी समानता भी पशुओं के भिन्न

भिन्न अंगों से की गयी, जैसे धान की भूसी पशु की त्वचा है आदि।

अन्त में 9वें खण्ड में लिखा कि **जो पुरोडाश से यजन करता है वह मानो सब पशुओं के माँस रूप मेध से यजन करता है।**

द्वितीय अध्याय की द्वितीय पञ्चिका के द्वितीय खण्ड में वपा अर्थात् चर्बी के होम का उल्लेख करते हुये लिखा है कि
हे अग्नि! वपा रूप मेद को पशु के मध्य भाग से निकाल कर, हम यजमान तुम्हारे लिये प्रकृष्ट रूप से देते हैं। वपा की बूँदे तुम्हारे लिये टपकती हैं तुम उनका सेवन करो।

वपा होम के पश्चात् यज्ञ के लिये दीक्षित पुरुष यजमान बन जाता है और तब उसके घर में भोजन करना चाहिये। तात्पर्य यह है कि वपा होम के पश्चात् यज्ञ करने वाला पवित्र हो जाता है।

तृतीय खण्ड में वपा होम की प्रशंसा में लिखा गया है कि देवों ने यज्ञ के मध्य में वपा की आहुति देकर ही स्वर्ग प्राप्त किया था।

पशु के शरीर में जितनी वपा होती है उतना ही मुख्य पशु है। चतुर्थ खण्ड में कहा गया है कि यह जो वपा की आहुति है वह अमृत की आहुति है।

निम्नांकित मन्त्र को देखिये –

द्यौर्मे पिता जनिता नाभिरत्र वन्धुर्मे माता पृथिवी महीयम् । उत्तानयोश्चम्वोर्योनिरन्तरत्रा पिता दुहितु गर्भमाधात् ।

अथर्व. 9/10/12 ऋग्. 1/164/33

(द्यौर्मे पिता जनिता बन्धुः) द्युलोक मुझे उत्पन्न करने वाला तथा रक्षा करने वाला पिता और बन्धु है। (इयं मही पृथिवी मे माता) यह महती पृथिवी मेरी माता है और इसी में मेरी नाभि है। ऊपर तने हुये द्युलोक में स्थित सूर्य अपने किरणों और वृष्टि जल के द्वारा माता पृथिवी में गर्भ धारण करता है।

सूर्य के प्रकाश तथा वर्षा के द्वारा ही पृथिवी में वृक्ष, वनस्पतियाँ, ओषधियाँ, झाड़ियाँ, घास आदि उत्पन्न होती हैं। इस मन्त्र में आये दुहिता शब्द का अर्थ पुत्री नहीं बल्कि दूर स्थित पृथिवी है। दुहिता दूरेहिता अर्थात् दूरी पर स्थित पृथिवी - निरुक्त,3/1/4 यह बात स्पष्ट न करने के कारण मन्त्र से ऐसा प्रतीत होता है कि सूर्य देव ने अपनी पुत्री में ही गर्भ धारण किया, जिससे वेद के विषय में भ्रामक विचार उत्पन्न होता है।

दुहिता में गर्भ धारण करने की बात ऋग्वेद के निम्नांकित मन्त्रों में भी कही गयी है किन्तु यह समझना आवश्यक है कि इन मन्त्रों में दुहिता का अर्थ कोई वास्तविक पुत्री नहीं हैं केवल काव्यात्मक विचार है, क्योंकि यहाँ दुहिता शब्द का प्रयोग उषा

के लिये किया गया है। उषा प्रजापति की पुत्री है। उसे दिवो दुहिता द्युलोक की पुत्री भी कहा जाता है। (ऋग्. 1/124/3)

इसी प्रकार सूर्य को द्युलोक का पुत्र कहा जाता है। ऋग्वेद के दोनों मन्त्र इस प्रकार हैं।

मध्या यत् कर्त्वमभवदभीके कामं कृण्वाने पितरि युवत्याम्। मनानग्रेतो जहतुर्वियन्ता सानौ निषिक्तं सुकृतस्य योनौ ॥ ऋग्.10/61/6

पिता यत् स्वां दुहितरमधिष्कन् क्ष्मया रेतः संजग्मानो नि षिञ्चत् स्वाध्योऽजनयन् ब्रह्म देवां वास्तोष्पतिं व्रतपां निरतक्षन् ॥

ऋग्.10/61/7

इन दोनों मन्त्रों में उषा के पश्चात् सूर्योदय का काव्यात्मक वर्णन परोक्ष रूप से इस प्रकार किया गया है कि प्रजापति ने काम भावना से उषा रूपी युवती पुत्री में अल्प वीर्य का सिन्चन किया जिससे सूर्य रूपी रुद्र का जन्म हुआ।

आशय यह है कि प्रजापति अर्थात् भगवान् ने उषा में अपना थोड़ासा तेज सम्मिलित कर दिया जिससे सूर्य रूपी रूद्र उत्पन्न हुआ और पृथिवी पर यज्ञ आदि श्रेष्ठ कार्य प्रारम्भ हो गये। वास्तोष्पति, ब्रह्म मुहूर्त में चलने वाली शुद्ध शीतल वायु को कहते हैं जिसके बाद यज्ञ आदि श्रेष्ठ कर्म किये जाते हैं।

इस प्राकृतिक घटना का वर्णन ऐतरेय ब्राह्मण में निम्न प्रकार ऐसे निकृष्ट ढंग से किया है जिससे लगता है कि प्रजापति ने अपनी वास्तविक पुत्री से दुराचार किया हो -

प्रजापति ने अपनी लड़की को (देखकर भार्या के रूप में) सोचा। इसे कुछ ऋषि द्युलोक की देवता कहते हैं और कुछ अन्य (उषा) देवता कहते हैं। वे प्रजापति हरिण होकर रोहित (हिरनी या ऋतुमती) हुई (दुहिता) के पास गए। उस (दुहितृगामी प्रजापति) को देवों ने देखा और परस्पर कहा – (ओह) प्रजापति अकृत-कर्म (निषिद्ध आचरण) करता है ऐसा विचार करके उन्हों ने (ऐसे पुरुष को) खोजा जो इस (प्रजापति) को मारने में समर्थ होवे। किन्तु अपने लोगों के बीच में किसी को भी नहीं प्राप्त किया। तब वह सब एकीकृत होकर यह देव (रुद्र) के रूप में उत्पन्न हुए। इसीलिए उस (रुद्र) का (भूत) शद्ब से युक्त (भूतपति) नाम हुआ।

इसके आगे और भी मूर्खता पूर्ण बातें लिखी हुयी हैं।

तृतीय पञ्चिका के तृतीय अध्याय के अष्टम खण्ड में यह मूर्खता पूर्ण बाद लिखी गयी है कि –

जैसे दीक्षित यजमान के मरने पर उसको जलाते समय एक वृद्ध गाय का हनन करके उसके अवयवों की मृत देह पर वैतरणी नदी पार करने के लिये रखते हैं वैसे ही यहाँ भी रखते हैं..... क्योंकि वृद्ध गाय का हनन पितरों के योग्य है। इसीलिये पितृ शद्ब युक्त याज्या से यजन करता है। किसी भी वेद मन्त्र में

वृद्ध गाय का हनन करने की बात नहीं लिखी गयी है, ये सब बातें सूर्खता पूर्ण एवं वेद विरुद्ध हैं।

गंदिगी मिलाने वाले धूर्त लोगों ने मूर्खता की सारी सीमायें पार करके सप्तम पञ्चिका के प्रथम अध्याय के प्रथम् खण्ड में यह लिख दिया कि हवि देने से बचे हुये मृत् शरीर के कौन से भाग को भक्षण करने के लिये किसे दिया जाय जैसे जीभ किसे दी जाये दोनों जबड़े किसे दिये जायँ आदि।

सोम याग के यज्ञ मण्डप का जो चित्र दिया गया है उसमें उत्तर वेदी में पशु संज्ञपन स्थल भी दिखाया गया है।

यह अत्यन्त दुखद है कि हम लोग ऐसी असत्य एवं निकृष्ट बातों को हटाने का कोई प्रयास नहीं करते और उन्हें धर्म का भाग मानते हैं।

इस पुस्तक की कम्पूटर टाइपिंग का कार्य मेरे प्रिय शिष्य **चि. श्री शिवा चौबे** ने अत्यन्त परिश्रम से किया है जिसके लिये उसे सहस्रों आशीर्वादों के साथ भगवान् से प्रार्थना है कि वह विद्वान् बनकर अपने जीवन में सब प्रकार की सफलता, सुख एवं सम्पन्नता प्राप्त करे।

इस महत्व पूर्ण कार्य में मेरे प्रिय पौत्र **डॉ. आदित्य प्रियम् त्रिवेदी,** सहायक प्रोफेसर लखनऊ विश्व विद्यालय, ने अपने व्यस्त कार्यक्रम से समय निकाल कर सहायता के साथ साथ शिवा का मार्गदर्शन किया है। उन्हें भी कोटिशः आशीर्वादों के

साथ भगवान् से प्रार्थना है कि वह अपने जीवन में सफलता, सुख एवं ऐश्वर्य के सर्वोच्च शिखर को प्राप्त करें।

विधुशेखर त्रिवेदी I.A.S (अ. प्रा.)
अध्यक्ष,
श्रीमती चम्पा देवी वैदिक संस्थान
एवं
पं.उमादत्त त्रिवेदी वेद विद्यापीठ
6B, वृन्दावन, लखनऊ 226029

अक्षय तृतीया
30.4.25
9453849042

विषय सूची

विनम्र निवेदन	1 – 12
प्रार्थना एवं स्तुति मन्त्र	1 –22
माँ वैष्णव देवी जी की स्तुति	22 –33
स्वस्ति वाचन	33 – 42
शान्ति पाठ	43 –53
ओ३म्	53 – 58
ब्रह्म	58 – 67
विष्णु	67 – 68
इन्द्र	68 – 72
रुद्र	72 – 75
सविता	75 – 80
जीवात्मा	80 – 84
आत्मा एवं परमात्मा	85
देवता	85 – 88
वेदमन्त्रों के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण तथ्य	88 – 96
तर्क ऋषि	97 – 98
धर्म	98 –100
गायत्री उपासना	100 – 101
वैदिक जीवन	101 – 106
जीवन को नष्ट करने वाले दुर्गुण	106 – 108
सत्य	108 – 112
श्रद्धा	112 – 113
गायत्री उपासना से ब्रह्म प्राप्ति	114 – 115
(योग, यम, नियम आदि)	115 – 126

मन की पवित्रता	126 – 132
माता पिता	132 – 133
पत्नी एवं परिवार तथा महिलायें	133 – 140
प्राणायाम	141 – 143
दान	143 – 144
अन्न दान, (भूखे को अन्न न देने वाला पाप खाता है)	144 – 148
योगी	148 – 150
श्रेष्ठ कर्म	150 – 154
निष्पाप जीवन	154 – 159
सप्त मर्यादायें	159 – 160
भगवान् हमरे पिता हैं, सखा हैं	160 – 163
भक्ति एवं उपासना	163 – 171
अग्नि होत्र	171 – 172
यज्ञ	173 – 176
महा यज्ञ	176 – 177
दैवी संपदा	177 – 178
आसुरी संपदा	178 – 180
मानव शरीर की पवित्रता	180 – 186
शरीर में स्थित सप्तर्षि	186 – 188
प्राण	188 – 190
देवी के रूप में भगवान् की शक्ति का वर्णन	190 – 195
महत्व पूर्ण श्लोक	196 – 212
ब्राह्मण	212 – 214
अपवित्र लक्ष्मी को हटाना	215

सदाचार एवं दुराचार	216 – 220
प्रातः काल उठने का लाभ	220 – 221
यश की प्राप्ति	221 – 223
उन्नति का मार्ग	223 – 229
दीर्घ जीवन	229 – 231
मधुमय जीवन	231 – 234
सोम	234 – 238
पुरुरवा – उर्वशी प्रकरण	238 – 241
यम – यमी सूक्त	241
पृथिवी सूक्त	242 – 244
जल	244 – 247
तीन देवियाँ	248
शरीर की प्रमुख नाड़ियां – संगम	248
अभय	249 – 251
दुष्टों एवं शत्रुओं का नाश	251 – 254
देव स्तुति	254 – 264
आदित्य	264 – 270
वायु	270 – 272
अग्नि	272 – 274
जल से विद्युत की उत्पत्ति	274
उषा	275 – 276
वेद पाठ के मन्त्र	276 – 295
महत्वपूर्ण वाक्य	295 – 300
मन्त्र सूची	300 – 304

प्रार्थना एवं स्तुति मन्त्र

यो भूतं च भव्यं च सर्वं यश्चाधितिष्ठति
स्वर्यस्य च केवलं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ॥

अथर्व वेद, 10/8/1

(यः भूतं च भव्यं च) जो भूत, भविष्य तथा वर्तमान (यः सर्वं अधिष्ठति) सब का अधिष्ठाता है, सब का स्वामी है (यस्य च केवलं स्वः) और जिसका केवल प्रकाशमय तथा आनन्द स्वरूप ही है अर्थात् जो केवल प्रकाश स्वरूप तथा सुखस्वरूप है, (तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः) उस ज्येष्ठ ब्रह्म के लिये नमस्कार है।

यस्य भूमिः प्रमाऽन्तरिक्षमुतोदरम्।
दिवं यश्चक्रे मूर्धानं तस्मै ज्येष्ठाय प्रह्मणे नमः ॥

अथर्व. 10/7/32

(यस्य भूमिः प्रमा) पृथिवी जिसकी पादस्थानीय है (अन्तरिक्षं उत उदरम्) तथा अन्तरिक्ष जिसके उदर के समान है, (यः दिवं मूर्धानम् चक्रे) जिसने द्युलोक को अपने मूर्धा अर्थात् शिर के रूप में बनायया है, (तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः) उस ज्येष्ठ ब्रह्म के लिये नमस्कार है।

यस्य सूर्यश्चक्षुश्चन्द्रमाश्च पुनर्णवः।
अग्निं यश्चक्र आस्यं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ॥

अथर्व.10/7/33

(सूर्यः पुनर्णवः चन्द्रमाः च) सूर्य तथा पुनः पुनः नवीन होने वाला चन्द्रमा (यस्य चक्षुः) जिसके नेत्र के समान हैं (यः अग्निं आस्यं चक्रे) तथा जिसने अग्नि को अपने मुख के रूप में बनाया है, (तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः) उस ज्येष्ठ ब्रह्म के लिये नमस्कार है।

यस्य॒ वातः॑ प्राणापा॒नौ चक्षु॒रङ्गि॒र॒सोऽ भ॑वन्।
दिशो॒ य॒श्च॒क्रे प्र॒ज्ञानी॒स्तस्मै॑ ज्ये॒ष्ठाय॒ ब्रह्म॑णे॒ नमः॑ ॥

अथर्व.10/7/34

(यस्य वातः प्राणापानौ) वायु जिसका प्राण और अपान है, (अङ्गिरसः चक्षुः अभवन्) प्रकाश देने वाली किरणें जिसके चक्षु के समान हैं, (यः दिशः प्रज्ञानीः चक्रे) तथा जिसने दिशाओं को अपने कानों के रूप में बनाया है, (तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः) उस ज्येष्ठ ब्रह्म के लिये नमस्कार है।

नमः॑ शम्भ॒वाय॑ च मयोभ॒वाय॑ च॒ नमः॑ शङ्क॒राय॑ च
मयस्क॒राय॑ च॒ नमः॑ शि॒वाय॑ च शि॒वत॑राय च ॥

यजु. 16/41

(नमः शम्भवाय च मयोभवाय च) सांसारिक सुख उत्पन्न करने वाले सुखस्वरूप तथा मोक्ष सुख के प्रदाता परमानन्द स्वरूप परमात्मा को नमस्कार है, (नमः शंङ्कराय च मयस्कराय च) हर्ष, उल्लास एवं लौकिक सुख के प्रदाता तथा मोक्ष के परम आनन्द के प्रदाता परब्रह्म को नमस्कार है, (नमः शिवाय च शिवतराय च) मङ्गलमय, कल्याणकारी तथा परम कल्याणकारी देवादि देव महादेव को नमस्कार है ।

शं सुखं भावयति इति शंभवः । अथवा,

शं सुखं भवत्यस्मादिति शंभवः ॥

भगवान् सुख देते हैं अथवा भगवान् से सुख प्राप्त होता है इसलिये भगवान् शंभव हैं।

शं सुखं करोति इति शङ्करः ।

मयो मोक्ष सुखं करोति इति मयस्करः ।

भगवान् सुखी करते हैं इसलिये शंकर हैं। भगवान् मोक्ष, सुख देते हैं इसलिये मयस्कर हैं।

शिवः कल्याण रूपो शान्तो निर्विकारः ।

शिव कल्याण रूप हैं, कल्याण करने वाले हैं, निर्विकार हैं।

गायत्री मन्त्र

(ओ३म्) भूर्भुवः स्वःतत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि । धियो यो नः प्रचोदयात् ॥

ऋग्. 3.62. 10 यजु.36.3, 3 35, 22.9 तथा 30.2
साम. उत्तरा.13.4.1 क्र. सं. 1462

इस श्रेष्ठ सावित्री अथवा गायत्री मन्त्र का जप निम्नांकित सरल अर्थ के साथ मन से शांति पूर्वक करना चाहिये। जप करते समय यथा सम्भव मन्त्र का अर्थ भी ध्यान में रखना चाहिये। ऐसा करने से मन एकाग्र होगा और मन्त्र का पूरा लाभ प्राप्त होगा।

(ओ३म्) हे अन्तर्यामी ! हमारे हृदय, मन, बुद्धि, प्राण तथा आत्मा में वसने वाले सर्वव्यापक, सर्वज्ञ, सर्व शक्तिमान, सर्वेश्वर, परम पिता परमात्मा ! (भूः सत्) हे सर्वाधार स्वयं भू ! आपकी ही एक मात्र और अनन्त सत्ता पर यह समस्त ब्रह्माण्ड

आश्रित है, (भुवः चित्) हे ज्ञान स्वरूप! हमारे समस्त अवगुणों, दुखों, कष्टों तथा संकटों को जानने वाले और उन्हें दूर करके हमें सुख देने वाले (स्वः सुख स्वरूप) भूः भुवः स्वः (सत् चित् आनन्द) हे सच्चिदानन्द! (तत् सवितुर्वरेण्यम्) उस सविता (देवस्य) देव के वरण करने योग्य, श्रेष्ठ, कल्याण कारी पाप नाशक (भर्गः) तेज का (धीमहि) हम ध्यान करते हैं तथा उसके ज्यौतिर्मय स्वरूप को (धीमहि) अपने हृदय में धारण करते हैं (धियो यो नः) जो सविता देव हमारी बुद्धि, वाणी, तथा कर्मों को कल्याण कारी मार्ग पर प्रेरित करे।

प्रार्थना, हे प्रभो! हमारी बुद्धि, वाणी तथा कर्मों को कल्याण कारी मार्ग पर प्रेरित की जिये। हम आप के शरणागत हैं, हमारे ऊपर कृपा की जिये। (इसके पश्चात मन में जो भी प्रार्थना हो उसे श्रद्धा एवं विश्वास के साथ कहना चाहिये)

धीमहि का अर्थ होता है ध्यान करना तथा धारण करना (धियः) का अर्थ है बुद्धि, वाणी तथा कर्म।

यह स्पष्ट है कि जब हमारी बुद्धि, वाणी तथा कर्म तीनों कल्याण कारी मार्ग पर चलेंगे तो हमें सफलता सुख तथा शान्ति अवश्य प्राप्त होगी।

भूः, भुवः, स्वः, ये तीन महाव्याहृतियाँ कही जाती हैं। व्याहृति का अर्थ है- वि + आहृति = विशेष अर्थों की आहृति, लाने वाली अथवा बोध करने वाली। वैदिक वाङ्मय में इन महाव्याहृतियों का अत्यधिक महत्व है। जहाँ अलग अलग ये व्याहृतियाँ प्रतीक रूप में ब्रह्माण्ड के विभिन्न महत्वपूर्ण

अवयवों का बोध कराती हैं, वहीं समग्र मे ये परब्रह्म का बोध कराती हैं, जैसा कि निम्नांकित विवरण से स्पष्ट है-

(1)	भूः ओम् की प्रथम मात्रा	भुवः ओम् की द्वितीय मात्रा	स्वः ओम् की तृतीय मात्रा	भूर्भुवः स्वः
(2)	'अ'	'उ'	'म्'	ओ३म्
(3)	सत्	चित्	आनन्द	सच्चिदानन्द
(4)	पृथिवी	अन्तरिक्ष	द्युलोक	
(5)	अग्नि	वायु	आदित्य	
(6)	ऋग्वेद	यजुर्वेद	सामवेद	
(7)	प्राण	अपान	व्यान	समष्टि प्राण
(8)	दक्षिणाग्नि	गार्हपत्य अग्नि	आहवनीय अग्नि	

<u>महा मत्युंजय मन्त्र</u>

त्र्यंम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुंष्टि वर्धनम् ।
उर्वारुकमिंव बन्धंनान्मृत्योर्मुंक्षीय मामृतांत् ॥

यजु. 3/60 (पठभेद) ऋग्.7/59/12

(सुगन्धिं पुष्टि वर्धनम्) जीवन की सुगन्धि अर्थात् मनुष्य द्वारा किये गये पुण्य कर्मों की सुगन्धि, उसकी यश, सुरभि एवं आत्मा तथा शरीर की पुष्टि और धन धान्य आदि का संवर्धन करने वाले (त्र्यम्बकं) तीन नेत्रों वाले रुद्र अर्थात् दुष्टों को रुलाने वाले एवं सज्जनों का कल्याण करने वाले भगवान् शिव की हम (यजामहे) उपासना करते हैं तथा यह प्रार्थना करते हैं

कि वह हमें (मृत्योः बन्धनात् मुक्षीय) मृत्यु के बन्धन से उसी प्रकार मुक्त कर दें (उर्वारुकं इव) जिस प्रकार पका हुआ खरबूज़ा अपनी लता से मुक्त हो जाता है (मा अमृतात्) और हमें अमृत से, मोक्ष से मुक्त न करें अर्थात् हमें अमृतत्व प्रदान करें। मोक्ष प्रदान करें।

रुद्र का एक अर्थ है, दुःखों को नाश करने वाला।

रुतम् दुःखम् द्रावयति नाशयति इति रुद्रः।

रुद्र का दूसरा अर्थ है रुलाने वाला (रोदयति इति रुद्रः) भगवान् दुष्टों को दण्ड देते हैं, रुलाते हैं इसलिये उन्हें रुद्र कहा जाता है।

उपरोक्त दोनों अर्थों को दृष्टि में रखते हुये ही मनुष्य के शरीर में प्राण तथा आत्मा को रुद्र कहा जाता है क्योंकि दश प्राण और आत्मा मिल कर शरीर को जीवित एवं स्वस्थ रखते हैं किन्तु जब ये शरीर से बाहर जाते हैं तब सभी सम्बन्धियों को रुलाते हैं।

भगवान् को त्र्यम्बक अर्थात् तीन नेत्रों वाला इसलिये कहा जाता है कि वह भूत, भविष्य वर्तमान तथा पृथिवी, अन्तरिक्ष एवं द्युलोक तीनों को भली प्रकार देखते हैं और इस त्रिगुणात्मिका सृष्टि की रचना कर उसके प्रादुर्भाव, स्थिति एवं प्रलय तीनों को पूर्ण रूपेण नियन्त्रित करते हैं।

अथवा, (त्र्यम्बकः त्रिनयनः त्रीणि चन्द्र सूर्याग्निरूपाणि नयनानि यस्य) चन्द्र, सूर्य तथा अग्नि रूपी तीन तेज, नेत्रों के समान है। जिसके, ऐसे भगवान् त्र्यम्बक हैं।

(सुगन्धिम्) का अर्थ है मनुष्य के श्रेष्ठ कर्मों की सुगन्धि। यथा वृक्षस्य संपुष्पितस्य दूराद्गन्धो वात्येवं पुण्यस्य कर्मणो दूराद्गन्धो वाति (तै.आ.10/9) जिस प्रकार सुगन्धित फूलों से भरे हुये वृक्ष की सुगन्धि दूर से ही आती है उसी प्रकार पुण्य कर्मों की सुगन्धि भी दूर से ही आती है।

अ॒ग्निमी॑ळे पु॒रोहि॑तं य॒ज्ञस्य॑ दे॒वमृ॒त्विज॑म्।
होता॑रं रत्न॒धात॑मम्॥

साम.पूर्वार्चिक, क्र. सं. 605, ऋग्.1/1/1 ऋग्वेद का प्रथम मन्त्र

(पुरोहितम्) यज्ञ आदि प्रत्येक श्रेष्ठ कार्य में जिन्हें आगे रखा जाता है (यज्ञस्य देवम्) यज्ञ के द्वारा जिनका अर्चन एवं पूजन किया जाता है, ऐसे यज्ञ को उत्पन्न एवं प्रकाशित करने वाले, स्वयं प्रकाशमान् तथा समस्त ब्रह्माण्ड को आलोकित करने वाले (ऋत्विजम्) ऋतु ऋतु में अर्थात् सदैव पूजनीय तथा उपासना किये जाने योग्य अथवा, उत्पत्ति के समय स्थूल सृष्टि को रचने वाले (होतारम्) समस्त पदार्थों एवं सुखों को देने वाले, समस्त प्रार्थनाओं को सुनने वाले तथा यज्ञों को सम्पन्न करने वाले, (रत्न धातमम्) समस्त प्रकार के रत्नों तथा सूर्य, चन्द्र आदि रमणीय देवों एवं पदार्थों को धारण करने वाले (अग्निम् ईळे) प्रकाश स्वरूप परब्रह्म की हम स्तुति, प्रार्थना एवं उपासना करते हैं।

अग्न॒ आ या॑हि वी॒तये॑ गृणा॒नो ह॒व्यदा॑तये।
नि होता॑ सत्सि ब॒र्हिषि॑॥

साम वेद का प्रथम मन्त्र ऋग्. 6/16/10
साम.पूर्वा.1/1, उत्तरा.2/1, क्र. सं. 1 तथा 660,

(अग्ने) हे प्रकाश स्वरूप परब्रह्म ! (गृणानः) हमारे द्वारा स्तुति किये हुये, (होता) हमें सब कुछ देने वाले दाता, आप (वीतये) हमें प्रकाश, ज्ञान एवं समृद्धि देने के लिये तथा (हव्य दातये) अन्न आदि समस्त सुखकारी पदार्थ उपलब्ध कराने के लिये (आयाहि) आइये और (बर्हिषि नि सत्सि) हमारे द्वारा बिछाये गये कुश के आसन पर तथा हमारे हृदयाकाश में विराजिये।

आवाहन का सबसे सुन्दर मन्त्र है यह। हमें पूर्ण विश्वास है कि भगवान् हमारे बुलाने पर हमारे यज्ञ में आयें गे।

स॒हस्र॑शीर्षा॒ पुरु॑षः सहस्रा॒क्षः स॒हस्र॑पात्।
स भूमि॑ꣳ स॒र्वत॑स्पृ॒त्वाऽत्य॑तिष्ठद्दशाङ्गु॒लम्॥

अथर्व. 19.6.1 (पाठभेद), यजु.31.1, पुरुष सूक्त का प्रथम मन्त्र
ऋग्. 10.90.1,(पाठभेद) साम. पूर्वा.6.4.3 क्र.सं. 617, (पाठभेद)

वह परम पुरुष हज़ारों शिर. हज़ारों नेत्रों तथा हज़ारों पैरों वाला है। वह इस भूमि को, ब्रह्माण्ड को (सर्वतः स्पृत्वा) सब ओर से घेरकर, आच्छादित करके दश अङ्गुलम् अर्थात् ब्रह्माण्ड के अन्दर तथा उसके बाहर भी स्थित है।

ब्रह्माण्ड को दशाङ्गुलम् इसलिये कहते हैं कि वह पञ्च महाभूत अर्थात् आकाश, वायु, अग्नि, जल एवं पृथिवी तथा उनकी तन्मात्रायें, क्रमशः शद्ब, स्पर्श, रूप, रस तथा गन्ध से बना है।

वेदाहमेतं पुरुषं महान्तं-

मादित्यवर्णं तमसः परस्तात् ।

तमेव विदित्वाति मृत्युमेति,

नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ॥ यजु. 31.18

(अहम् एतम् आदित्यवर्णं तमसः परस्तात् महान्तं पुरुषं वेद) मैं उस आदित्य वर्ण वाले, अज्ञान एवं अन्धकार से परे प्रकाश स्वरूप, महान् पुरुष को जानता हूँ। (तम् एव विदित्वा मृत्युं अति एति) उसी को जानकर ज्ञानी भक्त जन्म मृत्यु के चक्र से छूटता है, मोक्ष प्राप्त करता है। (अयनाय अन्यः पन्था न विद्यते) मोक्ष के लिये अन्य कोई मार्ग नहीं है।

विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखो

विश्वतोबाहुरुत विश्वतस्पात् ।

सं बाहुभ्यां धमति सं पतत्रै-

र्द्यावाभूमी जनयन्देव एकः ॥

यजु.17.19 ऋग्.10.81.3

(विश्वतः चक्षुः उत विश्वतः मुखः) सब ओर नेत्रों वाला, सब ओर मुख वाला, (विश्वतः बाहुः उत विश्वतः पात्) सब ओर बाहों तथा सब ओर पैरों वाला अर्थात् सब का द्दष्टा, श्रोता, ज्ञाता एवं सर्व शक्तिमान् सर्वगतः, सर्वव्यापक परमात्मा(देव एकः) एक ही है। वह अकेला (द्यावा भूमी) द्युलोक तथा पृथिवी आदि लोकों को (पतत्रैः जनयन) गतिशील परमाणुओं आदि से, उत्पन्न करता हूआ (बाहुभ्याम् सं धमति) अपने अनन्त बाहु बल से, अपने पराक्रम से संसार को सम्यक् रूप से प्राप्त होता है अर्थात् संसार में व्याप्त होकर तथा उसे आधार देकर स्थित रहता है।

अकामो धीरो अमृतः स्वयम्भू
रसेन तृप्तो न कुतश्चनोनः ।
तमेव विद्वान्न बिभाय
मृत्योरात्मानं धीरमजरं युवानम् ॥

अथर्व. 10.8.44

वह परब्रह्म कामना रहित, धैर्यवान, प्रज्ञावान, अमर, स्वयम्भू, रस अर्थात् आनन्द से ओत प्रोत तथा किसी भी प्रकार की न्यूनता से रहित अर्थात् सब प्रकार से पूर्ण है। उस धीर, अजर तथा सदैव तरुण रहने वाले परमात्मा को जानकर ही मृत्यु का भय दूर होता है।

ऋतावानं वैश्वानरमृतस्य ज्योतिषस्पतिम् ।
अजस्रं घर्ममीमहे ॥

साम. उत्त.18.4(3).1 क्र.सं.1708 यजु.26.6(पाठभेद) अथर्व. 6.36.1

(ऋतावानं) सत्यस्वरूप, सत्य नियमों के रक्षक तथा (ऋतस्य ज्योतिषः पतिम्) सत्य रूपी ज्योति के स्वामी एवं रक्षक (वैश्वानरस्य) समस्त मनुष्यों को जीवन, चेतना, प्रेरणा एवं गति देने वाले (अजस्रं घर्मं) निरन्तर प्रकाशित होने वाले अखण्ड ज्योति स्वरूप परमात्मा की (ईमहे) हम उपासना करते हैं, उनसे प्रार्थना करते हैं।

विश्वान् नरान् नयति इति वैश्वानरः ।

विश्व एनं नरा नयन्तीति वा । निरुक्त. 7.6.20.3

वैश्वानर – समस्त मनुष्यों को ले जाता है, गति देता है अथवा सब मनुष्य इसको प्राप्त करते हैं।

आध्यात्मिक अर्थ में वैश्वानर का अर्थ परमात्मा होता है।

अग्ने नयं सुपथां राये अस्मा-
न्विश्वानिदेव वयुनानि विद्वान्।
युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो
भूयिष्ठां ते नमं उक्तिं विधेम॥

यजु.5.36,7.43,तथा 40.16 ऋग्. 1.189.1

(अग्ने) हे प्रकाशस्वरूप परब्रह्म! (अस्मान् राये सुपथा नय) हमें धन, ऐश्वर्य तथा सर्वतोमुखी अभ्युदय के लिये सुपथ अर्थात् अच्छे मार्ग से ले चलिये। हे देव ! आप हमारे (विश्वानि वयुनानि विद्वान्) समस्त कर्मों, विचारों तथा मन के भावों को जानने वाले हैं (अस्मत् जुहुराणम् एनः युयोधि) हम से कुटिलता पूर्ण पापों को अलग कर दीजिये (ते भूयिष्ठां नम उक्तिं विधेम) हम आपको बारम्बार प्रणाम करते हुये आपकी श्रद्धा एवं भक्तिपूर्वक स्तुति तथा उपासना करते हैं।

अग्नें व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तच्छंकेयं तन्में
राध्यताम्। इदमहमनृतात्सत्यमुपैमि॥

यजु.1.5

(अग्ने) हे प्रकाशस्वरूप परब्रह्म ! (व्रतपते) आप हमारे व्रत की रक्षा करने वाले हैं, (व्रतं चरिष्यामि) मैं व्रत का आचरण करूँगा। (तत् शकेयम्) मुझे उसके लिये शक्ति दीजिये ताकि में व्रत पर आचरण कर सकूँ। (तत् मे राध्यताम्) मेरा वह व्रत आप पूर्ण कराइये। (इदं अहम् अनृतात् सत्यं उपैमि) व्रत यह है कि मैं असत्य से सत्य को प्राप्त होता हूँ।

विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव ।
यद्भद्रं तन्न आ सुव ॥

ऋग्.5/82/5, यजु.30/3

(सवितः देव) समस्त संसार को उत्पन्न करने वाले तथा उसका पालन पोषण करने वाले, उसे चेतना एवं प्रेरणा देने वाले सविता देव, हे परब्रह्म! (विश्वानि दुरितानि परा सुव) हमारे समस्त दुःखों तथा अवगुणों को हमसे दूर कर दीजिये (यद् भद्रं तत् नः आसुव) और जो हमारे लिये कल्याणकारी हो, उसे हमारे पास लाइये, हमें प्राप्त कराइये।

हमारा कल्याण किसमें है, यह भगवान् ही जानता है। इससे सुन्दर और कोई प्रार्थना क्या हो सकती है ? यह समर्पण तथा भक्ति की चरम सीमा है।

हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे
भूतस्य जातः पतिरेकआसीत् ।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां
कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥

यजु.13/4,23/1, 25/10, अथर्व.4/2/7, ऋग्.10/121/1

(हिरण्यगर्भः अग्रे समवर्तत) सूर्य, चन्द्र आदि प्रकाशमान पदार्थों को गर्भ के समान अपने अन्दर धारण करने वाला प्रकाशस्वरूप परब्रह्म ही सृष्टि के पूर्व में था तथा (भूतस्य एकः जातः पतिः आसीत्) समस्त प्राणियों एवं पदार्थों का एक मात्र प्रसिद्ध स्वामी एवं रक्षक था और है। (सः इमाम् पृथिवीं उत् द्याम्

दाधार) उस ईश्वर ने इस पृथिवी तथा द्युलोक आदि को धारण किया है। (कस्मै देवाय हविषा विधेम) ऐसे सुख स्वरूप परमात्मा की हम अपने अन्तःकरण से भक्तिपूर्वक उपासना करें।

यआ॑त्म॒दा ब॑ल॒दा यस्य॒ विश्व॑
उ॒पास॑ते प्र॒शिषं॒ यस्य॑ दे॒वाः।
यस्य॑ छा॒यामृ॒तं॒ यस्य॑ मृ॒त्युः
कस्मै॑ दे॒वाय॑ ह॒विषा॑ विधेम॥

अथर्व. 4/2/,1 (पाठभेद) ऋग्.10/121/2, यजु.25/13

जो जीवात्मा के रूप में हमारे शरीर में स्थित है, जो हमें जीवन तथा समस्त प्रकार का बल देने वाला है, समस्त विश्व जिसकी उपासना करता है, सभी देव तथा विद्वान् जिसकी आज्ञा का, जिसके अनुशासन का पालन करते हैं, जिसकी छाया, जिसका आश्रय अथवा जिसकी कृपा ही अमृत है और जिसकी अकृपा ही मृत्यु है, ऐसे सुखस्वरूप परब्रह्म की हम अपने अन्तःकरण से भक्तिपूर्वक अनन्यभाव से अर्चना एवं उपासना करें।

यः प्रा॑ण॒तो नि॑मिष॒तो म॑हि॒त्वैक॒
इद्राजा॒ जग॑तो ब॒भूव॑।
य ईशे॑ अ॒स्य द्वि॒पद॒श्चतु॑ष्पदः
कस्मै॑ दे॒वाय॑ ह॒विषा॑ विधेम॥

अथर्व.4/2/2,(पाठभेद), ऋग्.10/121/3, यजु.23/3.25/11,

(यः) जो (प्राणतः निमिषतः जगतः) प्राणधारी तथा पलक झपकाने वाले समस्त प्राणियों का (महित्वा) अपनी महिमा से (एकः इत् राजा बभूव) एक अकेला ही राजा है, स्वामी है और

(यः) जो (अस्य द्विपदः चतुष्पदः ईशे) इस संसार के द्विपद (दो पैरों वाले) तथा चतुष्पद (चार पैरों वाले) अर्थात् समस्त प्राणियों पर शासन करता है, (कस्मै देवाय हविषा विधेम) ऐसे सुखस्वरूप परमात्मा की हम अपने अन्तःकरण से भक्तिपूर्वक उपासना करें।

यस्येमे हिमवन्तो महित्वा यस्य
समुद्रꣳ रसया सहाहुः।
यस्येमाः प्रदिशो यस्य बाहू
कस्मै देवाय हविषा विधेम॥

अथर्व. 4/2/5, (पाठभेद), ऋग्.10/121/4, यजु. 25/12

(यस्य महित्वा इमे हिमवन्तः) जिसकी महिमा से ये हिम मण्डित पर्वत स्थित हैं, (यस्य रसया सह समुद्रं आहुः) नदियों के साथ समुद्र जिसकी महिमा का गान करते हैं (इमाः प्रदिशाः यस्य बाहु) तथा ये दिशायें एवं उप दिशायें जिसकी बाहों की भाँति फैली हुयी हैं, (कस्मै देवाय हविषा विधेम) ऐसे सुखस्वरूप परमात्मा की हम अपने अन्तःकरण से श्रद्धा एवं भक्तिपूर्वक उपासना करें।

मा मा हिꣳसीज्जनिता यः पृथिव्या
यो वा दिवꣳ सत्यधर्मा व्यानट्।
यश्चापश्चन्द्राः प्रथमो जजान
कस्मै देवाय हविषा विधेम॥

ऋग्. 10.121.9, (पाठभेद), यजु. 12.102

(मा मा हिंसीत् जनिता यः पृथिव्या) जो पृथिवी को उत्पन्न करने वाला प्रजापति है, वह मुझे कसी प्रकार से दण्डित न करे, मुझे किसी प्रकार की वेदना, कष्ट अथवा दुःख न दे (यः वा सत्यधर्मा दिवं व्यानट्) सत्य को धारण करने वाला जो परमात्मा द्युलोक का सृजन करके उसमें व्याप्त रहता है, (च यः प्रथमः आपश्चन्द्राः जजान) तथा जिस सर्वश्रेष्ठ एवं सर्व प्रथम प्रकट होने वाले परमात्मा ने मनुष्यों को तथा सुख देवे वाले जल को उत्पन्न किया है अथवा जिसने सुख देने वाले जल को प्राणियों से पहले उत्पन्न किया है (कस्मै देवाय हविषा विधेम) उस सुखस्वरूप परब्रह्म की हम श्रद्धा एवं भक्तिपूर्वक अपने अन्तःकरण से उपासना करें।

(मनुष्या वा आपश्चन्द्राः मनुष्य आपश्चन्द्र हैं क्योंकि (मनुष्या एव हि यज्ञेनाप्नुवन्ति चन्द्रलोकं पितृमार्गानुसारिणः) मनुष्य ही पितृमार्ग का अनुसरण करते हुये यज्ञ के द्वारा चन्द्रलोक को प्राप्त करते हैं। अथवा, (यः च आपः चन्द्राः प्रथमः जजान) यश्च चन्द्राः आह्लादिका जगत्कारणभूता आपो जलानि प्रथमः आदिभूतः सन् जजानोत्पादितवान् तद्वारा मनुष्यानुत्पादितवानित्यर्थः। सर्व प्रथम प्रकट होने वाले जिस परमात्मा ने सुख देवे वाले उस जल को उत्पन्न किया, जिससे जगत् की उत्पत्ति है और फिर जल से मनुष्यों को उत्पन्न किया। *(शतपथ ब्राह्मण, 7.3.1.20)*

येन॒ द्यौरु॒ग्रा पृ॑थि॒वी च॑ दृ॒ळ्हा
येन॒ स्व॑स्तभि॒तं येन॒ नाकः॑।

यो अन्तरिक्षे रजसो विमानः

कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥

ऋग्.10.121.5, *यजु. 32.6*

(येन द्यौः उग्रा पृथिवी च दृढा) जिसने द्युलोक तथा तीक्ष्ण स्वभाव वाले सूर्य आदि देवों एवं दृढ पृथिवी को धारण कर रखा है, (येन स्वः स्तभितं येन नाकः) जिसने सुख तथा विशेष सुखपूर्ण स्थान अर्थात् स्वर्ग तथा मोक्ष को धारण कर रखा है, (यः अन्तरिक्षे रजसः विमानः) जो अन्तरिक्ष में विशेष मान अर्थात् गति से युक्त, समस्त लोक लोकान्तरों को धारण करता है तथा उन्हें गति देता है, (कस्मै देवाय हविषा विधेम) ऐसे सुखस्वरूप परब्रह्म की हम अपने अन्तःकरण से श्रद्धा एवं भक्ति पूर्वक उपासना एवं स्तुति करें।

प्रजापते नत्वदेतान्यन्यो विश्वा

जातानि परि ता बभूव।

यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं

स्याम पतयो रयीणाम् ॥

अथर्व. 7.80.3, (पाठभेद) यजु.23.65, (पाठभेद) ऋग्. 10.121.10

(प्रजापते) समस्त प्राणियों की रक्षा करने वाले तथा उनके स्वामी हे परमात्मा ! (ता एतानि विश्वा जातानि) उन, इन समस्त उत्पन्न हुये प्राणियों एवं पदार्थों का (त्वत् अन्यः न परि बभूव) आपके अतिरिक्त अन्य कोई स्वामी नहीं है अर्थात् केवल आप ही इस विश्व को नियन्त्रण में रखने में समर्थ हैं, सर्वोपरि हैं। (यत् कामाः ते जुहुमः) जिन जिन कामनाओं के साथ हम

आपकी शरण में आयें, आपकी उपासना करें (तत् नः अस्तु) हमारी वे समस्त कामनायें पूर्ण हों, हमारे मनोवाञ्छित फल एवं उद्देश्य हमें प्राप्त हों, (वयं स्याम पतयो रयीणाम्) तथा हम लोग समस्त प्रकार के धनों एवं ऐश्वर्यों के स्वामी हों।

स नो बन्धुर्जनिता स विधाता
धामानि वेद भुवनानि विश्वा।
यत्र देवा अमृतमानशा-
नास्तृतीये धामन्नध्यैरयन्त॥

यजु. 32.10

(यत्र देवाः) जिस परमेश्वर में सभी विद्वान् लोग (अमृतम् आनशानः) मोक्ष अथवा अमृतत्व का उपभोग करते हुये (तृतीये धाम में स्वच्छन्द विचरण करते हैं, (सः नः बन्धुः) वही हमारा बन्धु है, (जनिता) वही हमें जन्म देने वाला हमारा पिता है, (सः विधाता) वही हमें धारण करने वाला, हमारा पालन पोषण करने वाला तथा हमारे कर्मों के फलों का विधान करने वाला है और (धामानि वेद भुवनानि विश्वा) वही समस्त लोक लोकान्तरों तथा स्थानों आदि को जानने वाला है।

देद का अर्थ देवता के साथ साथ विद्वान् भी होता है।

विद्वांसो हि देवाः (शतपथ ब्राह्मण)

शिवा नः शंतमा भव सुमृडीका सरस्वति।
मा ते युयोम संदृशः॥

अथर्व.7.68.3

(सरस्वति) हे सरस्वति! (नः शिवा शंतमा सुमृडीका भव) हमारे लिये मंगलकारी, अत्यन्त कल्याणकारी तथा उत्तम सुख देने वाली होइये। (ते संदृशः मा युयोम) आपकी कृपा दृष्टि एवं सम्यक् दर्शन से हम कभी वञ्चित न हों।

पा॒व॒का नः॒ सर॑स्वती॒ वाजे॑भिर्वा॒जिनी॑वती।
य॒ज्ञं व॑ष्टु धि॒या व॑सुः॥

साम. पूर्वा.1.10.5 क्र.सं.189, यजु. 20,84, ऋग्. 1.3.10

(पावका नः सरस्वती) सरस्वती हमें पवित्र करने वाली तथा (वाजेभिः अन्नैः) अन्न आदि पदार्थों से युक्त होने के कारण (वाजिनीवती अन्नवती) अन्नपूर्णा हैं। (धियावसुः कर्मवसुः) बुद्धि तथा ज्ञान पूर्वक किये गये श्रेष्ठ कर्मों से धन देने वाली सरस्वती अथवा, (धियावसुः) बुद्धि ही जिनका धन है, ऐसी सरस्वती (यज्ञं वष्टु यज्ञं वहतु) हमारे यज्ञ, हमारे श्रेष्ठ एवं शुभ कर्मों का वहन करें, उन्हें सुशोभित एवं सफल करें।
वश कान्तौ।
वाग्वै धियावसुः। - ऐतरेय. आर. 1.1.4

अम्बि॑तमे॒ नदी॑तमे॒ देवि॑तमे॒ सर॑स्वति।
अ॒प्र॒श॒स्ता इ॑व स्मसि॒ प्रश॑स्तिमम्ब नस्कृधि॥

ऋग्. 2/41/16

(नदीतमे) ज्ञान की श्रेष्ठतम सरिता स्वरूप अथवा श्रेष्ठतम सरिता के समान पवित्र एवं सुखी करने वाली, (अम्बितमे) हे श्रेष्ठ माँ तथा (देवितमे) हे सर्वश्रेष्ठ देवि सरस्वति! (अप्रशस्ता इव स्मसि) हम अप्रशस्त अर्थात् अयोग्य अथवा अप्रशंसनीय के

समान हैं, (अम्ब) हे माँ! (नः प्रशस्तिम् कृधि) हमें ज्ञान एवं समृद्धि देकर प्रशंसनीय बनाइये।

धाता दधातु नो रयिमीशानो जगतस्पतिः।
स नः पूर्णेन यच्छतु॥

अथर्व. 7.18.1

(धाता जगतः पतिः ईशानः) सबका धारण एवं पालन पोषण करने वाले, समस्त संसार के स्वामी एवं रक्षक तथा सभी पर शासन एवं नियन्त्रण करने वाले प्रभु (नः रयिं दधातु) हमें धन एवं ऐश्वर्य दें। (स नःपूर्णेन यच्छतु) वह हमें सब कुछ पूर्णरूपेण दें अर्थात् हमारा सम्पूर्ण अभ्युदय करें, हमें सब प्रकार का सुख, समृद्धि एवं वैभव दें तथा हमारा सब प्रकार से कल्याण करें।

पूर्णेन यच्छतु शब्दों का प्रयोग अत्यन्त महत्वपूर्ण है। कितनी सुन्दर है यह प्रार्थना।

दिवो विष्ण उत वा पृथिव्या
महो विष्ण उरोरन्तरिक्षात्।
हस्तौ पृणस्व बहुभिर्वसव्यैरा -
प्रयच्छ दक्षिणादोत सव्यात्॥

यजु. 5.19 (पाठभेद) अथर्व. 7.27.8

(विष्ण) हे विष्णु! (दिवः उत पृथिव्या) द्युलोक तथा पृथिवी से और (महः उरोः अन्तरिक्षात्) महान विस्तृत अन्तरिक्ष से (बहुभिः वसव्यैः हस्तौ प्रणस्व) बहुत से अर्थात् अनेक प्रकार के तथा बहुत बड़ी मात्रा में धनों को अपने दोनों हाथों मे भर

लीजिये (दक्षिणात् उत सव्यात्) और अपने दायें तथा बायें, दोनों हाथों से (आ प्रयच्छ) हमें प्रदान कीजिये।

कैसी श्रेष्ठ प्रार्थना है यह!

इन्द्र श्रेष्ठानि द्रविणानि धेहि
चित्तिं दक्षस्य सुभगत्वमस्मे।
पोषं रयीणामरिष्टिं तनूनां
स्वाद्मानं वाचः सुदिनत्वमह्नाम्॥

ऋग्. 2.21.6

(इन्द्र) हे इन्द्र!, हे प्रभो! (अस्मे श्रेष्ठानि द्रविणानि) हमें श्रेष्ठ धन, (दक्षस्य चित्तिं) कर्म करने का सामर्थ्य एवं उत्साह तथा सत्कर्म का ज्ञान और (सुभगत्वं) सौभाग्य (धेहि) दीजिये, (रयीणां पोषं तनूनां अरिष्टिं) धन एवं ऐश्वर्य का पोषण तथा शरीरों की निरोगिता दीजिये (वाचः स्वाद्मानं अह्नाम् सुदिन्त्वं) एवं वाणी की मधुरता तथा दिनों की उत्तमता दीजिये अर्थात् हमारे जीनव के प्रत्येक दिन को उत्तम बनाइये।

तेजोऽसि तेजो मयि धेहि वीर्यमसि वीर्यं मयि धेहि
बलमसि बलं मयि धेह्योजोऽस्योजो मयि धेहि
मन्युरसि मन्युं मयि धेहि सहोऽसि सहोमयि धेहि॥

यजु. 19/9

हे प्रभो! (तेजः असि तेजः मयि धेहि) आप तेजस्वी हैं, मुझ में तेज को धारण कीजिये, (वीर्यमसि वीर्यं मयि धेहि) आप पराक्रम से युक्त हैं, मुझ में पराक्रम धारण कीजिये अथवा मुझे पराक्रम

दीजिये, (ओजः असि ओजः मयि धेहि) आप ओजस्वी हैं, मुझ में ओज अर्थात् कान्ति को धारण कीजिये, (मन्युः असि मन्युं मयि धेहि) आप दुष्टों पर क्रोध करने वाले हैं, मुझ में उस क्रोध को धारण कीजिये, अर्थात् मुझे भी शत्रु पर क्रोध करने की क्षमता दीजिये, (सहः असि सहः मयि धेहि) आप शक्ति से युक्त हैं, शत्रु का पराभव करने वाले हैं, शत्रु का पराभव करने की वह शक्ति मुझे दीजिये।

ओजः कान्तिः। सहो बलम्। मन्युः क्रोधः।

तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्। पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतꣳ शृणुयाम शरदः शतं प्र ब्रवाम शरदः शतदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात्॥ यजु. 36/24

(देवहितं) परब्रह्म द्वारा स्थापित, देवों का हित करने वाला (तत्) वह (शुक्रं) पवित्र, पाप रहीत, प्रकाशमान (चक्षुः) आदित्य रूपी जगत् का चक्षु (पुरस्तात् उच्चरत्) सृष्टि के आदि काल से ही ऊपर उदित हुआ है।

अथवा, (तत् चक्षुः वह परब्रह्म समस्त संसार का चक्षु है, सबका मार्ग दर्शक है, सब को ज्ञान एवं प्रकाश देने वाला है, (देवहितम्) वह विद्वानों का हित करने वाला है, (शुक्रम्) शुद्ध स्वरूप है (पुरस्तात् उत् चरत) तथा अनादि काल से सबके ऊपर अपने दिव्य स्वरूप में स्थित है। (त्रिपाद् ऊर्ध्व उदैत् पुरुषः – यजुर्वेद)।

परमात्मा की कृपा से हम (पश्येम शरदः शतं) सौ वर्षों तक देखें, (जीवेम शरदः शतं) सौ वर्षों तक जीवित रहें, (शृणुयाम शरदः शतं) सौ वर्षों तक सुनें, (प्र ब्रवाम शरदः शतं) सौ वर्षों तक ठीक प्रकार बोल सकें, (अदीनाः स्याम शरदः शतम्) सौ वर्षों तक दीनता को प्राप्त हुये बिना, स्वाभिमान एवं सम्मान पूर्वक रहें, (भूयः च शरदः शतात्) तथा सौ वर्षों से भी अधिक समय तक हृष्ट पुष्ट होकर सुखी जीवन व्यतीत करें।

माँ वैष्णव देवी जी की स्तुति

या देवी सर्वभूतेषु मातृरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥

जो देवी समस्त प्राणियों में माँ के रूप में स्थित हैं, उन्हें बारम्बार प्रणाम है।

या देवी सर्वभूतेषु बुद्धिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥

जो देवी समस्त प्राणियों में बुद्धि रूप में स्थित हैं उन्हें बारम्बार प्रणाम है।

या देवी सर्वभूतेषु शक्तिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥

जो देवी समस्त प्राणियों में शक्ति के रूप में स्थित हैं उन्हें बारम्बार प्रणाम है।

या देवी सर्वभूतेषु लक्ष्मीरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥

जो देवी समस्त प्राणियों में लक्ष्मी अथवा शोभा के रूप में स्थित हैं, उन्हें बारम्बार प्रणाम है।

या देवी सर्वभूतेषु श्रद्धारूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥

जो देवी समस्त प्राणियों में श्रद्धा के रूप में स्थित हैं उन्हें बारम्बार प्रणाम है।

या देवी सर्वभूतेषु शान्तिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥

जो देवी समस्त प्राणियों में शान्ति के रूप में स्थित हैं उन्हें बारम्बार प्रणाम है।

देवि प्रपन्नार्तिहरे प्रसीद
प्रसीद मातर्जगतोऽखिलस्य।
प्रसीद विश्वेश्वरि पाहि विश्वं
त्वमीश्वरी देवि चराचरस्य ॥1॥

समस्त दुखों को दूर करने वाली हे देवि ! प्रसन्न होइये समस्त संसार की माँ प्रसन्न होइये, समस्त जगत् पर नियन्त्रण करने वाली माँ प्रसन्न होइये। हे माँ आप समस्त चराचर जगत् की स्वामिनी हो।

आधारभूता जगतस्त्वमेका
महीस्वरूपेण यतः स्थितासि।
अपां स्वरूपस्थितया त्वयैत-
दाप्यायते कृत्स्नमलङ्घ्यवीर्ये ॥2॥

पृथिवी के रूप में स्थित आप समस्त जगत् की आधार हैं तथा जल के रूप में स्थित आप समस्त संसार को जीवित रखने वाली हैं, आपका सम्पूर्ण पराक्रम सर्वश्रेष्ठ है।

त्वं वैष्णवी शक्तिरनन्तवीर्या
विश्वस्य बीजं परमासि माया।
सम्मोहितं देवि समस्तमेतत्
त्वं वै प्रसन्ना भुवि मुक्तिहेतुः ॥3॥

तुम अनन्त बल सम्पन्न वैष्णवी शक्ति हो, विश्व को उत्पन्न करने वाली परम माया हो। हे देवि ! तुम ने इस समस्त जगत् को मोहित कर रखा है। तुम ही प्रसन्न होकर संसार से मोक्ष दिलाने वाली हो।

विद्याः समस्तातव देवि भेदाः
स्त्रियः समस्ताः सकला जगत्सु।
त्वयैकया पूरितमम्बयैतत्
का ते स्तुतिः स्तव्यपरा परोक्तिः ॥4॥

हे देवि! समस्त विद्यायें तुम्हारी ही भिन्न भिन्न स्वरूप हैं, संसार की समस्त स्त्रियाँ तुम्हारी ही रूप हैं, तुमने अकेले ही समस्त विश्व को व्याप्त कर रखा है, तुम्हारी स्तुति में और क्या कहा जा सकता है।

सर्वभूता यदा देवी स्वर्गमुक्तिप्रदायिनी।
त्वं स्तुता स्तुतये का वा भवन्तु परमोक्तयः ॥5॥

हे देवि! समस्त रूपों को धारण करने वाली तुम ही स्वर्ग और मोक्ष प्रदान करने वाली हो, तुम तो वाणी से भी श्रेष्ठ हो, तुम्हारी स्तुति के लिये उचित शब्द और क्या हो सकते हैं ?

सर्वस्य बुद्धिरूपेण जनस्य हृदिसंस्थिते।
स्वर्गापवर्गदे देवि नारायणि नमोऽस्तु ते ॥6॥

हे देवि! समस्त मनुष्यों के हृदय में बुद्धि रूप से स्थित स्वर्ग तथा मोक्ष प्रदान करने वाली नारायणि तुम्हें प्रणाम है।

कलाकाष्ठादिरूपेण परिणामप्रदायिनि।
विश्वस्योपरतौ शक्ते नारायणि नमेऽस्तु ते ॥7॥

कला काष्ठा अदि के रूप में सतत् परिवर्तन करने वाली तथा विश्व का संहार करने का सामर्थ्य रखने वाली नारायणि आप को प्रणाम है।

सर्वमङ्गमाङ्गल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके।
शरण्ये त्र्यम्बके गौरि नारायणि नमोऽस्तु ते ॥8॥

सब प्रकार का मंगल प्रदान करने वाली, मगंगलमयी, कल्याणकारिणी, समस्त कामनाओं को पूर्ण करने वाली, शरणागतवत्सला, तीन नेत्रों वाली गौरि रूपा नारायणि आप को प्रणाम है।

सृष्टिस्थितिविनाशानां शक्तिभूते सनातनि।
गुणाश्रये गुणमये नारायणि नमोऽस्तु ते ॥9॥

संसार की सृष्टि, स्थिति और विनाश करने की शक्ति से सम्पन्न, समस्त गुणों की आश्रय रूपी, सर्वगुणमयी नारायणि आपको प्रणाम है।

शरणागतदीनार्तपरित्राणपरायणे।
सर्वस्यार्तिहरे देवि नारायणि नमो ऽस्तु ते ॥10॥

शरण में आये हुये व्यक्तियों की रक्षा में सदा संलग्न रहने वाली, सब के दुखों को दूर करने वाली हे देवि ! नारायणि आपको प्रणाम है।

हंसयुक्त विमानस्थे ब्रह्माणीरूपधारिणि।
कौशाम्भःक्षरिके देवि नारायणि नमोऽस्तु ते ॥11॥

ब्रह्माणी का रूप धारण करने वाली, हंसों से युक्त विमान पर बेठने वाली, कुश मिश्रित जल के छिड़कने से प्रसन्न होने वाली नारायणि आप को प्रणाम है।

त्रिशूलचन्द्राहिधरे महावृषभवाहिनि।
माहेश्वरीस्वरूपेण नारायणि नमोऽस्तुते ॥12॥

त्रिशूल, चन्द्र एवं सर्प को धारण करने वाली, महान वृषभ को वाहन के रूप में प्रयोग करने वाली तथा माहेश्वरी स्वरूप धारण करने वाली नारायणि आपको प्रणाम है।

मयूरकुक्कुटवृते महाशक्तिधरेऽनधे।
कौमारीरूपसंस्थाने नारायणि नमोऽस्तु ते ॥13॥

मयूर तथा कुक्कुटों को साथ रखने वाली, महाशक्ति सम्पन्न, कौमारी रूप धारण करने वाली निष्पाप नारायणि आपको प्रणाम है।

शङ्खचक्रगदा शार्ङ्ग गृहीत परमायुधे।
प्रसीद वैष्णवीरूपे नारायणि नमोऽस्तु ते ॥14॥

शङ्ख, चक्र, गदा तथा धनुष आदि उत्तम आयुधों को धारण करने वाली, हे वैष्णवी रूपा नारायणि प्रसन्न होइये, आपको प्रणाम है।

नृसिंहरूपेणोग्रेण हन्तुं दैत्यान् कृतोद्यमे।
त्रैलोक्यत्राण सहिते नारायणि नमोऽस्तु ते ॥15॥

तीनों लोकों की रक्षा तथा दैत्यों के वध के लिये उद्यत उग्र नृसिंह रूप को धारण करने वाली नारायणि आपको प्रणाम है।

किरीटिनि महावज्रे सहस्रनयनोज्ज्वले।
वृत्रप्राणहरे चैन्द्रि नारायणि नमोऽस्तु ते ॥16॥

मस्तक पर किरीट तथा हाथ में महा वज्र धारण करने वाली, सहस्र नयनों के साथ उज्वल मुख वाली तथा वृत्रासुर के प्राण हरण करने वाली इन्द्र शक्ति रूपा नारायणि आपको प्रणाम है।

शिवदूतीस्वरूपेण हतदैत्यमहाबले।
घोररूपे महारावे नारायणि नमोऽस्तु ते ॥17॥

स्वयं शिव जिसके दूत बने ऐसे स्वरूप को धारण करके विकट गर्जना करने वाली, घोर रूप वाली तथा महान् बलशाली

दैत्यों की सेना का नाश करने वाली नारायणि आप को प्रणाम है।

दंष्ट्राकरालवदने शिरोमालाविभूषणे।
चामुण्डे मुण्डमथने नारायणि नमोऽस्तु ते ॥18॥

दाढ़ों के कारण विकराल मुख वाली मुण्डमाला से विभूषित मुण्डमर्दिनी, चामुण्डारूपा नारायणि आप को प्रणाम है।

लक्ष्मि लज्जे महाविद्ये श्रद्धे पुष्टेस्वधे ध्रुवे।
महारात्रे महाऽविद्ये नारायणि नमोऽस्तु ते ॥19॥

शोभा, लज्जा, महाविद्या, श्रद्धा, पुष्टि, स्वधा, ध्रुवा, महारात्रि तथा महा-अविद्यारूपा नारायणि! तुम्हें प्रणाम है।

मेधे सरस्वति वरे भूति बाभ्रवि तामसि।
नियते त्वं प्रसीदेशे नारायणि नमोऽस्तु ते ॥20॥

मेधा, सरस्वती, वरा (श्रेष्ठ), भूति (ऐश्वर्यरूपा), बाभ्रवी, तामसी, नियता (संयमपरायणा) तथा ईशा (सबकी अधीश्वरी) नारायणि! आप को प्रणाम है।

सर्वस्वरूपे सर्वेशे सर्वशक्तिसमन्विते।
भयेभ्यस्त्राहि नो देवि दुर्गे देवि नमोऽस्तु ते ॥21॥

सर्वस्वरूपा, सर्वेश्वरी तथा सब प्रकारकी शक्तियों से सम्पन्न दिव्यरूपा दुर्गे देवि ! सब भयों से हमारी रक्षा करो तुम्हें नमस्कार है।

एतत्ते वदनं सौम्यं लोचनत्रयभूषितम् ।
पातु नः सर्वभीतिभ्यः कात्यायनि नमोऽस्तु ते ॥22॥

हे कात्यायनि ! तीन लोचनों से विभूषित आप का यह सौम्य मुख सब प्रकार के भयों से हमारी रक्षा करे, आप को नमस्कार है।

ज्वालाकरालमत्युग्रमशेषासुरसूदनम् ।
त्रिशूलं पातु नो भीतेर्भद्रकालि नमोऽस्तु ते ॥23॥

हे भद्रकालि! ज्वालाओं के कारण विकराल प्रतीत होने वाला, अत्यन्त भयंकर और समस्त असुरों का संहार करने वाला आप का त्रिशूल समस्त प्रकार के भय से हमारी रक्षा करे, आप को नमस्कार है।

हिनस्ति दैत्यतेजांसि स्वनेनापूर्य या जगत् ।
सा घण्टा पातु नो देवि पापेभ्योऽनः सुतानिव ॥24॥

हे देवि ! जो अपनी ध्वनि से सम्पूर्ण जगत् को व्याप्त करके दैत्यों के तेज को नष्ट कर देता है, वह आप का घण्टा हमलोगों की पापों से उसी प्रकार रक्षा करे, जैसे माता अपने पुत्रों की बुरे कर्मों से रक्षा करती है।

असुरासृग्वसापङ्कचर्चितस्ते करोज्ज्वलः ।
शुभाय खड्गो भवतु चण्डिके त्वां नता वयम् ॥25॥

हे चण्डिके ! आप के हाथों में सुशोभित खड्ग, जो असुरों के रक्त और चर्बी से चर्चित है, हमरा मंगल करे। हम आप को नमस्कार करते हैं।

रोगानशेषानपहंसि तुष्टा
रुष्टा तु कामान् सकलानभीष्टान्।
त्वामाश्रितानां न विपन्नराणां
त्वामाश्रिता ह्याश्रयतां प्रयान्ति ॥26॥

हे देवि! तुम प्रसन्न होने पर सब रोगों को नष्ट कर देती हो और कुपित होने पर मनोवांछित सभी कामनाओं का नाश कर देती हो। जो लोग तुम्हारी शरण में रहते हैं, उन पर विपत्ति नहीं आती। तुम्हारी शरण में आये हुए मनुष्य दूसरों को शरण देने में समर्थ हो जाते हैं।

एतत्कृतं यत्कदनं त्वयाद्य
धर्मद्विषां देवि महासुराणाम्।
रूपैरनेकैर्बहुधाऽऽत्ममूर्तिं
कृत्वाम्बिके तत्प्रकरोति कान्या ॥27॥

हे देवि अम्बि के! आप ने अपने स्वरूप को अनेक भागों में विभक्त करके नाना प्रकार के रूपों से जैसा इन धर्मद्रोही महादैत्यों का संहार किया है, वैसा अन्य कौन सी शक्ति कर सकती थी ?।

विद्यासु शास्त्रेषु विवेकदीपे-
ष्वाद्येषुवाक्येषु च का त्वदन्या।
ममत्वगर्तेऽतिमहान्धकारे
विभ्रामयत्येतदतीव विश्वम् ॥28॥

विद्याओं में, ज्ञान को प्रकाशित करने वाले शास्त्रों में तथा आदिवाक्यों अर्थात् वेदों- में आप के सिवा और किस का वर्णन है ? आप को छोड़ कर दूसरी कौन सी ऐसी शक्ति है, जो इस विश्व को अज्ञानमय तथा घोर अन्धकार से परिपूर्ण ममतारूपी गर्त में निरन्तर भटका सके।

रक्षांसि यत्रोग्रविषाश्च नागा
यत्रारयो दस्युबलानि यत्र।
दावानलो यत्र तथाब्धिमध्ये
तत्र स्थिता त्वं परिपासि विश्वम् ॥29॥

जहाँ राक्षस, जहाँ भयंकर विष वाले सर्प, जहाँ शत्रु, जहाँ लुटेरों की सेना और जहाँ दावानल हो, वहाँ तथा समुद्र के बीच में भी स्थित रह कर तुम विश्वकी रक्षा करती हो।

विश्वेश्वरि त्वं परिपासि विश्वं
विश्वात्मिका धारयसीति विश्वम्।
विश्वेशवन्द्या भवती भवन्ति
विश्वाश्रया ये त्वयि भक्तिनम्राः ॥30॥

हे देवि विश्वेश्वरि ! आप विश्व का पालन करती हो। विश्वरूपा हो, सम्पूर्ण विश्व को धारण करती हो। आप देवतावों की भी वन्दनीया हो। जो लोग भक्तिपूर्वक आपके सामने मस्तक झुकाते हैं, वे सम्पूर्ण विश्व को आश्रय देने वाले होते हैं।

देवि प्रसीद परिपालय नोऽरिभीते-
र्नित्यं यथासुर वधादधुनैव सद्यः।
पापानि सर्वजगतां प्रशमं नयाशु
उत्पातपाकजनितांश्च महोपसर्गान् ॥31॥

हे देवि! प्रसन्न हो, जैसे इस समय असुरों का वध करके आप ने शीघ्र ही हमारी रक्षा की है, उसी प्रकार सदा हमें शत्रुओं के भय से बचाओ, सम्पूर्ण जगत् का पाप नष्ट कर दो और उत्पात एवं पापों के फलस्वरूप उत्पन्न होने वाले महामारी आदि बड़े-बड़े उपद्रवों को शीघ्र दूर कर दो।

प्रणतानां प्रसीद त्वं देवि विश्वार्तिहारिणि।
त्रैलक्यवासिनामीड्ये लोकानां वरदा भव ॥32॥

विश्व की पीड़ा दूर करने वाली देवि! हम आप को प्रणाम कर रहैं हैं, हम पर प्रसन्न हों। सभी त्रिलोक वासियों की पूजनीया परमेश्वरि! सब लोगों को वरदान दो।

देव्युवाच- देवी ने कहा-

वरदाहं सुरगणा वरं यन्मनसेच्छथ।
तं वृणुध्वं प्रयच्छामि जगतामुपकारकम् ॥33॥

हे देवताओ! मैं वर देने को तत्पर हूँ। तुम्हारे मन में जो इच्छा हो, वह माँग लो। संसार के उपकार के लिये में उस वर को अवश्य दूँगी।

देवताओं ने कहा -

सर्वाबाधाप्रशमनं त्रैलोक्यस्याखिलेश्वरि।
एवमेव त्वया कार्यमस्मद्वैरिविनाशनम् ॥34॥

देवताओं ने कहा- हे सर्वेश्वरि ! आप तीनों लोकों की समस्त बाधाओं को शान्त करदीजिये। आप से केवल एक ही प्रार्थना है कि आप हमारे शत्रुओं का नाश कर दीजिये।

देहि सौभाग्यमारोग्यम् देहि में परमम् सुखम्।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥35॥

हे देवि! मुझे सौभाग्य तथा आरोग्य दीजिये, परम सुख दीजिये, सुन्दर रूप दीजिये, विजय दीजिये, यश दीजिये तथा मेरे शत्रुओं का नाश कर दीजिये।

स्वस्तिवाचन

आ नो॑ भ॒द्राः क्रत॑वो यन्तु वि॒श्वतोऽ -
द॑ब्धासो॒ अप॑रीतास उ॒द्भिदः॑।
दे॒वा नो॒ यथा॒ सद॒मिद् वृ॒धे अस॒न्न –
प्रा॑युवो रक्षि॒तारो॑ दि॒वे दि॑वे ॥

यजु. 25/14, ऋग्. 1/89/1

(अदब्धासः) किसी के द्वारा नष्ट न किये जा सकने वाले, विघ्नरहित, (अपरीतासः) अन्य लोगों के द्वारा बराबरी प्राप्त न

किये जा सकने वाले अर्थात् सर्वश्रेष्ठ अथवा शत्रुओं द्वारा अवरुद्ध न किये जा सकने वाले, (उद्भिदः) शत्रुओं का तथा दुष्टों का नाश करने वाले (भद्राः क्रतवः) कल्याणकारी यज्ञ, संकल्प, विचार तथा बल (नः विश्वतः आयन्तु) हमारे पास सब ओर से आयें (यथा अप्रायुवः) जिससे आलस्य रहित होकर (दिवे दिवे रक्षितारः देवाः) दिन प्रतिदिन रक्षा करने वाले देवगण (सद इत् नः वृथे असन्) सदैव हमारी अभिवृद्धि करने के लिये तत्पर रहें।

अथवा, जिस प्रकार देवगण आलस्य रहित होकर दिन प्रतिदिन हमारी रक्षा करने के लिये तत्पर रहते हैं, उसी प्रकार हम श्रेष्ठ, कल्याणकारी तथा शक्तिशाली विचार, संकल्प, बुद्धि, बल तथा यज्ञ अर्थात् श्रेष्ठतम कर्म अपने पास सब ओर से आने दें।

हमें श्रेष्ठ विचार संकल्प एवं कर्म सब ओर से प्राप्त करना चाहिये तथा यह ध्यान रखना चाहिये कि देवगण हमारी रक्षा तभी करेंगे जब हम सद्विचारों को सब ओर से प्राप्त करके उनके अनुसार श्रेष्ठ कर्म करेंगे।

दे॒वानां॑ भ॒द्रा सु॑म॒तिर्ऋ॑जूय॒तां –
दे॒वाना॑ꣳ रा॒तिर॒भि नो॒ निव॑र्तताम्।
दे॒वाना॑ꣳ स॒ख्यमुप॑सेदिमा व॒यं –
दे॒वा न॒ आयुः॒ प्रति॑रन्तु जी॒वसे॑॥

यजु. 25/15 ऋग्. 1/89/2

(ऋजूयतां देवानाम्) सरलता एवं सत्यता से युक्त देवों की (भद्रा सुमतिः) कल्याणकारी सुमति तथा (देवानां रातिः) देवों के विभिन्न दान (नः अभि निवर्तताम्) हमारे सामने निरन्तर रहें, हमें सब ओर से निरन्तर प्राप्त हों। (वयं देवानां सख्यम् उप सेदिम) हम देवों की मित्रता प्राप्त करें, (देवाः नः आयुः जीवसे आ प्रतिरन्तु) देवगण हमें जीवित रहने के लिये दीर्घ आयु प्रदान करें।

तमीशा॑नं॒ जग॑तस्त॒स्थुष॒स्पतिं॑
धियञ्जि॒न्वमव॑से हूमहे व॒यम्।
पू॒षा नो॒ यथा॒ वेद॑सा॒मस॑द् वृ॒धे
र॑क्षि॒ता पा॒युरद॑ब्धः स्व॒स्तये॑॥

ऋग्. 1/89/5, यजु. 25/18

(वयम्) हम (जगतः तस्थुषः पतिम्) चराचर जगत् का पालन पोषण तथा रक्षा करने वाले, (धियं जिन्वम्) बुद्धि को पवित्र करने वाले, उसे प्रसन्न एवं तृप्त करने वाले (तम् ईशानम्) सब पर शासन करने वाले उस ईश्वर का (अवसे हूमहे) अपनी रक्षा के लिये आह्वान करते हैं, (यथा पूषा) जिससे कि सब का पोषण करने वाला परमात्मा (नः वेदसाम् वृधे) हमारे ज्ञान, धन एवं ऐश्वर्य की वृद्धि करने वाला तथा (स्वस्तये) हमारे कल्याण के लिये (अदब्धः रक्षिता पायुः असत्) अपराजित होकर हमारी रक्षा करने वाला तथा हमारा पालन करने वाला हो।

३ २ ३ १ २ ३ १

स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः

३ १ २ ३ २ ३ १ २

स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः ।

३ २ ३ २ ३ १ २

स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः

३ २ ३ २ ३ १ २

स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ॥

साम वेद का अन्तिम मन्त्र, ऋग्. 1/89/6, यजु. 25/19

साम. उत्त, 21/9/3 क्र. सं. 1875,

(वृद्धश्रवाः) महान् यश तथा प्रचुर अन्न एवं धन वाले (इन्द्रः) परम ऐश्वर्यवान् परमेश्वर (नः स्वस्ति) हमारे लिये कल्याणकारी हों, (स्वस्ति नः पूषा विश्वेवेदाः) सर्वज्ञ तथा सब का पालन पोषण करने वाले परमात्मा हमारा कल्याण करें, (अरिष्टनेमिः) कभी नष्ट न ने वाले द्दढ़ वज्र को धारण करने वाले तथा (तार्क्ष्यः) भक्तों के प्रयोजनों को शीघ्र पूर्ण करने वाले प्रभु (नः स्वस्ति) हमारा कल्याण करें, (स्वस्ति नः बृहस्पतिः दधातु) सूर्य, चन्द्र आदि महान देवों एवं महान् शक्तियों के स्वामी परब्रह्म हमारे लिये सुख एवं कल्याण को धारण करें।

श्रवः श्रवणीयं यशः अर्थात् श्रवण करने योग्य महान यश। **वृद्धश्रवाः वृद्धं प्रभूतं श्रवः श्रवणीयं यशः अन्नं धनं कीर्ति वा यस्य सः ।** महान् अन्न धन तथा यश है जिनका, वह परमात्मा वृद्धाश्रवाः हैं। (**तार्क्ष्यः – तूर्णं अर्थं रक्षति इति तार्क्ष्यः**, (निरुक्त 10/3/17,) हमारी प्रार्थना एवं प्रयोजन को शीघ्र पूरा करने वाले परमात्मा तार्क्ष्य हैं।

भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा
भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाꣳसस्तनूभि –
र्व्यशेमहि देवहितं यदायुः॥

ऋग्.1/89/8, (पाठभेद), साम. उत्त. 21/9/2क्र.सं. 1874, यजु. 25/21

(यजत्राः देवाः) हे यजनीय देवो! (भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम) हम अपने कानों से कल्याणकारी तथा प्रिय वचनों को सुनें, (भद्रं पश्येम अक्षभिः) हम अपनी आँखों से कल्याणकारी तथा मनोहारी दृश्यों को देखें तथा (स्थिरैः अङ्गै) हृष्ट पुष्ट अङ्गों से युक्त (तनूभिः) शरीरों से हम (तुष्टुवांसः) परमात्मा की स्तुति करते हुये (देवहितं) देवों एवं विद्वानों के लिये हितकारी (यदायुः) जो हमारी आयु है, (वि अशेमहि) उसे भली प्रकार प्राप्त करें अर्थात् हम अपने जीवन पर्यन्त देवों एवं विद्वानों का हित रक्षण करते रहें।

स्वस्ति नो मिमीतामश्विना
भगः स्वस्ति देव्यदितिरनर्वणः।
स्वस्ति पूषा असुरो दधातु नः
स्वस्ति द्यावां पृथिवी सुचेतुनां॥

ऋग्. 5/51/11

(अश्विना) सूर्य एवं चन्द्रमा (नः स्वस्ति मिमीताम्) हमारा कल्याण करें, (भगः स्वस्ति) स्वयं ऐश्वर्यवान् तथा ऐश्वर्य प्रदान करने वाले भगवान् हमारा कल्याण करें, (देवी अदितिः) हमें समस्त साधन उपलब्ध कराने वाली तथा सुख देने वाली और

स्तुति एवं प्रशंसा के योग्य पृथिवी हमारा कल्याण करे, (अनर्वणः असुरः पूषाः नः स्वस्ति दधातु) हमें प्राण एवं बल देने वाला अप्रतिम एवं अपराजित पूषा अर्थात् पालन पोषण करने वाले परमात्मा हमारा कल्याण करें, (द्यावा पृथिवी सुचेतुना) द्युलोक एवं पृथिवी ज्ञान से अर्थात् ज्ञान देकर हमारा कल्याण करें।

स्वस्तये वायुमुप ब्रवामहै
सोमं स्वस्ति भुवनस्य यस्पतिः।
बृहस्पतिं सर्वगणं स्वस्तये
स्वस्तय आदित्यासो भवन्तु नः॥

ऋग्. 5/51/12

(स्वस्तये वायुम् उप ब्रवामहै) हम अपने कल्याण के लिये वायु की स्तुति एवं प्रार्थना करें। (यः भुवनस्य पतिः) जो समस्त भुवन का स्वामी है, (सोमं स्वस्ति) उस सोम अर्थात् परमात्मा की अपने कल्याण के लिये स्तुति करें। (स्वस्तये), हम कल्याण के लिये (सर्वगणं बृहस्पतिं) समस्त प्राणि समूह के सबसे महान् स्वामी एवं रक्षक अर्थात् परमात्मा की स्तुति करें। (आदित्यासः नः स्वस्तय भवन्तु) आदित्य हमारे लिये कल्याणाकारी हों।

ब्रह्मवै ब्रहस्पतिः। ब्रह्म ही ब्रहस्पति है।

विश्वे देवा नो अद्या स्वस्तये वैश्वानरो वसुरग्निः स्वस्तये। देवा अवन्त्वृभवः स्वस्तये स्वस्ति नो रुद्रः पात्वंहसः॥ ऋग्. 5/51/13

(विश्वे देवाः नः अद्या स्वस्तये) समस्त देव आज हमारे लिये कल्याण कारी हों, (वैश्वानरः वसुः अग्नि स्वस्तये) समस्त विश्व को गति देने वाला तथा समस्त प्राणियों को वसाने वाला अर्थात् उनके जीवन का आधार अग्नि हमारे लिये कल्याण कारी हो। (देवाः ऋभवः स्वस्तये अवन्तु) दिव्य गुणों से युक्त ऋभुगण हमारा कल्याण एवं रक्षा करें। (रुद्रः नः स्वस्ति) दुष्टों को रुलाने वाले रुद्र हमारे लिये कल्याणकारी हों तथा (अंहसः पातु) पापों से हमारी रक्षा करें।

स्वस्ति मित्रावरुणा स्वस्ति पथ्ये रेवति।
स्वस्ति न इन्द्रश्चाग्निश्च स्वस्ति नो अदिते कृधि॥

ऋग्. 5/51/14

(मित्रावरुणा) हे मित्र एवं वरुण! (स्वस्ति) हमारा कल्याण कीजिये। (रेवति) धन एवं ऐश्वर्य से सम्पन्न हे देवि! (पथ्ये स्वस्ति) जीवन मार्ग में हमारा कल्याण कीजिये, (इन्द्रः च अग्निः च स्वस्ति) इन्द्र और अग्नि हमारा कल्याण करें। (अदिते) हे अदिति! (नः स्वस्ति कृधि) हमारा कल्याण कीजिये।

स्वस्ति पन्थामनु चरेम सूर्याचन्द्रमसाविव।
पुनर्ददताघ्नता जानता सं गमेमहि॥

ऋग्.5/51/15

हम सूर्य एवं चन्द्रमा के समान जगत् का कल्याण करने वाले मार्ग पर चलें, हम दान देने वालों, हिंसा न करने वालों तथा विद्वानों के साथ सदैव चलें अर्थात् उनके सम्पर्क में आयें और उनके अनुरूप आचरण करें।

ये देवानां यज्ञिया यज्ञियानां
मनोर्यजत्रा अमृता ऋतज्ञाः।
ते नो रासन्तामुरुगायमद्य यूयं
पात स्वस्तिभिः सदा नः॥

अथर्व. 19/11/5 (पाठभेद), ऋग्.7/35/15

(ये देवानां यज्ञियानां) जो देवों, श्रेष्ठ विद्वानों तथा यज्ञ करने वालों में (यज्ञिया) पूजनीय हैं, (मनोः यजत्राः) जो मनस्वी तथा आदरणीय एवं यजनीय हैं, जो निकट समागम एवं सम्पर्क किये जाने के योग्य हैं,(अमृता ऋतज्ञाः) जो अमृतत्व को प्राप्त करने के योग्य हैं तथा जो ऋत एवं सत्य के ज्ञाता हैं, (ते अद्य नः) वे आज (उरुगायम् रासन्ताम्) बहुतों द्वारा गाया हुआ, बहुत से विद्वानों द्वारा उपदिष्ट किया गया प्रशंसनीय ज्ञान हमें दें। (यूयं नः स्वस्तिभिः सदा पात) आप सब देव एवं श्रेष्ठ विद्वान् कल्याणकारी उपायों से सदैव हमारी रक्षा करें।

येभ्यो माता मधुमत्पिन्वते
पयः पीयूषं द्यौरदितिरद्रिबर्हाः।
उक्थशुष्मान् बृषभरान्स्वप्नसस्ताँ
आदित्याँ अनु मदा स्वस्तये॥

ऋग्. 10/63/3

(येभ्यः) जिनके लिये (माता अदितिः) माता अदिति तथा (अद्रिबर्हाः द्यौः) मेघों से आच्छादित अन्तरिक्ष (मधुमत्) माधुर्य युक्त (पीयूषं पयः) अमृत तुल्य दुग्ध, जल तथा अन्य भोज्य

पदार्थ (पिन्वते) प्रदान करता है, (तान्) ऐसे उन (उक्थ शुष्मान्) प्रशंसनीय बल वाले (बृषभरान्) सुखों की वर्षा करने वाले (सु अप्नसः) तथा उत्तम कर्म करने वाले आदित्यों की (स्वस्तये) हम अपने कल्याण के लिये (अनुमदा) स्तुति करते हैं, प्रार्थना करते हैं।

नृचक्षसो अनिमिषन्तो अर्हणा
बृहद्देवासो अमृतत्वमानशुः।
ज्योतीरथा अहिमाया अनागसो
दिवो वर्ष्माणं वसते स्वस्तये॥

ऋग्. 10/63/4

(अनिमिषन्तः) बिना पलक झपकाये हुये अर्थात् सदैव जागरुक रहकर (नृचक्षसः) मनुष्यों के कर्मों पर दृष्टि रखने वाले तथा उन्हें सही मार्ग दिखाने वाले, (देवासः अर्हणा) जिन पूजनीय देवों ने, विद्वानों ने भक्ति एवं उपासना द्वारा (बृहत् अमृतत्वं आनशुः) महान् अमृतत्व को, मोक्ष को प्राप्त किया है, (ज्योतिः रथाः) वह ज्ञान रूपी ज्योतिर्मय रथ वाले, (अहिमायाः) प्रज्ञावान्, अप्रतिहत बुद्धि वाले (अनागसः) पाप रहित (दिवः वर्ष्माणं) द्युलोक में उच्च स्थान पर अथवा भगवान् के आनन्दमय परम धाम में (वसते) स्थित देव (स्वस्तये) हमारा कल्याण करें।

भरेष्विन्द्रं सुहवं हवामहेऽहोमुचं सुकृतं दैव्यं जनम्।

अ॒ग्निं मि॒त्रं वरु॑णं सा॒तये॒ भगं॒ द्यावा॑पृथि॒वी म॒रुतः॑ स्व॒स्तये॑ ॥

ऋग्.10/63/9

(भरेषु) हम जीवन के संग्रामों में (सुहवं शोभनाह्वानम्) सुगमता से बुलाये जा सकने वाले अथवा सुन्दर नाम वाले तथा सुख एवं उत्तम पदार्थों को देने वाले (अंहः मुचम्) पापों से छुड़ाने वाले (इन्द्रं हवामहे) इन्द्र का आह्वान करते हैं तथा (सुकृतं दैव्यं जनम्) श्रेष्ठ कर्म करने वाले, दिव्य शक्तियों से सम्पन्न (अग्निं मित्रं वरुणं भगं द्यावा पृथिवी मरुतः) अग्नि, मित्र, वरुण, ऐश्वर्य प्रदान करने वाले भग, द्युलोक पृथिवी तथा मरुतों को (सातये स्वस्तये) अन्न आदि प्राप्त करने के लिये एवं अपने कल्याण के लिये (हवामहे) आदर पूर्वक बुलाते हैं।

सु॒त्रामा॑णं पृथि॒वीं द्याम॑ने॒हसं॑ सु॒शर्मा॑ण॒मदि॑तिं सु॒प्रणी॑तिम् । दैवीं॒ नावं॑ स्वरि॒त्रामना॑गस॒मस्र॑वन्ती॒मा रु॑हेमा स्व॒स्तये॑ ॥

ऋग्.10/63/10

(सुत्रामाणं पृथिवीं) उत्तम प्रकार से रक्षा करने वाली, विस्तृत (अनेहसं) पाप रहित, (द्याम्) प्रकाशयुक्त (सुशर्माणं) उत्तम सुख देने वाली (अदिति) नष्ट न होने वाली (सुप्रणीतिम्) उत्तम रूप से निर्मित, (स्वरित्राम्) उत्तम चप्पुओं से युक्त (अनागसं) पाप रहित (अस्रवन्ती) न रिसने वाली, छिद्र रहित, (दैवीं नावम्) दैवी नाव पर हम अपने कल्याण के लिये (आरुहेम) आरोहण करें। अर्थात् हमारी जीवन रूपी नौका पाप रूपी छिद्रो से रहित हो।

शान्तिपाठ

यन्मे॑ छि॒द्रं चक्षु॑षो॒ हृद॑यस्य॒ मन॑सो॒ वाति॑तृण्णं॒ बृह॒स्पति॑र्मे॒ तद्द॑धातु। शं नो॑ भवतु॒ भुव॑नस्य॒ यस्पति॑ः ॥ यजु. 36/2

(मे) मेरे (चक्षुषः) नेत्र की तथा (हृदयस्य) हृदय एवं अन्तःकरण तथा बुद्धि की (यत्) जो (छिद्रम्) न्यूनता अथवा दोष है, उस दोष को, न्यूनता को (बृहस्पतिः) सूर्य आदि महान् देवों के स्वामी परमात्मा (दधातु) पूर्ण करें, ठीक करें। (भुवनस्य यः पतिः) समस्त संसार का जो स्वामी एवं रक्षक हैं (शं नः भवतु) वह परमेश्वर हमारे लिये कल्याणकारी हों।

शं नो॑ मि॒त्रः शं वरु॑णः॒ शं नो भवत्वर्य॒मा।
शं न॒ इन्द्रो॒ बृह॒स्पति॒ः शं नो॒ विष्णु॑रुरुक्र॒मः॥

अथर्व. 19/9/6, (पाठभेद) यजु. 36/9, ऋग्.1/10/9,

(मित्रः नः शं) सब का प्रिय मित्र, जगदीश्वर हमारे लिये कल्याणकारी हो, (शं वरुणः) सर्व साक्षी तथा सर्वश्रेष्ठ परमात्मा हमारे लिये कल्याणकारी हो। (शं नः भवतु अर्यमा) न्यायकारी ईश्वर हमारे लिये कल्याणकारी हो। (बृहस्पतिः) वेदवाणी एवं महान् ब्रह्माण्ड का रक्षक (इन्द्रः) परम ऐश्वर्यवान् ईश्वर (नः शम्) हमारे लिये कल्याणकारी हो (उरुक्रमः विष्णुः नः शम्) महान् पराक्रम अथवा विस्तृत पद वाला सर्वव्यापक परमात्मा हमारे लिये कल्याणकारी हो।

व्याप्नोतीति विष्णुः। सर्वव्यापक होने से भगवान् का नाम विष्णु है।

शं नो॒ वातः॑ पवता॒ꣳ शं न॑स्तपतु॒ सूर्यः॑।
शं नः॒ कनि॑क्रदद्दे॒वः प॒र्जन्यो॑ अ॒भि व॑र्षतु॥

यजु. 36.10

(शं नः वातः पवताम्) वायु हमारे लिये सुखकारी होकर बहे, (शं नः तपतु सूर्यः) सूर्य हमारे लिये सुखकारी होकर तपे (शं नः कनिक्रदत् देवः) कड़कड़ाने वाला विद्युत् देव हमारे लिये सुखकारी हो (पर्जन्यः अभि वर्षतु) तथा मेघ हमारे ऊपर चारों ओर से सुखकारी वर्षा करें।

अहा॑नि॒ शं भव॑न्तु नः॒ शꣳ रात्रीः॒ प्रति॑ धीयताम्। शं न॑ इन्द्रा॒ग्नी भ॑वता॒मवो॑भिः॒ शं न॒ इन्द्रा॒ वरु॑णा रा॒तह॑व्या। शं न॑ इन्द्रा पू॒षणा॒ वाज॑सातौ॒ शमिन्द्रा॒सोमा॑ सुवि॒ताय॒ शं योः॥

ऋग्. 7/35/1(पाठभेद), अथर्व.19/10/1 (पाठभेद), यजु. 36/11

(अहानि शं भवन्तु नः) दिन हमारे लिये कल्याणकारी हों, (शं रात्रीः प्रतिधीयताम्) रात्रि हमारे लिये कल्याण को धारण करें, (इन्द्राग्नी नः शं भवतां अवोभिः) समस्त रक्षाओं के साथ इन्द्र एवं अग्नि हमारे लिये कल्याणकारी हों, (शं नः इन्द्रा वरुणा रातहव्या) जिन्हें हवि अर्पित ही गयी है, ऐसे इन्द्र एवं पूषा युद्ध में हमारा कल्याण करने वाले हों। (शं न इन्द्रा पूषणा वाजसातौ) इन्द्र एवं वरुण हमारे कल्याण के लिये शान्ति

दायक हों (शं योः) तथा रोगों का शमन एवं भय को दूर करके हमारे लिये सुखकारी हों।

शं नः सूर्य उरुचक्षा उदेतु
शं नश्चतस्रः प्रदिशो भवन्तु।
शं नः पर्वता ध्रुवयो भवन्तु
शं नः सिन्धवः शमु सन्त्वापः॥

अथर्व. 19/10/8, (पाठभेद) ऋग्. 7/35/8

(शं नः सूर्यः उरुचक्षा उदेतु) विस्तृत तेज एवं प्रकाश वाला सूर्य हमारे लिये सुखकारी होकर उदित हो, (शं नः चतस्रः प्रदिशो भवन्तु) चारों दिशायें एवं प्रदिशायें हमारे लिये सुखकारी हों। (शं नः पर्वताः ध्रुवयः भवन्तु) अचल पर्वत हमारे लिये शान्ति एवं सुख देने वाले हों, (शं नः सिन्धवः) नदियाँ एवं समुद्र हमारे लिये सुखकारी हों, (शं उ नः सन्तु आपः) तथा जल हमारे लिये शान्ति एवं सुख देने वाले हों।

शं नो अदितिर्भवतु व्रतेभिः शं नो भवन्तु मरुतः स्वर्काः। शं नो विष्णुः शमु पूषा नो अस्तु शं नो भवित्रं शम्वस्तु वायुः॥

अथर्व. 19/10/9, ऋग्.7/35/9

(अदितिः व्रतेभिः न शम् भवतु) देव माता अदिति अथवा प्रकृति तथा भूमि अपने श्रेष्ठ नियमों के साथ हमें सुख दें, (सु अर्काः मरुतः नः शं भवन्तु) उत्तम स्तुति योग्य तेजस्वी बलवान् मरुत हमारे लिये सुखकारी हों, (शं नः विष्णुः) विष्णु हमारे लिये

कल्याणकारी हों (शं उ पूषा नः अस्तु) तथा पालन पोषण करने वाले पूषा देव हमें शान्ति देने वाले हों, (शं नः भवित्रं शं उ अस्तु वायुः) जल हमारे लिये शान्ति दायक हों तथा वायु हमारे लिये सुखकारी हो।

भवित्रम् उदकम् अन्तरिक्षं वा। सायण भाष्य

शं नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये
शं योरभि स्त्रवन्तु नः॥

ऋग्.10/9/4, यजु.36/12
साम. पूर्वा.1/3/13,क्र. सं.33 अथर्व. 1/6/1

(देवी आपः) दिव्य गुणों से युक्त जल (पीतये नः अभिष्टये) पीने के लिये तथा हमारे अभीष्ट कार्यों की सिद्धि के लिये (शं भवन्तु) सुखकारी हों, शान्तिदायक हों (शं योः अभिस्रवन्तु नः) तथा रोग एवं भय आदि का शमन करके हमारे ऊपर चारों ओर से सुख की वर्षा करें।

शं योः शमनं च रोगाणाम् यावनं च भयानाम्।

निरुक्त. 4/3/21/48

शंयोस्। इसमें सं और योस् दो पद हैं। शम् का अर्थ है रोगों का शमन तथा योस् का अर्थ है भयों का दूरीकरण। इसलिये शंयोः का अर्थ हुआ रोग तथा भय आदि को दूर करना।

शं नो ग्रहांश्चान्द्रमसाः शमादित्यश्च राहुणा।
शं नो मृत्युर्धूमकेतुः शं रुद्रास्तिग्मतेजसः॥

अथर्व. 19/9/10

(शं नः ग्रहाः चान्द्रमसाः च आदित्यः) चन्द्रमा तथा सूर्य हमारे लिये शान्ति दायक हों (शं नः मृत्युः धूमकेतुः राहुणा च), मृत्यु के समान दुःखदायी राहु तथा केतु हमारे लिये शान्ति दायक एवं हानि रहित हों, (शं रुद्राः तिग्मतेजसः) तीक्ष्ण तेज अथवा उग्र स्वभाव वाले रुद्रगण अथवा एकादश रुद्र हमारे लिये शान्ति दायक हों।

(शं नः मृत्युः) मृत्यु हमारे लिये सुखकारी हो,

कभी कभी ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न हो जाती हैं कि मृत्यु भी मनुष्य के लिये सुखदायी हो जाती है। ऐसी बीमारी की स्थिति में, जो अत्यन्त कष्ट एवं दुखदायी हो और जिसके ठीक होने की कोई आशा न हो, मृत्यु ही सुखदायी होती है, क्योंकि वही असहनीय कष्ट, आपत्ति अथवा अपमान से मुक्ति दिला सकती है।

फलित ज्योतिष के अनुसार निम्नांकित ग्रह मनुष्य जीवन पर विशेष प्रभाव डालते हैं, (रवि) सूर्य (सोम) चन्द्रमा, मंगल, बुध,बृहस्पति, शुक्र, शनि, राहु, तथा केतु। दश प्राण तथा जीवात्मा, ये एकादश रुद्र मनुष्य शरीर में निवास करते हैं और मनुष्य को जीवित रखते हैं किन्तु शरीर से निकलने पर सब को रुलाते हैं, इसी लिये रुद्र कहे जाते हैं।

शं रुद्राः शं वसवः शमादित्याः शमग्नयः।
शं नो महर्षयो देवाः शं देवाः शं बृहस्पतिः॥

अथर्व. 19/9/11

(शं रुद्राः शं वसवः) एकादश रुद्र हमारे लिये शान्ति दायक हों, अष्ट वसु हमारे लिये शान्ति दायक हों, (शम् आदित्याः शम् अग्नयः) द्वादश आदित्य हमारे लिये शान्ति दायक हों, अग्नियाँ हमारे लिये शान्ति दायक हों, (शं नः महर्षयः देवाः) महर्षि गण हमारे लिये शान्ति दायक हों, (शम् देवाः शं बृहस्पतिः) समस्त देव तथा विद्वान् हमारे लिये शान्ति दायक हों, महती वेद वाणी के प्रणेता एवं रक्षक तथा महान् ब्रह्माण्ड के स्वामा परमपिता परमेश्वर हमें शान्ति प्रदान करें।

'ब्रह्म वै बृहस्पतिः।' (ब्रह्म ही बृहस्पति है।) ऐतरेय. ब्रा. 1/4/21

स्योना पृथिवि नो भवानृक्षरा निवेशनी।
यच्छा नः शर्म सप्रथाः॥

ऋग्. 1/22/15(पाठभेद), यजु. 35/21,36,13

(पृथिवि) हे पृथिवी! (नः स्योना अनृक्षरा) हमारे लिये सुख देने वाली तथा निष्कंटक एवं (निवेशनी भव) निवास के लिये उत्तम स्थान देने वाली होइये (नः सप्रथाः शर्म यच्छ) तथा हमें विस्तृत सुख एवं सुखदायी निवास स्थान प्रदान कीजिये।

शं नो भगः शमु नः शंसो अस्तु शं नः पुरंधिः शमु सन्तु रायः। शं नः सत्यस्य सुयमस्य शंसः शं नो अर्यमा पुरुजातो अस्तु॥

अथर्व. 19/10/2 ऋग्. 7/35/2

(शं नः भगः) ऐश्वर्य प्रदान करने वाले भगवान् हमारे लिये सुखकारी हों (उ) तथा (शं नः शंसः अस्तु) प्रशंसित देव हमें

सुख एवं शान्ति प्रदान करने वाले हों, (पुरंधिः नः शं) विशाल बुद्धि हमें सुख देने वाली हो (उ) तथा (शं रायः सन्तु) निभिन्न प्रकार के धन हमें शान्ति एवं सुख देने वाले हों, (शं नः सत्यस्य सुयमस्य शंसः) उत्तम नियम पूर्वक बोला जाने वाला प्रशंसनीय सत्य हमें सुख देने वाला हो (पुरुजातः अर्यमा नः अस्तु) तथा अत्यधिक प्रशंसित न्यायकारी भगवान् हमारे लिये कल्याणकारी हों।

स नः पवस्व शं गवे शं जनाय शमर्वते।
शं राजन्नोषधीभ्यः॥

साम. उत्त. 1/3, क्र. सं. 653, ऋग्.9/11/3

(राजन्) हे प्रभो! (स नः पवस्व) वह आप हमें पवित्र कीजिये, (शं गवे शं जनाय शम् अर्वते) हमारी गौवों के लिये, हमारे पुत्र, मित्र आदि जनों के लिये तथा हमारे अश्वों के लिये शान्ति एवं सुख हो। (शं ओषधीभ्यः) हमारी ओषधियों के लिये, हमारे अन्न की फसलों के लिये कल्याणकारी होइये अर्थात् अन्न की हमारी फसलें उत्तम हों तथा उनसे हमें पौष्टिक अन्न प्राप्त हो। गेहूँ, जौ, चना, चावल, आदि सभी ओषधियाँ हैं। यहाँ 'गो' का अर्थ ज्ञानेन्द्रियाँ तथा 'अर्व' का अर्थ कर्मेन्द्रियाँ भी हो सकता है।

शान्तानि पूर्वरूपाणि शान्तं नो अस्तु कृताकृतम्।
शान्तं भूतं च भव्यं च सर्वमेव शमस्तु नः॥

अथर्व. 19/9/2

(शान्तानि पूर्वरूपाणि) कार्यों तथा घटनाओं के पूर्वरूप हमारे लिये शान्तिदायक हों, (शान्तं नः अस्तु कृताकृतम्) हमारे कृत एवं अकृत अर्थात् किये हुये कर्म तथा जो कर्तव्य करने से रह गये हैं, वे सब हमारे लिये शान्ति दायक हों, (शान्तम् भूतं च भव्यं च) भूत, भविष्य तथा वर्तमान हमारे लिये शान्ति दायक हों, (सर्वम् एव शम् अस्तु नः) सभी कुछ हमारे लिये शान्ति दायक हो।

पूर्व रूपाणि का अर्थ है- (१) कार्य करने से पूर्व के विचार तथा संकल्प (२) उनकी तैयारी का प्रारम्भ अथवा स्वरूप (३) संभावित घटनाओं का पूर्वरूप अर्थात् उनके पहले का घटना क्रम (४) किसी कार्य के होने से पहले की परिस्थितियाँ। उदाहणार्थ, न केलव पुत्र जन्म हमारे लिये शान्तिदायक हो बल्कि उसके होने से पहले की परिस्थितियाँ तथा घटनायें भी हमारे लिये शान्तिदायक हों।

सायणाचार्य ने इसका अर्थ पूर्व जन्म के पाप कर्म किया है, जो उचित प्रतीत नहीं होता।

इयं या पंरमेष्ठिनी वाग्देवी ब्रह्मंसंशिता।
ययैव ससृजे घोरं तेनैव शान्तिंरस्तु नः ॥

अथर्व. 19/9/3

(परमेष्ठिनी) परम अर्थात् सर्वोत्कृष्ट स्थान में अथवा जीवात्मा के आश्रय में स्थित रहने वाली, (ब्रह्म संशिता) वेद द्वरा प्रशंसित तथा वेद मन्त्रों एवं ज्ञान से सशक्त एवं ओजस्वी बनने वाली (इयं या वाक् देवी) दिव्य गुणों से युक्त यह जो वाणी है, (यया एव

ससृजे घोरं) जिसके अमर्यादित एवं असंयमित हो जाने से घोर अर्थात् भयंकर एवं निकृष्ट कार्यों का जन्म होता है, (तया एव नः शान्तिः अस्तु) उससे ही हमें शान्ति प्राप्त हो।
हम ऐसी संयमित एवं मर्यादित वाणी बोलें जिससे हम सभी को शान्ति एवं सुख प्राप्त हो तथा किसी को कोई दुःख न हो और किसी घोर कार्य करने के लिये न तो प्रोत्साहन प्राप्त हो और न बाध्य होना पड़े। जिस वाणी से दुःखदायक शाप दिया जा सकता है, उसी से मंगलकारी आशीर्वाद दिया जाय, मधुर वचन बोला जाय।

इदं यत्परमेष्ठिनं मनो वां ब्रह्मसंशितम्।
येनैव ससृजे घोरं तेनैव शान्तिरस्तु नः॥

अथर्व. 19/9/4

(परमेष्ठिनं) उत्कृष्ट स्थान में स्थित अर्थात् आत्मा के श्रेष्ठ आश्रय में स्थित रहने वाला तथा (ब्रह्म संशितम्) वेद द्वारा प्रशंसित अथवा ज्ञान एवं वेद मन्त्रों द्वारा सशक्त, ओजस्वी एवं तीक्ष्ण किया जाने वाला (वाम् इदं यत् मनः) आप दोनों (स्त्री तथा पुरुष) का यह जो मन है, (येन एव)जिसके विकृत हो जाने पर ही (ससृजे घोरं) घोर अर्थात् भयंकर एवं निन्दनीय कर्मों का जन्म होता है (तेन एव) उस मन से ही (नः शान्तिः अस्तु) हम सबको शान्ति एवं सुख प्राप्त हो।
जब हमारा मन शिव संकल्प वाला होगा, तब हमसे कोई निकृष्ट कार्य नहीं होगा क्योंकि मन से ही समस्त कार्य किये

जाते हैं और इसी से मनुष्य को सुख दुःख तथा मोक्ष अथवा बन्धन प्राप्त होता है।

इमानि यानि पञ्चेन्द्रियाणि मनः षष्ठानि मे हृदि ब्रह्मणा संशितानि। यैरेव ससृजे घोरं तैरेव शान्तिरस्तु नः॥ अथर्व. 19/9/5

(मे हृदि) मेरे हृदय में स्थित तथा (ब्रह्मणा संशितानि) वैदिक ज्ञान द्वारा सशक्त एवं तीक्ष्ण बनायी जाने वाली एवं आत्मा द्वारा अपने अपने कार्यों में प्रवृत्त की जाने वाली (इमानि यानि पञ्चेन्द्रियाणि) चक्षु, श्रोत्र, नासिका, जिह्वा तथा त्वचा, ये जो पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ तथा छठा मन है, (यैः एव) जिनके असंयमित तथा विकृत हो जाने पर (ससृजे घोरं) समस्त भयंकर एवं निकृष्ट कार्यों का जन्म होता है, (तैः एव) उनसे ही, उन्हें संयमित, सुसंकृत एवं श्रेष्ठ बनाकर (नः शान्तिः अस्तु) हमें शान्ति प्राप्त हो।

द्यौः शान्तिरन्तरिक्ष ँ शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः। वनस्पतयः शान्तिर्विश्वे देवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्व ँ शान्तिः शान्तिरेव शानतिः सा मा शान्तिरेधि॥

यजु. 36/17

(द्यौः शान्तिः) द्युलोक हमें शान्ति प्रदान करे, अन्तरिक्ष हमें शान्ति प्रदान करे, (पृथिवी शान्तिः) पृथिवी हमें शान्ति प्रदान

करे, (आपः शान्तिः) जल हमें शान्ति प्रदान करे, (ओषधयः शान्तिः) ओषधियाँ हमें शान्ति प्रदान करें, (वनस्पतयः शान्तिः) वनस्पतियाँ हमें शान्ति प्रदान करें, (विश्वे देवाः शान्तिः) समस्त देव एवं विद्वान् हमें शान्ति प्रदान करें, (ब्रह्म शान्तिः) ब्रह्म हमें शान्ति प्रदान करे, (सर्वं शान्तिः) समस्त जगत् हमें शान्ति प्रदान करे, (शान्ति एव शान्तिः) चारों ओर शान्ति ही शान्ति हो (सा शान्तिः मा एधि) तथा वह शान्ति मुझे प्राप्त हो।

<u>ओ३म्</u>

तस्य वाचकः प्रणवः। (योग दर्शन समाधि पाद, 27)

उस ब्रह्म का वाचक प्रणव अर्थात् ओ३म् है।

ब्रह्म ओ३म् पद वाच्य है अर्थात् ब्रह्म को ओम् कहते हैं।

ओ३म् इति ब्रह्म। ओम् इति इदं सर्वम्।

तैत्तरीय उपनिषद, 1.8

ओम् यह ब्रह्म है। यह समस्त संसार ओ ३म् है, उसी का रूप है, उसी की महिमा है, कण कण में उसी की सत्ता प्रतिभासित हो रही है।

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितंमुखम्।
योऽसावादित्ये पुरुषः सोऽसाववहम्। ओ३म् खं ब्रह्॥

यजु.40. 17

(सत्यस्य मुखम् हिरण्मयेन पात्रेण अपिहितम्) सत्य का मुख हिरण्मय अर्थात् स्वर्णिम पात्र से ढँका हुआ है, (यो असौ आदित्ये पुरुषः) जो वह आदित्य में पुरुष अर्थात् परमात्मा है, (सः असौ अहम्) वही, उसी का अंश (असौ) प्राणों में रहने वाला मैं (जीवात्मा) हूँ। (ओ३म् खं ब्रह्म) ओ ३म् आकाश के समान सर्वव्यापक ब्रह्म है ।

वायुरनिलममृतमथेदं भस्मान्त ँ्शरीरम् ।
ओ३म् क्रतो स्मर क्लिबे स्मर कृत ँ् स्मर॥

यजु. 40.15

मृत्यु के उपरान्त (वायुः अनिलम्) प्राण वायु, समष्टि अविनाशी वायु तत्व में विलीन हो जाता है, (अथ इदं शरीरं भस्मान्तं) और इस शरीर का अन्त भस्म के रूप में हो जाता है अर्थात् यह पार्थिव शरीर जलाकर भस्म कर दिया जाता है अथवा अन्य प्रकार से मिट्टी में मिल जाता है।

(क्रतो ओ ३म् स्मर) हे कर्म करने वाले जीव ! ओ ३म् का स्मरण करो, (क्लिबे स्मर) अपने सामर्थ्य की वृद्धि के लिये

ओ३म् का स्मरण करो, (कृतं स्मर) अपने किये हुये कर्मों का स्मरण करो।

मन्त्र मेंस्पष्ट रूपसे कहा गया है कि हमें नित्य प्रति ओम का ध्यान तथा स्मरण करना चाहिये और यह विचार करना चाहिये कि आज हमने कौन सा अनुचित कार्य किया है जिसे हम भविष्य में नहीं करेंगे और कौन सा आवश्यक कार्य जो हमें करना चाहिये था, उसे नहीं किया है।

पाप दो प्रकार से होता है, एक वह जो हम जाने अनजाने करते हैं, वह कृत अर्थात् किया हुआ पाप होता है और दूसरा जो उचित कार्य न करने से, जैसे व्रद्ध माता पिता आदि की सेवा न करने से, उन्हें अच्छा भोजन न देने से तथा किसी असहाय व्यक्ति अथवा बच्चे की सहायता न करने से किया हुआ पाप, अकृत पाप होता है। हमें दोनों प्रकार के पापों से बचना चाहिये।

मन्त्र में कहा गया है कि ओम् का स्मरण करने से हमारे सामर्थ्य की वृद्धि होती है क्योंकि भगवान् की सहायता एवं कृपा के बिना कोई कार्य सफल नहीं हो सकता ।

इस महत्व पूर्ण मन्त्र से यह भी स्पष्ट है कि हमें केवल ओम् की ही उपासना करनी चाहिये उसी का ध्यान, उसी का जप करना चाहिये, अन्य किसी का नहीं।

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन्।
यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम्॥

गीता, 8.13

जो पुरुष **'ॐ'** इस एकाक्षर ब्र ह्म का उच्चारण करते हुये तथा (माम्) मुझको अर्थात् भगवान् को स्मरण करते हुये शरीर त्याग करके जाता है, वह परम गति को प्राप्त करता है।

तज्जपस्तदर्थभावनम्।

योगदर्शन, समाधि पाद, 28

प्रणव अथवा ओ ३म् का ध्यानपूर्वक एकाग्र चित्त से तथा भक्तिभाव से जप करना चाहिये और उसी की भावना, उसी का विचार श्रद्धापूर्वक अपने हृदय, मन तथा बुद्धि में स्थिर करना चाहिये।

एतद्ध्येवाक्षरं ब्रह्म एतद्ध्येवाक्षरं परम्।
एतद्ध्येवाक्षरं ज्ञात्वा यो यदिच्छति तस्य तत्॥

कठोपनिषद्,1.2.16

यह अक्षर ओम् ही ब्रह्म है, यह अक्षर ही सर्वश्रेष्ठ है, इस अक्षर को जानकर, जो जिस वस्तु की इच्छा करता है, वह उसको प्राप्त हो जाती है अर्थात् इसके ज्ञान तथा इसकी उपासना से पुरुष को अभीष्ट फल एवं कामना की प्राप्ति होती है।

एतदालम्बनम् श्रेष्ठमेतदालम्बनं परम्।
एतदालम्बनं ज्ञात्वा ब्रह्मलोके महीयते॥

कठोपनिषद् ,1.2.17

यह ओ३म् ही श्रेष्ठ आलम्बन है, यही आलम्बन सर्वश्रेष्ठ है। इस आश्रय को, आलम्बन को भली प्रकार ज्ञानपूर्वक जानकर, प्राप्त कर, पुरुष ब्रह्मलोक में महिमान्वित होता है।

अध्यात्मम् आत्मभैषज्यम् आत्मकैवल्यम् ओङ्कारः।

गोपथ ब्राह्मण, पूर्वभाग 1,कण्डिका, 30 ॥

ओङ्कार अध्यात्म, आत्मभैषज्य तथा आत्मकैवल्य है।

अध्यात्मम्- ओ ३म आत्मज्ञान का अधिकरण अर्थात् आधार है। ओ३म् का ध्यान करने से आत्म ज्ञान प्राप्त होता है।

आत्मभैज्यम्- ओ३म् आत्मा का औषध है। इसके जप, ध्यान तथा चिन्तन से आत्मा के समस्त दोष दूर हो जाते हैं और आत्मा पूर्णरूपेण निर्मल हो जाती है।

आत्मकैवल्यम्- ओ३म् का ध्यान आत्मा को मोक्ष देने वाला है।

प्रणवो धनुः शरो ह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते।
अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत्तन्मयो भवेत् ॥

मुण्डक उपनिषद्, 2.2.4

(प्रणवः धनुः) ओंकार को धनुष, (शरः आत्मा) आत्माको वाण (ब्रह्म तत् लक्ष्यम् उच्यते) तथा ब्रह्म को उसका लक्ष्य कहा जाता है। अतः (अप्रमत्तेन शरवत्) आलस्य रहित होकर अपने आत्मा को वाण के सदृश ब्रह्म रूपी लक्ष्य में (वेद्धव्यम्) बींधना

चाहिये तथा (तन्मयः भवेत्) उस ब्रह्म में तन्मय हो जाना चाहिये।

इस प्रकार भक्ति पूर्वक किये गये ओ ३म् के जप तथा ध्यान से और श्रेष्ठ कर्मों एवं ज्ञान की सहायता तथा करुणामय भगवान् की कृपा से मनुष्य निश्चित रूप से ब्रह्म को प्राप्त कर सकता है।

ब्रह्म

जन्माद्यस्य यतः। वेदान्त दर्शन 1.1.2

इस संसार का जन्म आदि आर्थात् उत्पत्ति, स्थिति तथा प्रलय जिससे होती है वह ब्रह्म है।

यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते । येन जातानि जीवन्ति। यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति। तद्विजिज्ञासस्व तद् ब्रह्मेति॥

तैत्तिरीयउपनिषद्,3.1

जिससे यह समस्त ब्रह्मण्ड उत्पन्न होता है, जिसके आधार पर जीवित रहता है और अन्त में जिसमें लय होजाता है, उस की जिग्यासा करो, वह ब्रह्म है।

पुरुषऽएवेदꣳ **सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम्।**
उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति॥

ऋग्.10/90/2 ,वाजसनेयि, यजु.31/2,साम6/4/5, अथर्व. 19/6/4

(यद्भूतं यत् च भाव्यम् पुरुष इव इदम् सर्वम) भूत, भविष्य तथा वर्तमान में जो कुछ भी था, जो कुछ इस समय है, और जो कुछ भविष्य में होगा, वह सब पुरुष ही है। वह उस अमृतत्व अर्थात् जीवात्मा का भी स्वामी है जो शरीर में अन्न के साथ बढ़ता है। आत्मा शरीर में रहता है और शरीर अन्न से बढ़ता है किन्तु आत्मा के बिना शरीर नहीं बढ़ सकता अतः मन्त्र में आलंकारिक ढंग से आत्मा को ही अन्न के साथ बढ़ने वाला कह दिया गया है।

एतावानस्य महिमा ऽतो ज्यायाँश्च पूरुषः।
पादो ऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतंदिवि ॥

ऋग्.10/90/3, यजु.31/3, अथर्व.19/6/3

(एतावान् अस्य महिमा) यह समस्त ब्रह्माण्ड उस ब्रह्म की, उस पुरुष की महिमा है। इस विश्व से केवल उसकी महिमा का बोध होता है (पुरुषः अतोज्यायान् च) वह पुरुष तो इससे कहीं अधिक महान् और श्रेष्ठ है।(विश्वा भूतानि अस्य पादः) यह समस्त चराचर जगत उसका केवल एक पाद है, एक अंश है, (अस्य अमृतं त्रिपाद् दिवि) उसके तीन पाद द्युलोक में अपने अमृत स्वरूप में स्थित हैं।

उस महान् पुरुष के एक अंश से उत्पन्न होने वाली यह सृष्टि परिवर्तित होती रहती है, बनती और बिगड़ती रहती है

किन्तु उसके तीन पाद अर्थात् वह पूर्ण पुरुष अपने अमृत स्वरूप में सदा अविकारी, अपरिवर्तनीय, एक रस एवं ध्रुव होकर रहता है।

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्र तारकं,
नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः।
तमेव भान्तमनुभाति सर्वं,
तस्य भासा सर्वमिदं विभाति॥

श्वेताश्वेतर उपनिष्द, 6/14, मुण्डकोपनिषद्,2/2/10, कठोपनिषद्.2/2/15

वहाँ न सूर्य प्रकाशित होता है, न चन्द्रमा, न तारागण, ये बिजलियाँ भी वहाँ प्रकाशित नहीँ होतीं, फिर यह अग्नि वहाँ कैसे प्रकाशित हो सकता है ? उस परब्रह्म के प्रकाशित होने पर ही ये सूर्यादि उसके प्रकाश से प्रकाशित होते हैं। उसी के प्रकाश से यह समस्त जगत् प्रकाशित होता है, आलोकित एवं सुशोभित होता है।

स्वःयस्य च केवलं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः।

(अथर्व वेद 10.8.1

ब्रह्म निराकार है, भूत,भविष्य, वर्तमान सब का अधिष्ठाता है, सबका स्वामी है। ब्रह्म **केवल** (स्वः) सुखस्वरूप, आनन्द स्वरूप , ज्ञान स्वरूप तथा प्रकाश स्वरूप है । इस प्रकार वेद में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि उसका अन्य कोई रूप नहीं है। वह सबसे महान है और उसकी महिमा अनन्त है।

सत्यं ज्ञानं अनन्तं ब्रह्म। तैत्तिरीय उपनिषद् 2.1

ब्रह्म सत्य है ज्ञान स्वरूप है और अनन्त है।

ब्रह्म केवल एक है, विद्वान लोग उसे अनेक नामों से पुकारते हैं।

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो

दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान्।

एकं सद्विप्रा बहुधा वद-

न्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः॥

अथर्व.9/10/28, ऋग्.१।१६४।४६

ब्रह्म ही एक मात्र सत् है। उसी का विद्वान् लोग बहुत प्रकार से, अनेक नामों से वर्णन करते हैं। उसी को इन्द्र, मित्र,वरुण, अग्नि, दिव्य सुवर्ण, गरुत्मान्, यम तथा मातरिश्वा कहते हैं।

न द्वितीयो न तृतीयोयश्चतुर्थो नाप्युच्यते।

अथर्व. 13.5.16

ब्रह्म को न दूसरा न तीसरा और न चौथा ही कहा जाता है।

न पञ्चमो न षष्ठः सप्तमो नाप्युच्यते।

अथर्व. 13.5.17

ब्रह्म को न पाँचवा, न छठा और न सातवाँ ही कहा जाता है।

नाष्टमो न नवमो दशमो नाप्युच्यते।

अथर्व.13.5.18

ब्रह्म को न आठवाँ, न नौवाँ और न दशवाँ ही कहा जाता है।

सर्वे अस्मिन् देवा एकवृतो भवन्ति । *अथर्व. 13.5.21*

इसमें सब देव एककार हो जाते हैं।

स सर्वस्मै वि पश्यति यच्च प्राणति यच्च न ।

अथर्व. 13.5.19

वह परमात्मा सब को देखता है, जो प्राण धारी है और जो प्राण धारी नहीं है।

इससे स्पष्ट है कि ब्रह्मा, विष्णु, महेश ,रुद्र आदि ब्रह्म के ही भिन्न भिन्न नाम हैं , ये कोई अलग अलग देवता नहीं है तथा वेद में बहु- देवता वाद नहीं है, केवल एक ब्र ह्म की ही उपासना का विधान है।

इसी तथ्य को निम्नांकित मन्त्रों में भी कहा गया है-

तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तदुचन्द्रमाः।
तदेव शुक्रं तद्ब्रह्म ता आपः स प्रजापतिः ॥

यजु. 32 .1

वही अग्नि है, वही आदित्य है, वही वायु है, वही चन्द्रमा है, वही शुक्र है, वही जल है, वही प्रजा पति है, और वही ब्रह्म है। यह समझना अत्यन्त महत्व पूर्ण है कि प्रकरण के अनुसार, उपरोक्त अनेक नामों से केवल आध्यात्मिक अर्थ में ब्रह्म का बोध होता है।

योनः पिता जनिता यो विधाता धामानि वेद
भुवनानि विश्वा यो देवानां नामधा एक एव त २ं३
सम्प्रश्नं भुवना यन्त्यन्या ॥

अथर्व.२।१।३ (पाठभेद)   ऋग्.१०.८२.३   यजु.१७।२७

(यो नः पिता) जो हमारा पिता,पालन कर्ता तथा रक्षा करने वाला, (जनिता) जन्म देने वाला, (विधाता) जगत का निर्माण करने वाला तथा कर्मों के अनुसार फल देने वाला है,(यः विश्वा भुवनानि) जो समस्त लोकों तथा (धामानि वेद) स्थानों को जानता है (यः एकः एव) **जो केवल एक ही है** और जो (देवानां नामधा) समस्त देवों के नाम को धारण करता है अर्थात् जिसे अग्नि, वायु,आदित्य आदि देवता वों के नामों से भी जाना जाता है, (तं सम्प्रश्नं) उसी प्रश्न पूंछे जाने योग्य अर्थात् जिसके विषय में ही प्रश्न पूंछा जाना उचित एवं आवश्यक है, परमात्मा में (अन्या भुवना यन्ति) सभी लोक लोकांतर समर्पित हैं, आधारित हैं तथा अन्त में लीन हो जाते हैं।

'तं सम्प्रश्नम्' का तात्पर्य यह है कि एक मात्र परमात्मा ही है, जिसके विषय में प्रश्न पूंछ कर ज्ञान प्राप्त करना चाहिये अन्य समस्त ज्ञान परमात्मा के ज्ञान के समक्ष नगण्य हैं।

इसी के आधार पर गीता में कहा गया है-

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया

उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्वदर्शिनः ॥ (गीता. 4.34)

विनम्रता पूर्वक प्रणाम करके, भली प्रकार प्रश्न पूछकर तथा सेवा करके तत्वदर्शी ज्ञानियों से ज्ञान प्राप्त करो। वे ज्ञानी तुम्हें परमात्मा के विषय में ठीक ठीक ज्ञान देंगे।

भगवान् के ब्र ह्मा, विष्णु, शिव, रुद्र आदि नाम उसके विभिन्न रूपों तथा शक्तियों के आधार पर हैं।

स ब्रह्मा स विष्णुः स रुद्रः स शिवः सो ऽक्षरस्य परमः स्वराट्। स इन्द्रः स कालाग्निः स चन्द्रमा ॥

कैवल्य उपनिषद्

अवति इति ओम्, आकाशिव व्यापकत्वात् खम्, सर्वेभ्यो बृहत्वाद् ब्रह्म। *स्वामी दयानन्द, सत्यार्थ प्रकाश,*

रक्षा करने से (ओम्), आकाशवत् व्यापक होने से (खम्), तथा सब से बड़ा होने से ईश्वर का नाम (ब्रह्म) है।

(विष्लृ व्याप्तौ) इस धातु में (नु) प्रत्यय लगाने पर विष्णु शद्ब सिद्ध होता है, इसलिये सर्व व्यापक होने से परमात्मा का नाम विष्णु है।

(वस निवासे) इस धातु से (वसु) शद्ब सिद्ध हुआ है। वसन्ति भूतानि यस्मिन्नथवा यः सर्वेषु वसति स वसुरीश्वरः। इसलिये सब प्राणी जिसमें वसते हैं अथवा जो समस्त प्राणियों में निवास करते हैं, वह भगवान् वसु हैं, जगन्निवास हैं,

(रुदिर अश्रुविमोचने) इस धातु से **(णिच्)** प्रत्यय होने से **(रुद्र)** शद्ब सिद्ध होता है। **(यो रोदयत्यन्यायकारिणो जनान् स रुद्रः)** जो दुष्ट कर्म करने वालों को रुलाता है, उस परमेश्वर का नाम रुद्र है।

आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः।
ता यदस्यायनं पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः॥

मनु.अ. 1.10.

जल और जीवों का नाम नारा है, ये अयन अर्थात् निवासस्थान हैं, जिसके, उस जल और जीवों में व्याप्त परमात्मा का नाम **नारायण** है।

सर्व व्यापक होने तथा पराक्रम करने के कारण भगवान् विष्णु हैं, सबका कल्याण करने तथा सब को सुख देने के कारण भगवान शिव हैं, सब से महान होने तथा संसार पर नियन्त्रण करने के कारण भगवान् ब्र ह्मा हैं, दुष्टों को दण्ड देकर उन्हें रुलाने के कारण भगवान रुद्र हैं।

रुद्र शद्ब के दो अर्थ हैं एक रोगों आदि को दूर करके शुख देने वाला जैसे सूर्य और दूसरा अर्थ है रुलाने वाला जैसे बीमार करके रुलाने वाले रोग फैलाने वाले विषैले जीवाणु।

उपनिषद् में कहा गया है कि शरीर के अन्दर दश प्राण और जीवात्मा ये ग्यारह रुद्र हैं क्योंकि जब ये शरीर से निकलते हैं तब सभी परिवार वालों और सम्बन्धियों आदि को

रुलाते हैं। यह देखने की बात है कि जो प्राण और आत्मा शरीर को जीवित रखते हैं, शरीर का कल्याण करते हैं वही रुद्र भी हैं। इसी प्रकार जो शिव संसार का कल्याण करते हैं, वही रुद्र भी हैं।

अग्नि से हम जीवित रहते हैं और वही अग्नि रुद्र के रूप में सबकुछ जला कर भस्म कर देती है, इसलिये अग्नि भी रुद्र है।

इसी प्रकार परिवार में जो पिता सदैव अपने पुत्र का कल्याण करने के लिये प्रयत्न करता है, वही पुत्र को बुरे मार्ग पर चलने से रोकने के लिये उसे दण्ड भी देता है। इसलिये परिवार के संदर्भ में वह भी रुद्र है। यही भगवान का अनोखा विधान है।

परमात्मा के अनेक नाम होने की बात को इस प्रकार समझा जा सकता है कि छोटे बच्चे को माता पिता चुन्नू, मुन्नू, शेरू, शुभ्रम आदि नामों से बुलाते हैं और बड़े होने पर उसी को बेटा अथवा अन्य किसी नाम से बुलाते हैं। उसी को अन्य लोगों द्वारा भइया, दादा, मौसा, चाचा, ताऊ, जीजा, बाबा, नाना, आदि अनेक नामों से बुलाया जाता हैं। जब एक ही व्यक्ति के इतने नाम हो सकते हैं तब भगवान् के हज़ारों नाम होने में क्या आश्चर्य हो सकता है।

वेदों में ब्रह्म के अवतार लेने का कोई उल्लेख नहीं है, अवतार की कल्पना ही वेदानुकूल नहीं है। श्री राम तथा श्री

कृष्ण जिन्हें हम अवतार मानते हैं, निश्चय ही देव तुल्य हैं और उनका पूजन किया जाना चाहिये किन्तु वह ब्रह्म नहीं हैं। साधारण सी बात है कि जिस ओ ३म् तथा गायत्री की उपासना स्वयं श्री राम तथा श्री कृष्ण और उनके पूर्वज तथा ऋषि महर्षि करते थे उसी परबब्रह्म की उपासना हमें करनी चाहिये, अन्य किसी देवता की नहीं।

विष्णु

तद्विष्णोः परमं पद सदा पश्यन्ति सूरयः।
दिवीव चक्षुराततम्॥

अथर्व. 7/27/7, ऋग्. 1/22/20, साम.8/2/4, क्र.सं.1672, यजु.6.5

(विष्णोः तत् परमं पदम्) विष्णु के उस परम पद को (सूरयः) ज्ञानी जन (दिवि आततम्) द्युलोक में स्थित (चक्षुः इव) सूर्य अथवा चारों ओर फैले हुये सूर्य के प्रकाश के समान स्पष्ट रूप से देखते हैं।

पदम्- पद्यते गम्यते प्राप्यते इति पदम्।

विष्णोः कर्माणि पश्यत यतो व्रतानि पस्पशे।
इन्द्रस्य युज्यः सखा।

ऋग्. 1.22.19 अथर्व.7.27.6, (पाठभेद)
साम. 18.2.3, क्र. सं. 1671, यजु. 6.4

(विष्णोः कर्माणि पश्यत) विष्णु के, भगवान् के कार्यों को देखो, (यतः व्रतानि पस्पशे) जिनसे सृष्टि के समस्त व्यापार,

समस्त कार्य तथा समस्त शाश्वत नियम चलते हैं। (इन्द्रस्य युज्यः सखा) वह परमात्मा आत्मा का परम मित्र है। मनुष्य को सदा प्रयास करना चाहिये कि वह श्रेष्ठ कर्म करके भगवान् का मित्र बनने के योग्य हो सके।

आत्मा में परमात्मा का मित्र बनने की समस्त योग्यतायें हैं, आवश्यकता है प्रयास, ज्ञान, कर्म, भक्ति एवं उपासना की।

तद्विप्रासो विपन्यवो जागृवांसः समिन्धते।
विष्णोर्यत्परमं पदम्॥

ऋग्. 1.22.21, साम.18.2.5, क्र.सं. 1673, यजु. 34.44,

(विष्णोः यत् परमं पदम्) विष्णु का जो सर्वोत्कृष्ट पद है, ज्योतिर्मय स्वरूप है, (तत्) उसे (जागृवाँसः) प्रमाद रहित होकर तथा जागरुक रहकर निरन्तर प्रयास करने वाले और (विपन्यवः) भक्ति पूर्वक भगवान् की प्रशंसा, स्तुति एवं उपासना करने वाले (विप्रासः) मेधावी विद्वान् (समिन्धते) अपने हृदय में श्रद्धा, सत्य एवं ज्ञान से भली प्रकार प्रकाशित करते हैं।

इन्द्र

इन्द्राय साम गायत विप्राय बृहते बृहत्।
ब्रह्मकृते विपश्चिते पनस्यवे॥

साम. पूर्वा. क्र.सं.388. साम. उत्त.6.72.11 क्र. सं. 1025

ऋग्. 8.98.1 (पाठभेद), अथर्व.20.62.5 (पाठभेद)

हे उद्गाताओ! (विप्राय) विविध कामनाओं को पूर्ण करने वाले, मेधावी (ब्रह्म कृते) वेद को उत्पन्न करने वाले, (विपश्चिते) सर्वदृष्टा, ज्ञानी तथा ज्ञान देवे वाले (पनस्यवे) प्रशंसा एवं स्तुति के योग्य (बृहते इन्द्राय) महान इन्द्र के लिये, परम ऐश्वर्यवान् परमेश्वर के लिये (बृहत् साम गायत) बृहत्साम का गान करो।

ऋग्वेद में ब्रह्मकृते के स्थान पर धर्मकृते अर्थात् धर्म को उत्पन्न करने वाले, शद्ब आया है। इससे स्पष्ट है कि जो वेद में निर्देश दिया गया है, वही धर्म है।

रूपंरूपं प्रतिरूपो बभूव तदस्य रूपं प्रतिचक्षणाय।
इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते युक्ता ह्यस्य हरयः शता दश॥

ऋग्.6.47.18

(रूपं रूपं प्रतिरूपः बभूव) प्रत्येक रूप में उसी प्रभु का रूप है, यह निराकार परब्रह्म समस्त प्राणियों में अन्तर्यामी रूप से स्थित होकर उन्हीं के रूप वाला हो रहा है, (तदस्य रूपं) उसका बाह्य रूप (प्रति चक्षणाय) केवल देखने के लिये होता, वह तो निराकार है अर्थात् प्राणी का उसका रूप केवल बाहर से दखने के लिये है। (इन्द्रः मायाभिः पुरुरूपः ईयते) प्रभु अपनी अनन्त शक्तियों से अनेक रूप धारण करता है (ये समस्त प्राणी उसी के रूप हैं) युक्ता ह्यस्य हरयः शतादश) उसके रथ में हज़ारों घोड़े

जुते हैं, उसकी अनन्त शक्तियाँ हैं, वह सहस्रों किरणों से प्रकाशित हो रहा है।

इन्द्र अपनी माया से पुरुरूप हो जाता है, बहुत से रूप धारण कर लेता है। इसीलिये परमात्मा को विश्वरूप कहते हैं।

माया प्रज्ञानाम *(निघण्टु. 3.9)*

अग्निर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव । एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रितिरूपो बहिश्च ॥

कठोपनिषद् 2.2.9

जिस प्रकार संसार में प्रविष्ट एक ही अग्नि नाना रूपों वाली वस्तुओं में प्रवेश करके उन्हीं के समान रूप वाला हो जाता है, उसी प्रकार सब प्राणियों का अन्तरात्मा परब्रह्म एक होते हुये भी समस्त प्राणियों में उन्हीं के समान रूप वाला होकर उनके अन्दर तथा बाहर स्थित रहता है।

गायन्ति त्वा गायत्रिणोऽ र्चन्त्यर्कमर्किणः ।
ब्रह्माणस्त्वा शतक्रत उद्वंशमिव येमिरे ॥

साम. क्र.सं. 342, तथा 1344, ऋग् 1.10.1

(शतक्रतो) सैकड़ों यज्ञ तथा श्रेष्ठ कर्म करने वाले हे इन्द्र! (गायत्रिणः त्वा गायन्ति) गायक लोग आपके गुणों का गान करते हैं, (अर्किणः) वेदपाठी, विद्वान् (अर्कं अर्चन्ति) पूजनीय आपका पूजन करते हैं, अर्चना करते हैं।

(ब्रह्माणः) ब्रह्मा आदि ऋत्विज तथा ज्ञानी ब्राह्मण (वंशं इव) बाँस में लगे हुये झंडे के समान (त्वा उत येमिरे) आपकी कीर्ति को ऊँचा उठाते हैं, आपका यशोगान करके आपकी महानता का प्रचार करते हैं।

हमें सदैव अपने देवताओं का यशोगान करना चाहिये, उनकी श्रेष्ठता का वर्णन करना चाहिये किन्तु दुर्भाग्य से आजकल हम लोगों में बहुत से मूर्ख अपने देवताओं का अपमान करके दूसरे धर्म के देवताओं का, यहाँ तक कि दूसरे धर्मों के पुरुषों को श्रेष्ठ बताकर उनका गुणगान करते हैं, उनके मन्दिर बनवाते हैं, उन्हें ब्रह्म के समान सच्चिदानन्द कहते हैं तथा उनका पूजन करते हैं।

इन्द्रो विश्वस्य राजति। शं नो अस्तु द्विपदे शं चतुष्पदे॥

साम.4.7.10क्र.सं.456 (पाठभेद) *यजु. 36.8*

परमात्मा का तेज ही समस्त जगत् को प्रकाशित करता है, जगत् में उसी का प्रकाश शोभायमान हो रहा है, वही इस विश्व पर शासन करता है। उसकी कृपा से हमारे पुरुषों, पक्षियों तथा पशुओं आदि का कल्याण हो।

त्वमिन्द्राभिभूरसि त्वं सूर्यमरोचयः।
विश्वकर्मा विश्वदेवो महाँ असि॥

साम.क्र.सं. 1026, *अथर्व. 20.62.6,* *ऋग्.8.98.2*

हे इन्द्र ! हे ऐश्वर्यवान् परमात्मा ! (त्वं अभिभूः असि) तुम सबका पराभव करने वाले, सब पर शासन करने वाले हो। (त्वं सूर्यं अरोचयः) तुम्हीं ने सूर्य को प्रकाशित किया है। (विश्वकर्मा विश्वदेवः महान् असि) तुम विश्वकर्मा, विश्वदेव तथा महान् हो अर्थात् समस्त जगत् के रचयिता हो, सबके इष्टदेव हो तथा सबसे महान् हो।

सूर्य में जो प्रकाश, तेज तथा शक्तियाँ हैं, वह उतनी ही हैं जितनी भगवान् द्वारा उसमें निहित की गयी हैं। वह तेज एवं शक्तियों का कोई स्वतन्त्र स्रोत नहीं है और उसे भी भगवान् के सत्य एवं अपरिवर्तनीय नियमों का सर्वदा पालन करना होता है।

रुद्र

नमस्ते रुद्र मन्यव उतो त इषवे नमः।
बाहुभ्यामुत ते नमः॥

यजु. 16.1

(नमः ते रुद्र मन्यव) हे रुद्र ! आपके क्रोध को नमस्कार है, (उतो त इषवे नमः) आपके वाणों के लिये नमस्कार है (उत ते बाहुभ्याम् नमः) तथा आपकी दोनों भुजाओं को मेरा नमस्कार है।

या ते रुद्र शिवा तनूरघोराऽ पापकाशिनी।
तयानस्तन्वाशन्तमयागिरिशन्ताभिचाकशीहि॥

यजु. 16.2

(गिरिशन्त रुद्र) पर्वत पर निवास करने वाले हे रुद्र! (या ते) आपका जो (शिवा अघोरा अपापकाशिनी) कल्याणमय, मंगलमय, सौम्य, अक्रूर, निष्पाप तथा पापों का नाश करने वाला (तनूः) शरीर अथवा स्वरूप है, (तया शन्तमया तन्वा) अपने उस आनन्दमय तथा आनन्ददायक स्वरूप से (नः अभिचाकशीहि) हमें देखिये, हमारे ऊपर अपनी आनन्ददायक कृपा दृष्टि डालिये।

यामिषुं गिरिशन्त हस्ते बिभर्ष्यस्तवे।
शिवां गिरित्र तां कुरु मा हिꣳसीः पुरुषं जगत्॥

यजु. 16.3

(गिरिशन्त) पर्वत पर निवास करने वाले अथवा मेघों से वृष्टि के द्वारा समस्त जगत् को सुख देने वाले तथा (गिरित्र गिरि वाचि स्थितः) वाणी में स्थित अर्थात् वेद वाणी में स्थित होकर समस्त प्राणियों की ज्ञान द्वारा रक्षा करने वाले, हे रुद्र ! (यां इषुं अस्तवे हस्ते बिभर्षि) चलाने के लिये जो बाण आप अपने हाथ में धारण किये हुये हैं, (तां शिवां कुरु) उसे हमारे लिये कल्याणकारी कीजिये (मा हिंसीः पुरुषं जगत्) तथा जगत् के

मनुष्यों, पशुओं एवं अन्य प्राणियों को कष्ट मत दीजिये, उनका नाश मत कीजिये।

'गिरौ स्थितः शं सुखं तनोति विस्तारयति इति गिरिशन्तः'।

शिवेन वचसा त्वा गिरिशाच्छा वदामसि।
यथा नः सर्वमिज्जगदयक्ष्मꣳ सुमना असत्॥

यजु. 16.4

(गिरिश) हे पर्वतवासी सुखदायक मेघ वृष्टि द्वारा सुख देने वाले अथवा वेद वाणी में निवास करने वाले सुखदायक हे प्रभो! (शिवेन वचसा त्वा अच्छा वदामसि) हम सुन्दर मधुर वचनों से आपको अच्छा कहते हैं, आपकी स्तुति एवं प्रशंसा करते हैं तथा आपसे निवेदन करते हैं, (यथा नः सर्व इत् जगत् अयक्ष्मं सुमना असत्) कि आपकी कृपा से यह समस्त जगत् निरोग एवं सुन्दर मन वाला अर्थात् सुखी समृद्धि एवं शुभ विचारों वाला हो।

असंख्याता सहस्राणि ये रुद्रा अधि भूम्याम्।
तेषाꣳ सहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि॥

यजु. 16.54

(ये असंख्याताः सहस्राणि रुद्राः भूम्यां अधि) जो असंख्य रुद्र पृथिवी के ऊपर स्थित हैं, (तेषां धन्वानि) उनके धनुषों को हम (सहस्र योजने अवतन्मसि) हज़ारों योजन दूर हटा दें।

जो दुष्ट मनुष्य तथा भिन्न भिन्न प्रकार के रोग उत्पन्न करने वाले कीटाणु आदि हैं, वे सब रुद्र हैं, हमें उन्हें अपने से दूर करने का, नष्ट करने का प्रयास करना चाहिये।

यो अग्नौ रुद्रो यो अप्स्व१न्तर्य ओषधीर्वीरुध आविवेश। य इमा विश्वा भुवनानि चाक्लृपे तस्मै रुद्रायनमो अस्त्वग्नये॥

अथर्व. 7.91.1

(यः रुद्रः अग्नौ) जो रुद्र अग्नि में स्थित है, (यः अप्सु अन्तः) जो जलों के अन्दर है, (यः ओषधीः आविवेश) जो ओषधियों एवं वनस्पतियों में प्रविष्ट हुआ है, अर्थात् जो सर्वव्यापक है (यः इमा विश्वा भुवनानि चाक्लृपे) तथा जो इन समस्त भुवनों को रचकर उन्हें समर्थ बनाता है, (तस्मै रुद्राय नमः अस्तु अग्नये) उस अग्नि के समान तेजस्वी तथा सर्वाग्रणी रुद्र के लिये नमस्कार है।

सविता

अभि त्यं देव ॐ सवितारमोण्योः कविक्रतुमर्चामि सत्यसव ॐ रत्नधामभि प्रियं मतिं कविम्। ऊर्ध्वा यस्यामतिर्भा अदिद्युतत्सवीमनि हिरण्यपाणिरममीत सुक्रतुः कृपा स्वः। प्रजाभ्यस्त्व प्रजास्त्वा ऽनुप्राणन्तु प्रजास्त्वमनुप्राणिहि॥

साम. पूर्वा.4.8.8, क्र. सं. 464. अथर्व. 7.14.1 तथा 2 यजु. 4.25

(योण्योः) द्युलोक तथा पृथ्वीलोक अर्थात् समस्त ब्रह्माण्ड को उत्पन्न करने वाले तथा सबको प्रेरणा देने वाले, (कविक्रतुम्) क्रान्तदर्शी, ज्ञानी तथा ज्ञानपूर्वक श्रेष्ठ कर्म करने वाले (सत्यसवं रत्नधां अभि प्रियम् मतिम्) सत्य ऐश्वर्य से युक्त तथा सत्य के प्रेरक एवं प्रवर्तक, रत्नों तथा रमणीय श्रेष्ठ पदार्थों एवं प्रकाशमान लोकों को धारण करने वाले अत्यन्त प्रिय एवं मननीय (यस्य अमतिः भाः) जिसका अपरिमिति तेज, जिसकी अलौकिक कान्ति (सवीमनि ऊर्ध्वा अदिद्युतत्) समस्त उत्पन्न सृष्टि में सर्वोपरि प्रकाशित होती है, शोभायमान होती है, (हिरण्यपाणिं सुक्रतुः) जो स्वर्णिम हाथों वाला तथा समस्त कार्यों को उत्तमता से, सुचारु रूप से करने वाला है और जो (कृपा स्वः अमिमीत) अपनी असीम अनुकम्पा से समस्त प्राणियों के लिये सुख का निर्माण करता है, उनके लिये सुखद परिस्थितियों को उत्पन्न करता है, (त्यं सवितारं) उस सविता देव की, उस परब्रह्म की (अभि अर्चामि) मैं भली प्रकार पुनः पनुः अर्चना एवं उपासना करता हूँ।

(प्रजाभ्यः त्वा) प्रजा के कल्याण के लिये आप से प्रार्थना करता हूँ, (प्रजाः त्वा अनुप्राणन्तु) कि संसार के समस्त प्राणी आपके अनुकूल होकर चलें, आपकी आज्ञानुसार चलें (त्वं प्रजाःअनुप्राणिहि) तथा आप प्रजा के अनुकूल रहें, उस पर कृपा करें।

इस मन्त्र में प्रयोग किये गये विशेषण अत्यन्त सुन्दर एवं मननीय हैं। उदाहरणार्थ (हिरण्यपाणिः सुक्रतुः) भगवान् के कार्य अत्यन्त श्रेष्ठ हैं तथा परम दक्षता एवं उत्तमता से किये जाते हैं। वह समस्त प्राणियों को सुख, सम्पत्ति तथा सहस्रों अन्य प्रकार के दान सदैव देता रहता है, किसी से कुछ, लेता नहीं है, इसीलिये उसे स्वर्णिम हाथों वाला कहा गया है। भगवान् से अधिक श्रेष्ठ एवं कान्तियुक्त हाथ भला किसके हो सकते हैं। हमें भी श्रेष्ठ कर्म करके अपनें हाथों को स्वर्णिम बनाना चाहिये।

विभक्तार२ꣳ हवामहे वसोश्चित्रस्य राधसः।
सवितारं नृचक्षसम्

ऋग्.1.22.7, *यजु.30.4*

(वसोः) समस्त संसार जिनसे बसता है, जिनके आधार पर जीवित रहता है और जो समस्त संसार में अन्तर्यामी रूप से बसते हैं, व्याप्त रहते हैं, ऐसे जगन्निवास, जगदीश्वर (चित्रस्य राधसः विभक्तारम्) भिन्न भिन्न प्रकार के विचित्र धनों एवं अन्य समस्त पदार्थों का यथोचित विभाजन करने वाले तथा समस्त जीवों को उनके कर्मों का यथायोग्य फल देने वाले, (सवितारं) समस्त प्राणियों को उत्पन्न करने वाले तथा उनका पालन पोषण करने वाले, सविता देव का, (नृचक्षसम्) सर्वद्रष्टा प्रभु का हम (हवामहे) आह्वान करते हैं, उनकी स्तुति करते हैं।

हिरण्यपाणिमूतये सवितारमुपह्वये।
स चेत्ता देवता पदम्॥

ऋग्.1.22.5, यजु.22.10,

(हिरण्यपाणिं सवितारं ऊतये उपह्वये) स्वर्णिम हाथों वाले, समस्त जगत् के उत्पादक तथा पालनकर्ता सविता देव का, जगदीश्वर का मैं अपनी रक्षा के लिये आह्वान करता हूँ। (स चेत्ता देवता) सब को प्रेरणा देने वाले वह सविता देव ज्योतिर्मय एवं ज्ञान स्वरूप हैं, सब को प्रकाश एवं ज्ञान देने वाले हैं तथा (पदम्) प्राप्त किये जाने योग्य हैं।

देवस्य चेततो महीं प्र सवितुर्हवामहे।
सुमति ँ सत्यराधसम्॥

यजु.22.11

(सवितः चेततः देवस्य) समस्त संसार को उत्पन्न करने वाले ज्ञान स्वरूप सविता देव की, परब्रह्म की, (सत्यराधसम् महीं सुमतिं प्र हवामहे) सत्य की साधयित्री अथवा सत्य पथ पर चलाने वाली महती सुमति के लिये हम प्रार्थना करते हैं, उसका आवाहन करते हैं।

सत्य की साधना सुमति के बिना नहीं हो सकती।

तत्सवितुर्वृणीमहे वयं देवस्य भोजनम्।
श्रेष्ठं सर्वधातमं तुरं भगस्य धीमहि॥

ऋग्. 5.82.1

(तत् देवस्य सवितुः) समस्त ब्रह्माण्ड को उत्पन्न करने वाले, उसका पालन पोषण करने वाले तथा उसको प्रेरणा देने वाले उस सविता देव के, (भोजनम्) हमारे द्वारा भोग किये जाने योग्य धन तथा ऐश्वर्य का (वयं वृणीमहे) हम वरण करते हैं तथा उस (भगस्य) परम ऐश्वर्यवान् ईश्वर के (श्रेष्ठं सर्वधातमम्) सर्वश्रेष्ठ एवं सबको धारण करने वाले (तुरम्) समस्त शत्रुओं, दुःखों, कष्टों तथा पापों का शीघ्र नाश करने वाले सामर्थ्य का हम (धीमहि) ध्यान करते हैं, उसे अपने अन्दर धारण करते हैं।

सामान्य जीवन में हम इच्छा करते हैं कि किसी उच्च पद पर आसीन होकर हम शासन के अधिकारों तथा उससे प्राप्त होने वाले ऐश्वर्य को अपने अन्दर धारण करें, किन्तु यहाँ प्रार्थना की गयी है कि हम न केवल किसी राजा अथवा शासन के अधिकारों को अपने अन्दर धारण करें बल्कि समस्त जगत् पर शासन करने वाले ईश्वर के सामर्थ्य के, उसके ऐश्वर्य के कुछ अंश को अपने अन्दर धारण करें। इससे बढ़कर और क्या हो सकता है, कैसी सुन्दर प्रार्थना है यह !

देव सवितः प्र सुव यज्ञं प्र सुव यज्ञपतिं भगाय ।
दिव्यो गन्धर्वः केतपूः केतं नः पुनातु वाचस्पतिर्वाचं नः स्वदतु ॥

यजु. 9.1, (पाठभेद) *यजु. 11.7, 30.1*

(सवितः देव) समस्त ब्रह्माण्ड को उत्पन्न करने वाले हे परब्रह्म ! (भगाय) हमें ऐश्वर्य के लिये (यज्ञं प्रसुव) यज्ञ की, श्रेष्ठ कर्मों की प्रेरणा दीजिये तथा (यज्ञपतिं प्रसुव) यज्ञ का, श्रेष्ठकर्म का संरक्षण करने वाले को प्रेरणा दीजिये। (दिव्यः) दिव्य गुणों एवं शक्तियों से युक्त (गन्धर्वः) पृथिवी को धारण करने वाला, (केतपूः) तथा ज्ञान से सब को पवित्र करने वाला परमात्मा (नः केतं) हमारे ज्ञान एवं शरीर को (पुनातु) पवित्र करे (वाचस्पतिः) तथा वाणी का स्वामी एवं रक्षक (नः वाचं) हम सबकी वाणी को (स्वदतु स्वादयतु) स्वादयुक्त अर्थात् मधुर बनाये।

मानव जीवन की उन्नति के लिये ये सद्गुण आवश्यक हैं। (सविता वै देवानां प्रसिविता (-शतपथ. ब्रा.1.1.2.17) सूर्य, चन्द्र, अग्नि, वायु आदि समस्त देवताओं को उत्पन्न करने वाला तथा प्रेरणा देने वाला परमात्मा सविता है। यहाँ सविता का अर्थ सूर्य नहीं है।

जीवात्मा

विधुं दद्राणं समने बहूनां युवानं सन्तं पलितो जगार। देवस्य पश्य काव्यं महित्वाद्या ममार स ह्यः समान॥

साम.क्र.सं 1782, अथर्व. 9/10/9 ऋग्. 10/55/5

(विधुं समने बहूनां दद्राणं) विविधि कर्मों को करने वाले और युद्ध में बहुत से शत्रुओ को मार भगाने वाले, (युवानं सन्तं पलितः जगार) युवा पुरुष को मृत्यु रूपी वृद्ध ने निगल लिया। (देवस्य महित्वा पश्य काव्यं) भगवान् की महिमा से पूर्ण इस अनोखी सामर्थ्य को, उनके इस अद्भुत कर्म को देखो। (यः ह्यः समान) जो कल जीवित था वह (अद्या ममार) आज मर गया और जो (ह्यः ममार) कल मर गया वह (अद्य समान) आज पुनः जीवित हो गया।

तात्पर्य यह है कि आत्मा अमर है और मृत्यु के पश्चात् नवीन शरीरों में चला जाता है, जैसा कि गीता में कहा गया है-

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय,
नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।

तथा शरीराणि विहाय जीर्णा-
न्यन्यानि संयाति नवानि देही॥

गीता,2/22

जिस प्रकार मनुष्य पुराने वस्त्रों को त्याग कर दूसरे नये वस्त्रों को ग्रहण करता है, उसी प्रकार जीवात्मा पुराने शरीर को त्याग कर दूसरे नये शरीर को धारण करता है।

अन्ति सन्तं न जहात्यन्ति सन्तं न पश्यति।
देवस्य पश्य काव्यं न ममार न जीर्यति॥

अथर्व.10/8/32

(अन्ति सन्तं न जहाति) समीप रहते हुये यह जीवात्मा आजीवन शरीर को नहीं छोड़ता, उसके साथ ही रहता है, (अन्तिसन्तम् न पश्यति) पास रहते हुये भी इसे कोई देख नहीं पाता, (देवस्य पश्य काव्यं) भगवान् के काव्य, उसकी लीला अथवा उसके आश्चर्य जनक कर्म को देखो, (न ममार न जीर्यति)कि यह जीवात्मा न तो मरता है और न जीर्ण होता है।

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः॥

गीता.2/23

इस आत्मा को न तो शस्त्र काट सकते हैं, न अग्नि जला सकता है, न जल गीला कर सकता है और न वायु सुखा सकती है।

ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः।
मनः षष्टानीन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानि कर्षति॥

गीता, 15/7

शरीर में जीवात्मा मेरा ही सनतान अंश है और वही प्रकृति में स्थित मन तथा पाँचों इन्द्रियों को आकर्षित करके शरीर में रखता है।

उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत्।
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः॥

गीता.6/5

अपने द्वारा अपना तथा अपनी आत्मा का उद्धार करे और पाप कर्म करके अपनी आत्मा को अधोगति में न डाले। यह जीवात्मा स्वयं ही अपना बन्धु है और स्वयं ही अपना शत्रु है।

बन्धुरात्माऽऽमत्नस्तस्य येनैवात्माऽऽत्मना जितः।
स एव नियतो बन्धुः स एव नियतो रिपुः॥

विदुर नीति, 2/65

जिसने स्वयं अपने को अर्थात् अपने मन तथा इन्द्रियों को जीत लिया है, वह निश्चित रूप से अपने आत्मा का बन्धु है और जिसने अपने आप को नहीं जीता है वह निश्चय ही अपने आत्मा का शत्रु है।

इन्द्रियों के वशीभूत होकर पाप करने वाले पुरुष को ही यजुर्वेद 40/3 में **'आत्महनो जनः'** कहा गया है। ऐसे लोग मृत्यु के उपरान्त घोर अन्धकार से आच्छादित असुर्य नामक लोकों को प्राप्त होते हैं। असुर्य नामक लोक पशु, पक्षी, कीट, पतंग आदि की वे योनियाँ हैं, जहाँ निकृष्ट कर्मों के फलों के भोग के लिए जीवात्मा को जन्म लेना होता है।

आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु।
बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च॥

कठोपनिषद्,1/3/3

जीवात्मा को रथ का स्वामी और शरीर को रथ समझो तथा बुद्धि को सारथि और मन को ही लगाम समझो जिससे इन्द्रिय रूपी अश्वों को नियन्त्रण में रखा जाता है।

यस्तु विज्ञानवान् भवति समनस्कः सदा शुचिः।
स तु तत्पदमाप्नोति यस्माद् भूयो न जायते॥

कठोपनिषद्. 1/3/8

जो विवेक सम्पन्न ज्ञानी अपने मन को वश में करने वाला तथा संयत चित्त एवं मन, वाणी तथा कर्मों की पवित्रता से सदा युक्त रहता है, वह उस पद को प्राप्त करता है, जिसकी प्राप्ति के पश्चात् पुनर्जन्म नहीं होता।

विज्ञानसारथिर्यस्तु मनः प्रग्रहवान् नरः।
सोऽध्वनः पारमाप्नोति तद्विष्णोः परमं पदम्॥

कठोपनिषद् 1/3/9

जो मनुष्य विवेक पूर्ण बुद्धि रूपी सारथि वाला और मन रूपी लगाम को अपने अधिकार में रखने वाला होता है, वह मार्ग के उस पार अर्थात् जीवन के अन्त में विष्णु के उस सर्वश्रेष्ठ, परम उत्कृष्ट पद को प्राप्त होता है।

आत्मा एवं परमात्मा

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया
समानं वृक्षं परि षस्वजाते।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्य-
नश्नन्नन्यो अभि चाकशीति ॥

अथर्व. 9.9.20, ऋग्. 1/164/20

एक साथ रहने वाले तथा उत्तम पंखो वाले दो मित्र पक्षी (आत्मा एवं परमात्मा) एक ही संसार रूपी वृक्ष पर रहते हैं। उन दोनों में से एक (जीवात्मा) वृक्ष के पके हुये फलों को स्वाद लेकर खाता है, संसार के ऐश्वर्य का उपभोग करता है तथा अपने कर्मों का फल भोगता है जबकि दूसरा (परमात्मा) न खाता हुआ उसको तथा समस्त संसार को भली प्रकार देखता है।

देवता

देवो दानाद्वा, दीपनाद्वा, द्योतनाद्वा, द्युस्थानो भवतीति वा।
यो देवः सा देवता ॥ निरुक्त. 7/4/15

दान, दीपन या द्योतन करने से अथवा द्युस्थानीय होने से देव कहा जाता है। दाता, प्रदीपक, द्योतक या द्युस्थानीय पदार्थ को देव कहा जाता है।

अनेक मूर्ख तैंतिस करोड़ देवताओं की बात करते हैं जब कि वेद के अनुसार केवल तैंतिस देवता होते हैं जिनका विवरण यजुर्वेद में निम्न प्रकार दिया गया है

अग्निर्देवता वातो देवता सूर्यो देवता चन्द्रमा देवता वसवो देवता रुद्रा देवता दित्या ऽऽदेवता मरुतो देवता विश्वे देवा देवता बृहस्पतिर्देवतेन्द्रो देवता वरुणो देवता ॥

यजु. 14.20

1. **अग्निः देवता 2. वायु देवता 3. सूर्य देवता 4. चन्द्रमा देवता 5. वसवो देवता(8) 6. रुद्रा देवता(11) आदित्य देवता (12) 7. मरुतो देवता 8. विश्वे देवा देवता 9. बृहस्पतिर्देवता 10. इन्द्रो देवता 11. वरुणो देवता**

वसु- जो हम को बसाते हैं अर्थात् जिनके आधार पर सब जीवित रहते हैं। ये हैं- अग्नि, प्रथिवी, वायु, अन्तरिक्ष, आदित्य, द्यौ, चन्द्रमा, तथा नक्षत्र।

द्वादश आदित्य-

त्वष्टा, सविता, भगः, सूर्यः पूषा, विष्णुः, विश्वानरः, वरुणः,केशी(केशिनः) वृषाकपि, यमः, अज एकपात् ।

निघण्टु 5/6

वर्ष के बारह मास ही बारह आदित्य कहलाते हैं।

एकादश रुद्र-

दश प्राण और जीवात्मा यह ग्यारह रुद्र कहलाते हैं क्योंकि जब ये शरीर से निकलते हैं तब सम्बन्धिं यों तथा मित्रों को रुलाते हैं।

दो- इन्द्र तथा प्रजापति

इस प्रकार कुल तेंतिस देवता हुये

इन्द्र भगवान् का नाम है और प्रजापति यज्ञ को कहा जाता है

प्रजापतिर्वै यज्ञो ऐतरेय ब्राह्मण,

इन्द्र और वरुण के लिये कहा गया है-

इन्द्रश्च सम्राड् वरुणश्च राजा..... यजु. 8.37

इन्द्र जगत् के सम्राट हैं और वरुण उनके अधीन कार्य करने वाले राजा हैं। वही मनुष्यों के कर्मों का निरीक्षण करते हैं। एक अन्य मन्त्र में कहा गया है कि वरुण के दूत पग पग पर खड़े रहते हैं और बिना पलक झपकाये हुये सभी के कर्मों को देखते रहते हैं।

वरुण को जल का देवता भी माना जाता है।

देवों के विषय में निम्नांकित वाक्य महत्व पूर्ण हैं-

1. **परोक्ष प्रिया इव हि देवाः प्रत्यक्ष द्विषः।**
   शतपथ. 14.1.1.33

देव परोक्ष प्रिय होते हैं, प्रत्यक्ष से उनको द्वेष होता है। इसका अर्थ है कि देवता सामने आकर किसी की सहायता नहीं करते हैं, परोक्ष से करते हैं।

एनेह ॐसर्वं कुर्वन्ति देवानां हृदयेस्य इत्यग्निर्वायुरादित्य।

अग्नि, वायु और आदित्य ये देवों के हृदय हैं। यही तो सब कुछ करते हैं।

इन्हीं को तीन जोतियाँ कहा जाता है।

न मृषः श्रान्तं पदवन्ति देवा। ऋग्. .1.79.3

जिसकी देवता रक्षा करतें हैं, उसका तप, उसका परिश्रम् व्यर्थ नहीं जाता।

श्रमेण ह स्म वै तद्देवा जयन्ति येदेषां जय्यमास ऋषयश्च।

शतपथ 1.6.2.3

श्रम से ही देवों ने जो कुछ जीतना चाहा जीता और ऋषियों ने भी। इससे स्पष्ट है कि जीवन में परिश्रम से ही सफलता प्राप्त होती है।

सत्यसंहिता वै देवाः।

देवता सत्य से युक्त होते हैं।

त्रिषत्या हि देवा। *ताण्ड्य ब्राह्मण 1.19*

वही देवत्व प्राप्त कर सकते हैं जिनके मन, वाणी तथा कर्म तीनों सत्य होते हैं।

न श्रान्तः सख्याय देवाः।

बिना परिश्रम किये हुये देवताओं की मित्रता प्राप्त नहीं होती है।

वेद मन्त्रों के सम्बन्ध में महत्व पूर्ण तथ्य

1. वेद मन्त्रों में जिसका प्रमुख रूप से उल्लेख होता है, उसे उस मन्त्र का देवता कहा जाता है जैसे यदि किसी मन्त्र में अग्नि का प्रमुख रूप से उल्लेख है तो उस मन्त्र का देवता अग्नि होगा।

2. मन्त्र में जिस ऋषि का उल्लेख होता है, वह मन्त्र का रचनाकार नहीं प्रत्युत उसका मन्त्र द्रष्टा कहा जाता है।
3. वेदों की रचना किसी पुरूष द्वारा नहीं की गयी है। वेद अपौरुषेय हैं। परमात्मा द्वारा ऋषियों के हृदय तथा बुद्धि में जो ज्ञान दिया गया है उसी को ऋषियों द्वारा प्रस्तुत् किया गया है।

4. वेद भगवान् की वाणी हैं, जैसा कि इस मन्त्र में कहा गया है -

यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः। ब्रह्मराजन्याभ्या२ꣳ शूद्राय चार्याय च स्वाय चारणाय च। प्रियो देवानां दक्षिणायै दातुरिह भूयासमयं मे कामः समृध्यतामुप मादो नमतु।

यजु. 26.2

इस मन्त्र में ईश्वर मनुष्यों को उपदेश दे रहा है कि (यथा इमां कल्याणीं वाचं) जिस प्रकार मै ने इस कल्याणी वणी का (ब्र ह्म राजन्याभ्याम् च शूद्राय च आर्याय) ब्राह्मण, क्षत्री, शूद्र तथा वैश्य एवं (स्वाय च अरणाय च जनेभ्यः) अपनों तथा परायों, सभी के लिये अर्थात् अपने प्रिय लोगों के लिये और जो प्रिय नहीं हैं उनके लिये भी, (आवदानि) उपदेश किया है, (उसी प्रकार तुम भी करो और यह प्रयास करो) कि मैं (इह) इस संसार में (देवानां दक्षिणायै दातुः प्रियः भूयासम्) देवताओं का, विद्वानों का तथा दक्षिणा अर्थात् सम्मान के साथ धन देने वालों का प्रिय बनूँ।

दक्षिणा अर्थात् सम्मान के साथ धन देने वालों का प्रिय बनूँ। (अयं मे कामः समृध्यताम्) मेरी ये कामना समृद्ध हो, पूर्ण हो (अदः मा उपनमतु) तथा यह कामना पूर्ण होने का सुख मुझे प्राप्त हो।

इस मन्त्र से स्पष्ट है कि न केवल वेद पढ़ने का अधिकार महिलाओं, पुरुषों, तथा संसार के सभी लोगों को है बल्कि हमारा यह कर्तव्य है कि हम सब को वेद की शिक्षा दें और देश विदेश में जाकर सब ओर वेद का प्रचार करें। यही हमारी मनो कामना होनी चाहिये और इसी से हमें धन, सम्मान और यश प्राप्त करके सुखी होना चाहिये।

(सरस्वत्त्यै यशो भगिन्न्यै स्वाहा – *यजु. 2.20*)

यश की बहिन सरस्वती के लिये स्वाहा अर्थात् श्रद्धा पूर्वक प्रणाम। (**यशो वै हिरण्यम्**) यश ही विद्वानों का धन है।

इससे स्पष्ट है कि वेद वांणी के ज्ञान से मनुष्य को यश प्राप्त होता है और वह यश ही विद्वान् के लिये स्वर्ण के समान होता है।

5. वेद में यह स्पष्ट रूप से कहा गया है कि केवल मन्त्र पढ़ना ही पर्याप्त नहीं है उनका अर्थ भी जानना आवश्यक है।

उत त्वः पश्यन् न ददर्श वाचमुत त्वः शृण्वन् न शृणोत्येनाम्। उतो त्वस्मै तन्वं १ वि सस्रे जायेव पत्य उशती सुवासाः ॥

ऋग्. 10.71.4

(उत त्वः वाचं पश्यन् न ददर्श) कोई तो वेदवाणी को देखता हुआ भी (अज्ञानता के कारण) नहीं देख पाता, (उत त्वः एनां शृण्वन् न शृणोति) दूसरा इस वाणी को सुनकर भी (मूर्खता के कारण) नहीं सुन पाता। (उतो त्वस्मै तन्वं वि सस्रे) वह वेद वाणी श्रद्धा से युक्त जानने वाले विद्वान् को अपने ज्ञान रूपी स्वरूप को इस प्रकार प्रकट कर देती है, (पत्ये सुवासाः उशति जाया इव) जैसे सुन्दर वस्त्र पहने हुये पत्नी पति के प्रेम की कामना करते हुये अपने शरीर को उसके समक्ष प्रकट कर देती है।

उत त्वं सख्ये स्थिरपीतमाहुर्नैनं हिन्वन्त्यपि वाजिनेषु। अधेन्वा चरति माययैष वाचं शुश्रुवाँ अफलामपुष्पाम् ॥

ऋग्. 10.71.5

(उत त्वं सख्ये स्थिरपीतं आहुः) किसी विद्वान् को विद्वानों के मध्य स्थिर बुद्धि वाला, वेदवाणी का अर्थ जानने वाला ज्ञानी कहते हैं। (वाजिनेषु अपि एनं न हिन्वन्ति) वाणी पर अधिकार रखने वाले शब्दों तथा वाक्यों का अर्थ जानने वाले, उनके रहस्य को समझने वाले ऐसे विद्वान् से श्रेष्ठ कोई नहीं होता किन्तु जो (वाचं अफलां अपुष्पां शुश्रुवान्) वाणी के फल और फूल को, उसके अर्थ तत्व और रहस्य को न समझकर केवल पढ़ता अथवा सुनता है, (एषः अधेन्वा मायया चरति) वह

संसार में अज्ञान फैलाते हुये बन्ध्या गौ के समान निरर्थक जीवन व्यतीत करता है।

6. वेद मन्त्रों के अर्थों के विषय में यह बताना आवश्यक है कि अनेक विद्वानों ने मन्त्रों के हास्यास्पद अर्थ कर दिये हैं। इनमें प्रमुख नाम श्री सायणाचार्य जी का है जो संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान् थे और जिन्हों ने अनेक वेदों के भाष्य लिखे हैं।

आकाश में सूर्य को चलता हुआ देख कर उन्होंने निम्नांकित् मन्त्र के अर्थ में लिखा है कि गमनशील सूर्य पृथिवी के चारों ओर घूमता है, जो सर्वथा असत्य है।

<u>सर्पराज्ञी ऋषिः।</u>

आयं गौः पृश्निरक्रमीदसदन्मातरं पुरः।
पितरं च प्रयन्त्स्वः॥

अथर्व.20.48.4 ऋग्. 10.189.1
साम. पूर्वा. 6.5.4 क्रं. नसं. 630, तथा 1376 यजु. 3.6

(आयं गौः मातरम्) यह पृथिवी माता (प्रश्निः अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष में (आक्रमीत् आक्रमणं कुर्वन् सन्) घूमती हुयी (पितरं स्वः) समस्त प्राणियों की पिता के समान रक्षा करने वाले प्रकाशमान सूर्य के (पुरः) सामने (असदत्) स्थित होकर (प्रयन्त्सन् परितो 1याति) उसके चारों ओर घूमती है। पृश्निः अन्तरिक्षम्। निरुक्त. 2.14

स्वः आदित्यो भवति । निरुक्त. 2.14

गौः पृथिवी नामसु पठितम् । निघण्टु. 1.1

मैक्समुलर आदि अनेक योरूपियन विद्वानों ने कठिन परिश्रम् करके वेदों का अध्ययन किया था और उनके अर्थ भी लिखे थे, किन्तु उनके द्वारा किये गये अर्थ सही नहीं है क्यों कि वे भारतीय संस्कृति से परिचित नहीं थे और उनमें श्रद्धा का अभाव था । उदाहरणार्थ निम्नांकित महत्व पूर्ण मन्त्र-

चत्वारि श्रृङ्गा त्रयो अस्य पादा द्वे शीर्षे सप्त हस्तासो अस्य । त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति महो देवो मर्त्याँ२ आ विवेश ॥

यजु. 17.91. ऋग्.4.583

गोपथ ब्राह्मण पूर्व 2.16 के अनुसार इस मन्त्र में यज्ञ पुरुष के भिन्न भिन्न अवयवों का वर्णन निम्न प्रकार किया गया है । चत्वारि अस्य श्रृंगा) चत्वारि श्रङ्गाः इति एते वै वेदाः उक्ताः । ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेद, ये उसके चार सींग अथवा शीर्षस्थ अवयव हैं । (त्रयः अस्य पादाः) त्रयः पादा इति सवनानि एव । तीन सवन, इसके तीन पाद अथवा चरण हैं, प्रातः सवन, माध्यान्दिन सवन तथा सायं सवन अर्थात् प्रातः काल में किया जाने वाला यज्ञ, मध्याह्न में किया जाने वाला यज्ञ तथा सायं सवन अर्थात् सायंकाल में किया जाने वाला यज्ञ, यही इसके तीन पाद अथवा

चरण हैं। (द्वे शीर्ष) द्वे शीर्ष इति ब्र ह्मौदन प्रवर्ग्यो एव। ब्रह्मौदन तथा प्रवर्ग्य, इसके दो शिर हैं। (सप्त हस्तासः अस्य) सप्त हस्तासः अस्य इति छन्दांसि एव। गायत्री, उष्णिक्, अनुष्टुप, बृहती, पड्क्ति, त्रिष्टुप् तथा जगती वेद के ये प्रमुख सात छन्द, इसके सात हाथ हैं क्योंकि इन्हीं से समस्त क्रियायें होती हैं।

(त्रिधा बद्धः) त्रिधा बद्ध इति मन्त्रः कल्पः ब्रा ह्मणम्। मन्त्र, कल्प तथा ब्राह्मण, इन तीन प्रकार से बंधा हुआ, (वृषभः रोरवीति) एषः वृषभः ह वै तत् रोरवीति। सुखों की वर्षा करने वाला यह श्रेष्ठ यज्ञ पुरुष प्रिय एवं कल्याणकारी शब्द करता है।

(यत् यज्ञेषु शस्त्राणि ऋग्भिः, यजुर्भिः सामभिः ब्र ह्मभिः शंसति इति) यज्ञों में स्तोत्र अर्थात् ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेद के मन्त्रों का जो पाठ किया जाता है, वही इस बलवान् यज्ञ पुरुष का शब्द है।

(महः देवः मर्त्यान् आविवेश) इत एषः ह वै महान् देवः यद् यज्ञः एष मर्त्यान् आविवेश। यह यज्ञ रूपी महान् पूजनीय देव सभी मरणधर्मा प्राणियों में सब ओर सो व्याप्त हैं अर्थात् यह महान् देव समस्त प्राणियों का कल्याण करने वाला है।

वृषभ शब्द 'वृषु सेचने ' धातु से बना है। अतः यहाँ इसका अर्थ है सुख की वर्षा करने वाला। इसके अतिरिक्त वृषभ का अर्थ श्रेष्ठ तथा बलवान भी होता है।

निरुक्त परिशिष्ट 13.7 में यास्का चार्य जी ने इस मन्त्र का अर्थ निम्न प्रकार किया है-

(चत्वारि श्रृंगेति वेदा वा एते उक्ताः) चार वेद ही इसके चार सींग हैं, (त्रयो अस्य पादाः इति सवनानि त्रीणि) यज्ञ के तीन सवन ही इसके तीन पाद हैं, (द्वे शीर्षे प्रायणीयोदयनीये) प्रायणीय अर्थात् यज्ञ के प्रारम्भिक कार्य तथा उदयनीय अर्थात् यज्ञ के अन्तिम कार्य इसके दो शिर हैं।

(सप्त हस्तासः सप्त छन्दांसि) गायत्री आदि सात छन्द इसके सात हाथ हैं

(त्रिधा बद्धः त्रेधा बद्धः मन्त्र ब्रा ह्मण कल्पैः) मन्त्र, ब्राह्मण तथा कल्प से तीन प्रकार से बंधा हुआ, (वृषभो रोरवीति) सुख की वर्षा करने वाला यह श्रेष्ठ देव शद्ध करता है, (रोरवणमस्य सवनक्रमेण ऋग्भिर्यजुर्भिः सामभिः) सवनों के क्रम से ऋग्. यजु तथा साम मन्त्रों का पाठ ही इसका शद्ध करना है। यज्ञ रूपी यह महान् देव मनुष्यों में प्रविष्ट होता है अर्थात् मनुष्यों द्वारा यज्ञ किया जाता है, यजन किया जाता है।

मपर्षि पतञ्जलि द्वारा महाभाष्य अध्याय 1 में इस मन्त्र का निम्नांकित प्रसिद्ध अर्थ किया गया है-

नाम, आख्यात, उपसर्ग एवं निपात रूपी चार सींगों वाला, भूत, भविष्यत्, वर्तमान रूपी तीन पादों वाला, नित्य अनित्य शद्ध रूपी दो शिरों वाला, क्रिया, विभक्तियों रूपी सात

हाथों वाला तथा हृदय, कण्ठ एवं मुख, इन तीन स्थानों पर तीन प्रकार से बंधा हुआ, सब पर सुखों की वर्षा करने वाला शब्द रूपी यज्ञ पुरूष मधुर कल्याणकारी ध्वनि करता है तथा समस्त प्राणियों में व्याप्त रहता है।

श्रेष्ठ, सदाचारी, मन्त्रद्रष्टा महर्षियों द्वारा किये गये मन्त्रों के अर्थ कितने सुन्दर, कितने चमत्कारिक तथा श्रेष्ठ हो सकते हैं, ये अर्थ इसके महत्व पूर्ण उदाहरण हैं। इस के विपरीत मूर्खों द्वारा किये गये अर्थ कितने हास्यास्पद हो सकते हैं, इसका उदाहरण है, कुछ विदेशियों द्वारा किया गया इस मन्त्र का निम्नांकित अर्थ-

दो शिरों, चार सींगों, तीन पैरों तथा सात हाथों वाला, तीन ओर से बंधा हुआ महान् बेल सब प्रणियों पर गर्जन करता है।

बौद्ध तथा इस्लाम आदि धर्मों को मानने वाले कुछ निकृष्ट लोग अपने द्वारा किये गये मनमाने अर्थ तथा अन्य मूर्खों द्वारा किये गये गलत अर्थों के आधार पर यह दिखाने का प्रयास करते हैं, कि वेदों में हिंसा करना, दूसरों की सम्पत्ति छीन लेना, निर्बलों को प्रताणित करना, आदि बातें कही गयी हैं। ऐसे द्वेष पूर्ण तथा निराधार एवं निन्दनीय आरोपों का पूरी शक्ति से खण्डन किया जाना चाहिये।

वेदों का अपमान करने वाले वाममार्गी लोगों ने तो नीचता की सीमा को भी पार करते हुये लिखा कि-

त्रयो वेदस्य कर्तारा:भांड,धूर्त, निशाचरः।

तीनों वेदों के लिखने वाले भांड, धूर्त तथा निशाचर, हैं

मनुस्मृति में कहा है **'नास्तिको वेद निन्दक:'।**

वेदों की निन्दा करने वाले नास्तिक होते हैं।

हमें ऐसे दुष्ट लोगों से सावधान रहना चाहिये।

तर्क ऋषिः

निरुक्त में कहा गया है कि पूर्व काल में ऋषियों के न रहने के कारण मनुष्यों ने देवों से कहा कि अब हमें वेदार्थ का दर्शन कौन करा पायेगा। तब देवों ने मनुष्यों को तर्क ऋषि प्रदान किया। मन्त्रार्थ चिन्तन के विषय में जो उहा पोह (अर्थात् यह अर्थ ठीक है कि नहीं, यह वेद तथा शास्त्र विरुद्ध तो नहीं है) जिसे पूर्व के ऋषियों ने प्राप्त किया था, उस प्रकार के तर्क की सहायता से जो मनुष्य अनेक विद्याओं मे प्रवीण हो, बहुश्रुत हो, तपस्वी हो तथा श्रद्धा पूर्वक प्रकरण के अनुसार चिन्तन करने वाला हो, वह तर्क के आधार पर निश्चय करे कि कौनसा अर्थ सही है।

ऐसे तर्क की सहायता से जो कोई भी वेदपाठी तत्व-ज्ञान को मंत्रों में खोजता है, वह मन्त्र द्दष्टाऋषि होता है।

प्रत्यक्षं चानुमानं च शास्त्रं च विविधागमम्।

त्रयं सुविदितं कार्यं धर्मशुद्धिमभीप्सता ॥
आर्षं धर्मोपदेशं च वेदशास्त्राविरोधिना ।
यस्तर्केणानुसंधत्ते स धर्मं वेद नेतरः ॥

मनुस्मृति 12.105, 106

धर्म-तत्व के जिज्ञासु को प्रत्यक्ष, अनुमान और विविध शास्त्र इन तीनों को भली प्रकार जानना चाहिये। इस प्रकार का जो विद्वान् वेदशास्त्र- अविरोधी तर्क के द्वारा वेदोंक्त धर्मोपदेश का अनुसंधान करता है, वही धर्म को जानता है, अन्य नहीं ॥

धर्म

ऋषियों ने धर्म की व्याख्या निम्न प्रकार की है।

यतोऽभ्युदय निःश्रेयससिद्धिः स धर्मः ॥

वैशेषिक दर्शन.1.2

जिससे सब प्रकार का अभ्युदय तथा परम कल्याण हो, वही धर्म है। हमारे आदि पुरुष भगवान् मनु द्वारा धर्म के लक्षण निम्न प्रकार बताये गये हैं-

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणं ॥

मनुस्मृति 6.92

धैर्य, दृढ़ता, क्षमा, बुरे विचारों का दमन, चोरी न करना, शरीर मन एवं बुद्धि की पवित्रता, इन्द्रियों का निग्रह, सद्बुद्धि, विद्या, सत्य तथा अकारण क्रोध न करना ये धर्म के दश लक्षण हैं।

इन लक्षणों के अनुरूप आचरण करना धर्म है, किसी प्रकार का दिखावा अथवा ढोंग धर्म नहीं होता।

वेदः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः।
एतच्चतुर्विधं प्राहुः साक्षाद्धर्मस्य लक्षणम्॥

मनु. 2.12

वेद, स्मृति, सदाचार, सत्पुरुषों का आचरण और अपने आत्मा को प्रसन्न तथा सन्तुष्ट करने वाला, अन्तरात्मा के अनुसार किया गया श्रेष्ठ आचरण, ये चार धर्म के साक्षात् लक्षण कहे जाते हैं।

समः सर्वेषु भूतेषु न लिङ्गंधर्मकारणम्॥

मनु. 6.66

समस्त प्राणियों में समत्व का भाव रखना, सबसे समता का व्यवहार करना धर्म है। माला, तिलक आदि दिखावटी चिह्न धर्म का कारण नहीं हैं।

धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः।
तस्माद्धर्मो न हन्तव्यो मा नो धर्मो हतो वधीत्॥

मनु.8.15

नष्ट हुआ धर्म ही मारता है अर्थात् धर्म का पालन न करने से मनुष्य पतन की ओर चला जाता है, दुःख एवं कष्टों को प्राप्त करता है जब कि रक्षा किया हुआ धर्म उन्नति की ओर ले जाता

है। अतः धर्म कहीं हमें नष्ट न करदे यह विचार करके धर्म की रक्षा करना चाहिये, धर्म का पालन करना चाहिये।

यशः सत्यं दमः शौचमार्जवं ह्रीचापलम्।
दानं तपो ब्रह्मचर्यमित्येतास्तनवो मम॥

महाभारत, आरण्यकपर्व, अध्याय. 298.7

धर्म ने महाराज युधिष्ठिर से कहा कि यश, सत्य, इन्द्रिय संयम, पवित्रता, सरलता, लज्जा, धैर्य, दान, तप और ब्र ह्मचर्य यह सब मेरे शरीर के अंग हैं।

गायत्री उपासना

गायत्री मन्त्र संसार का सर्वश्रेष्ठ प्रार्थना मन्त्र है। इसकी प्रशंसा में सैकड़ों श्लोक लिखे गये हैं। मेरी **'पुस्तक सावित्री अथवा गायत्री महामन्त्र'** में गायत्री उपासना का विस्तृत विवरण दिया गया है। कृपया उसे अवश्य पढ़ने का कष्ट करें

ओङ्कारपूर्विकास्ति स्रोमहाव्याहृतयोऽव्ययाः।
त्रिपदा चैव सावित्री विज्ञेयं ब्रह्मणो मुखम्॥

मनु.2.81

ओ३म् तथा भूः भुवः स्वः इन तीन अव्यय महाव्याहृतियों के साथ तीन पद वाली सावित्री अथवा गायत्री को वेद का मुख समझना चाहिये।

एकाक्षरं परं ब्रह्म प्राणायामः परं तपः ।
सावित्र्यास्तु परं नास्ति मौनात्सत्यं विशिष्यते ॥

मनु. 2.83

एकाक्षर ओ३म् परब्रह्म है, प्राणायाम परम तप है, सावित्री से श्रेष्ठ कुछ नहीं है तथा मौन रहने से सत्य भाषण श्रेष्ठ है।

हस्तत्राणप्रदा देवी पततां नरकार्णवे।
तस्मात्तामभ्यसेन्नित्यं ब्राह्मणो हृदये शुचिः ॥

शंख स्मृति, 12.12

(नरकार्णवे पततां हस्तत्राण प्रदा देवी) यह दिव्य गायत्री, नरक रूपी समुद्र में गिरने वालों को हाथ पकड़कर बचाने वाली है। (तस्मात् हृदये शुचिः ब्राह्मणः तां नित्यं अभ्यसेत् -) अतः ब्राह्मण को शुद्ध हृदय से उस गायत्री का नित्य अभ्यास करना चाहिये, उसकी उपासना करनी चाहिये

वैदिक जीवन

सुखी एवं सफल जीवन के लिये हमें निम्नांकित वेद मन्त्रों के अनुसार कार्य करना चाहिये।

ईशावास्यमिद ँ् सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यास्विद्धनम्॥

यजु. 40.1

(जगत्यां जगत्) जगती में, सम्पूर्ण सृष्टि में (यत्किंच) जो कुछ भी है, (इदं सर्वम्) यह सब (ईशावास्यम्) ईश्वर से आच्छादित एवं व्याप्त है अर्थात् ईश्वर का है। (तेन त्यक्तेन) (उसका त्याग भाव से, समर्पित भाव से, अनासक्ति भाव से (भुञ्जीथाः) उप भोग करो, (कस्य स्विद् धनम्) किसी के धन को, स्वत्व को अथवा वस्तु को (मा गृधः) मत छीनो, उसकी अभिलाषा, आकांक्षा अथवा लिप्सा मत करो।

अथवा, (मा गृधः) लालच मत करो, (धनं कस्य स्वित्) धन किसका है ? अर्थात् किसी का नहीं।

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतग्ंसमाः।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽ स्ति न कर्म लिप्यते नरे॥

यजु. 40.2

(इह कर्माणि कुर्वन् एव) इस लोक में (वेदोक्त प्रशस्त) कर्मों को करता हुआ ही (शतम् समाः जिजीविषेत्) सौ वर्षों तक जीने की इच्छा करे। (एवं त्वयि नरे कर्म न लिप्यते) इस प्रकार तुझ पुरुष में कर्म लिप्त नहीं होते। (इतः अन्यथा न

अस्ति) इससे भिन्न, अथवा इसके अतिरिक्त जीवन का अन्य कोई मार्ग नहीं है।

प्रथम मन्त्र में उल्लिखित अनासक्ति भाव से उपभोग करना तथा जिजीविषा, जीवित रहने की इच्छा करना अत्यन्त महत्वपूर्ण है।किसी भी दशा में निराश होकर जीवित रहने की इच्छा नहीं छोड़नी चाहिये।

इस मन्त्र में उल्लिखित कर्म करने के विज्ञान के विषय में गीता के निम्नांकित श्लोक अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं –

तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म समाचर।
असक्तो ह्याचरन्कर्म परमाप्नोति पूरुषः ॥

गीता. 3.19

इसलिये तुम आसक्ति से रहित होकर कर्तव्य भावना से कर्म करो। आसक्ति से रहित होकर कर्म करता हुआ पुरुष परमात्मा को प्राप्त कर लेता है।

सक्ताः कर्मण्यविद्वांसो यथा कुर्वन्ति भारत।
कुर्याद्विद्वांस्तथासक्तश्चिकीर्षुर्लोकसंग्रहम् ॥

गीता 3.25

हे भारत! कर्म में आसक्त हुये अज्ञानी जन जिस प्रकार अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिये निरन्तर कर्म करते हैं, उसी प्रकार

विद्वानों को आसक्ति रहित होकर लोक संग्रह के लिये, लोक कल्याण के लिये निस्वार्थ भाव से सतत् कर्म करना चाहिये।

यथा यथा हि पुरुषः कल्याणे कुरुते मनः।
तथा तथाऽस्य सर्वार्थाः सिद्ध्यन्ते नात्र संशयः॥

विदुरनीति. 3.42

जैसे जैसे पुरुष शुभकर्मों में अपने मन को लगाता है, वैसे वैसे उसके सभी अर्थ अर्थात् प्रयोजन एवं इछायें पूर्ण होती हैं, इसमें कोई संदेह नहीं है।

यस्तुसर्वाणिभूतान्यात्मन्नेवानुपश्यति।
सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न वि जुगुप्सते॥

यजु.40.6काण्व संहिता

माध्यन्दिन संहिता में **'विचिकित्सति'** शद्ब आया है। (यःसर्वाणि भूतानि) जो समस्त प्राणियों अर्थात् सम्पूर्ण चराचर जगत् को (आत्मनि एव अनुपश्यति) परमात्मा में ही स्थित देखता है तथा (सर्व भूतेषु आत्मानम्) समस्त भूतों में, समस्त प्राणियों एवं पदार्थों में परमात्मा को देखता है, (ततः न विजुगुप्सते वह किसी से घृणा नहीं करता, किसी का तिरस्कार

नहीं करता। उसकी सर्वत्र समदृष्टि होती है, उसमें सबके प्रति समानता का भाव होता है।

विद्यां चाविद्यां च यस्तद्वेदोभय ँ सह।
अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययाऽ मृतमश्नुते॥

यजु. काण्व. सं. 40.11

(यः विद्यां च अविद्यां च तत् उभयं सह वेद) जो विद्या तथा अविद्या इन दोनों को साथ साथ जानता है अर्थात् दोनों का साथ साथ ज्ञान रखता है, वह (अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा) अविद्या से अर्थात् सांसारिक विषयों जैसे साहित्य, इतिहास, गणित, भूगोल, भौतिक शास्त्र, रसायन शास्त्र, इलेक्ट्रानिक्स आदि के ज्ञान से मृत्यु लोक को पारकर अर्थात् इस संसार में सुख पूर्वक जीवन बिता कर (विद्यया अमृतं अश्नुते) विद्या से, ब्र ह्मज्ञान से, आत्मज्ञान से अमृतत्व को, मोक्ष को प्राप्त करता है।

यहाँ पर अविद्या का अर्थ कर्म अथवा उल्टी या गलत विद्या नहीं है, जैसे कि अनेक भाष्यकारों ने लिखा है।

संसार में आर्थिक उन्नति के लिये उन विषयों का ज्ञान आवश्यक है जिनसे धन, शक्ति, ऐश्वर्य तथा सुख प्राप्त किया जा सकता है।

सांसारिक सुख के विषय में यह एक सुन्दर श्लोक है –

अर्थागमो नित्यमरोगिता च,
प्रिया च भार्या प्रियवादिनी च।
वश्यश्च पुत्रोऽर्थकरी च विद्या,
षड् जीवलोकस्य सुखानि राजन्॥

विदुर्नीति.1.87

हे राजन्! अर्थ अर्थात् धन की नियमित रूप से प्राप्ति होना, सदा स्वस्थ रहना, सुन्दर प्रिय लगने वाली तथा मधुर बोलने वाली पत्नी होना, आज्ञाकारी पुत्र तथा धन प्राप्त कराने वाली विद्या होना, ये छः इस संसार के सुख हैं।

जीवन को नष्ट करने वाले दुर्गुण

16 **त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः।**
कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत्॥

गीता. 16.21

आत्मा का नाश करने वाले अर्थात् उसे अधोगति में लेजाने वाले काम, क्रोध तथा लोभ रूपी नरक के तीन द्वार हैं। अतएव इन तीनों को त्याग देना चाहिये।

काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः।
महाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम्॥

गीता. 3.37

रजोगुण से उत्पन्न होने वाले ये काम और क्रोध हैं, जो मनुष्य को पाप में प्रवृत्त करते हैं। ये बहुत खाने वाले अर्थात् भोगों से कभी तृप्त न होने वाले महा पापी हैं। इन को मनुष्य का शत्रु समझो।

आवृतं ज्ञानमेतेन ज्ञानिनो नित्यवैरिणा।
कामरुपेण कौन्तेय दुष्पूरेणानलेन च॥

गीता .3.39

हे अर्जुन! कभी सन्तुष्ट न होने वाले नित्य वैरी इस काम रूपी अग्नि से ज्ञानियों का ज्ञान आवृत्त हो जाता है, नष्ट हो जाता है।

एवं बुद्धेः परं बुद्ध्वा संस्तभ्यात्मानमात्मना।
जहि शत्रुं महाबाहो कामरूपं दुरासदम्॥

गीता. 3.43

हे महाबाहो ! इस प्रकार बुद्धि से पर अर्थात् श्रेष्ठ, सूक्ष्म एवं बलवान आत्मा को जानकर और बुद्धि के द्वारा मन को वश में करके, तुम अत्यन्त कठिनायी से जीते जाने वाले इस काम रूपी शत्रु को मारो।

क्रोधाद्भवति संमोहः संमोहात्स्मृतिविभ्रमः।
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति॥

गीता.2.62

क्रोध से संमोह अर्थात् अत्यन्त अविवेक उत्पन्न होता है, संमोह से स्मृति का, विवेक का नाश होता है। स्मृति के भ्रमित हो जाने से बुद्धि का नाश होता है और बुद्धि का नाश होजाने से मनुष्य का पतन हो जाता है, नाश हो जाता है।

चाणक्य नीति 8.14 में कहा है कि क्रोध यमराज के समान है।

तपते यतते चैव यच्च दानं प्रयच्छति ।
क्रोधेन सर्वं हरति तस्मात् क्रोधं विवर्जयेत् ॥

वामनपुराण

मनुष्य जो तप,संयम तथा दान आदि करता है, उस सब को क्रोध हर लेता है, नष्ट कर देता है अतएव क्रोध को त्याग देना चाहिये।

लोभ के लिये कहा गया है कि लोभ पाप का मूल है। भर्तृहरि नीतिशतक 44 में कहा गया है-
लोभश्चेदगुणेन किं पिशुनता यद्यस्ति किं पातकैः,
यदि लोभ है तो अन्य अवगुणों कि क्या अवश्यकता ?

सत्य

वैदिक धर्म का सबसे बड़ा व्रत सत्य का व्रत है।
यजुर्वेद के प्रारम्भ में ही कहा गया है-

अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तच्छकेयं तन्मे राध्यताम्। इदमहमनृतात्सत्यमुपैमि॥

यजु. 1.5

(अग्ने) हे प्रकाश स्वरूप परब्रह्म ! (व्रतपते) आप हमारे व्रत की रक्षा करने वाले हैं,(व्रतं चरिष्यामि)मैं व्रत का आचरण करूँगा। (तत् शकेयम्) मुझे उसके लिये शक्ति दीजिये ताकि मैं व्रत पर आचरण कर सकूँ। (तत् मे राध्यताम्) मेरा वह व्रत आप पूर्ण कराइये। (इदं अहम् अनृतात् सत्यं उपैमि)व्रत यह है कि मैं असत्य से सत्य को प्राप्त होता हूँ।

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्। तत्वं पूषन्नपावृणु सत्यधर्माय दृष्टये॥

यजु. काण्व संहिता 40.15

सोने के पात्र से सत्य का मुख ढँका हुआ है। हे पालन पोषण करने वाले प्रभो ! मेरे द्वारा सत्य धर्म का दर्शन किये जाने के लिये आप उस आवरण को हटा दीजिये।

स्पष्ट है कि सत्य को जानने के लिये हमें स्वर्ण तथा धनसम्पत्ति आदि सभी प्रकार के प्रलोभनों को छोड़ना आवश्यक है। मन्त्र में सत्य धर्म शब्द का प्रयोग होने से यह भी स्पष्ट है कि जो सत्य है वही धर्म है, असत्य कभी धर्म नहीं हो सकता।

सत्येनोत्तभिता भूमिः सूर्येणोत्तभिता द्यौः।
ऋतेनादित्यास्तिष्ठन्ति दिवि सोमो अधि श्रितः॥

अथर्व.14.1.1 ऋग्. 10.85.1

(सत्येन भूमिः उत्तभिता) सत्य स्वरूप परब्रह्म ने अथवा भगवान् के सत्य नियमों ने पृथिवी को आकाश में ऊपर धारण किया है, (सूर्येण द्यौः उत्तभिता) सूर्य ने द्युलोक को धारण किया हुआ है अर्थात् अपनी आकर्षण शक्ति से गृहों तथा नक्षत्रों आदि की क्रियाओं को नियन्त्रित करता है। (ऋतेन आदित्याःतिष्ठन्ति) भगवान् के सत्य नियमों से आदित्य अर्थात् वर्ष के बारह महीने और संवत्सर आदि सभी अपना अपना निर्धारित कार्य करते हैं। (दिवि सोमः अधि श्रितः) द्युलोक में सोम अर्थात् परमात्मा ऊपर परम व्योम में स्थित हैं।

तात्पर्य यह है कि सारा ब्रह्माण्ड सत्य तथा ऋत अर्थात् भगवान् के सत्य नियमों पर आधारित है।

'सत्यस्य नावः सुकृतमपीपरन्'- ऋग् 9.73.1

सत्य की नाव पर बैठ कर श्रेष्ठ कर्म करने वाले पुरुष ऐश्वर्य प्राप्त करते हैं, सफलता प्राप्त करते हैं।

सत्यमेव जयते नानृतं,
सत्येन पन्था विततो देवयानः।
येनाक्रमन्त्यृषयो ह्याप्तकामा,
यत्र तत् सत्यस्य परमं निधानम्॥

मुण्डकोपनिषद् 3.1.6

सत्य की ही जय होती है, असत्य की नहीं। सत्य से ही वह देवयान मार्ग बना हुआ है जिस पर चलकर आप्तकाम ऋषि वहाँ पहुँचते हैं जहाँ सत्यस्वरूप परमात्मा का परम धाम है।

सत्येन वायुरावति, सत्येना ऽऽदित्यो रोचते दिवि, सत्यं वाचः प्रतिष्ठा, सत्ये सर्वं प्रतिष्ठितं, तस्मात् सत्यं परमं वदन्ति। तैत्तिरीय आरण्यक, प्रपा. 10 अनु. 63

सत्य से अथवा सत्य रूपी ब्रह्मसे अथवा ब्रह्म के सत्य नियमों से ही वायु रक्षा करती है, सत्य से आदित्य द्युलोक में प्रकाशित होता है, सत्य ही वाणी की प्रतिष्ठा है, सत्य में ही सब कुछ प्रतिष्ठित है, अतएव सत्य को परम अर्थात् सर्वश्रेष्ठ कहते हैं।

तेषामेवैष ब्रह्मलोको येषां तपो ब्रह्मचर्यं येषु सत्यम् प्रतिष्ठितम्। प्रश्नोपनिषद्, 1.15

यह ब्रह्मलोक उन्हीं का है जिनमें तप, ब्रह्मचर्य तथा सत्य प्रतिष्ठित है।

वैदिक धर्म सत्य पर ही आधारित है। सत्य का इतना सम्मान है कि वैदिक वाङ्मय में कहीं 'असत्य' शब्द का प्रयोग ही नहीं हुआ है। असत्य के स्थान पर अनृत शब्द का प्रयोग हुआ है किन्तु दुर्भाग्य है कि आज हमारा समाज असत्य में आकंठ डूबा हुआ है और आस्था एवं श्रद्धा के बहाने केवल असत्य बातों पर ही आचरण किया जा रहा है जबकि वेद में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि केवल सत्य पर ही श्रद्धा करनी चाहिये, असत्य पर नहीं।

दृष्ट्वा रूपे व्याकरोत् सत्यानृते प्रजापतिः ।
अश्रद्धामनृतेऽदधाच्छ्रद्धा२ँ सत्ये प्रजापतिः ।

यजु. 19.77

(प्रजापतिः ऋतेन सत्यानृते दृष्ट्वा वि आ करोत्) प्रजापति ने अपने सत्य ज्ञान से सत्य और असत्य के वास्तविक स्वरूप को देख कर उनको अलग अलग किया और (अनृते अश्रद्धां अदधात्) असत्य में अश्रद्धा तथा (सत्ये श्रद्धाम्) सत्य में श्रद्धा को स्थापित किया ।

अतः हमें वेद के आदेशानुसार केवल सत्य में श्रद्धा रखनी चाहिये और असत्य में अश्रद्धा रखनी चाहिये ।

श्रद्धा

श्रद्धयाग्निः समिध्यते श्रद्धया हूयते हविः ।
श्रद्धां भगस्य मूर्धनि वचसा वेदयामसि ॥

ऋग्. 10.151.1

श्रद्धा पूर्वक यज्ञ की अग्नि प्रदीप्त की जाती है, श्रद्धापूर्वक ही उसमें हवि की आहुति दी जाती है । श्रद्धा को विभिन्न प्रकार के (भगस्य मूर्धनि) में धनों में सर्व श्रेष्ठ कहा जाता है ।

भग ऐश्वर्यादिषट्कम् ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसः श्रियः । ज्ञानवैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीङ्गना ।
समग्र ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री, ज्ञान तथा वैराग्य यह भग के छः अङ्ग श्रद्धा सत्यनाम । निघण्टु. 3.7

श्रद्धा एवं सत्य पर्याय वाची शद्ध हैं।

शतपथ ब्राह्मण 11.3.1 में कहा गया है कि जब महाराज जनक ने महर्षि याज्ञवल्क्य से पूछा कि यदि अग्निहोत्र के लिये कोई सामग्री उपलब्ध न हो तब अग्निहोत्र कैसे किया जाय। तब महर्षि याज्ञवल्क्य ने कहा कि सत्य का श्रद्धा में होम करे।

(तेज एव श्रद्धा सत्य आज्यम्) श्रद्धा तेज अथवा अग्नि है, सत्य घृत है।

सच्ची श्रद्धा वही है जिसमें सत्य का समावेश हो।

सत्य से विहीन श्रद्धा न केवल मूर्खता है प्रत्युत मनुष्य के पतन का कारण भी होती है।

श्रद्धां प्रातर्हवामहे श्रद्धां मध्यंदिनं परि।
श्रद्धां सूर्यस्य निम्रुचि श्रद्धे श्रद्धापयेह नः ॥

ऋग् 10.151.5

(श्रद्धां प्रातः हवामहे) हम प्रातःकाल श्रद्धा का आवाहन करते हैं, श्रद्धा पूर्वक कार्य करते हैं, (मध्यन्दिनं परि श्रद्धाम्) मध्याह्न में श्रद्धा का आवाहन करते हैं, (सूर्यस्य निम्रुचि श्रद्धाम्) सूर्यास्त के समय श्रद्धा का आवाहन करते हैं। (श्रद्धे) हे श्रद्धे ! (नः इह श्रद्धापय) इस संसार में हमें श्रद्धावान् बनाओ।

गायत्री उपासना से ब्रह्मप्राप्ति

स्तुता मया वरदा वेद माता प्र चोदयन्तां पावमानी द्विजानाम् । आयुः प्राणं पशुं कीर्तिं द्रविणं ब्रह्मवर्चसम् । मह्यं दत्वा व्रजत ब्रह्मलोकम् ॥

अथर्व.19.71.1

(मया वरदा प्रचोदयन्तां द्विजानां पावमानी वेदमाता स्तुता) मेरे द्वारा वर देने वाली, श्रेष्ठ प्रेरणा देने वाली तथा द्विजों को पवित्र करने वाली वेदमाता अर्थात् ज्ञान की माँ गायत्री की स्तुति की गयी। यह माँ (मह्यं आयुः, प्राणं, प्रजां, पशुं, कीर्तिं, द्रविणं, ब्रह्मवर्चसं,दत्वा ब्रह्मलोकं व्रजत) मुझे पूर्ण आयु, स्वस्थ एवं शक्तिशाली प्राण तथा इन्द्रियाँ, उत्तम सन्तान, पशु, कीर्ति, धन एवं ब्रह्मतेज देकर अन्त में ब्रह्मलोक को ले जाती है।

यहाँ वेदमाता का अर्थ वेदों की माँ नहीं, प्रत्युत ज्ञान की माँ हैं।

यह है गायत्री मन्त्र की महिमा तथा उसकी उपासना का फल। यह वेद वाक्य है, स्वयं परब्रह्म की कल्याणमयी वाणी है, अतः इसमें संशय का कोई स्थान नहीं है।

इस प्रकार स्वयं वेद में ही यह स्पष्ट कर दिया गया है कि प्रणव तथा गायत्री के जप से न केवल आध्यात्मिक उन्नति

होती है, न केवन स्वर्ग तथा मोक्ष की प्राप्ति होती है, प्रत्युत इससे समस्त श्रेष्ठ सांसारिक कामनाओं की पूर्ति के साथ साथ ज्ञान, लौकिक ऐश्वर्य, कीर्ति, धन, उत्तम सन्तान, स्वस्थ प्राण दीर्घ आयु, गौ आदि पशु तथा ब्रह्मतेज की भी प्राप्ति होती है और अन्त में यह दिव्य ज्ञानस्वरूपा माँ अपने उपासक को ब्रह्मलोक की प्राप्ति कराती है।

योग

वैदिक जीवन में योग का अत्यन्त महत्व है अष्टाङ्ग योग के निम्नांकित अंग हैं –

यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि।

'अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः'योगदर्शन. 2.30

(अहिंसा) समस्त प्राणियों के विरुद्ध हिंसा का त्याग, सत्य को ही स्वीकार करना, सत्य ही बोलना तथा सत्य पर ही आचरण करना, (अस्तेय) मन, वचन तथा कर्म से चोरी का त्याग, (ब्रह्मचर्य) उपस्थेन्द्रिय का संयम, (अपरिग्रह) धन सम्पत्ति का अनावश्यक संग्रह न करना, ये पाँच यम है। इन पाँन यमों का निरन्तर नित्य पालन करना चाहिये।

अहिंसा

अहिंसयैव भूतानां कार्यं श्रेयोऽनुशासनम् ।
वाक्चैव मधुरा श्लक्ष्णा प्रयोज्या धर्ममिच्छता ॥

मनु.2/159

अहिंसा के साथ ही अर्थात् बिना किसी को दुःख दिये हुये ही सभी को कार्य करना चाहिये, यही कल्याण कारी अनुशासन है। धर्म की इच्छा करने वाले को सदा मधुर तथा सुलक्षणों से युक्त वाणी बोलना चाहिये।

इन्द्रियाणां निरोधेन रागद्वेषक्षयेणच ।
अहिंसया च भूतानाममृतत्वाय कल्पते ॥

मनु. 6.60

इन्द्रियों के निग्रह, रागद्वेष के क्षय तथा अहिंसा से पुरुष मोक्ष प्राप्त करने के योग्य हो जाता है।

न हिंसयति यः प्राणान्मनो वाक्कायहेतुभिः ।
जीवितार्थापनयनैः कर्मभिर्नसबध्यते ॥

महाभारत शान्ति पर्व.169/25

जो मन, वचन और शरीर से कभी प्राणियों की हिंसा नहीं करता, वह जीवित रहने में तथा अर्थोपार्जन में बाधा उत्पन्न करने वाले कर्मों से बाधित नहीं होता, अर्थात् उसका जीवन

शान्तिपूर्वक व्यतीत होता है तथा उसके धनोपार्जन में बाधा उत्पन्न नहीं होती।

अपरिग्रह

ब्रह्मचारी तथा सन्यासी के लिये धन अथवा अन्य पदार्थों का संग्रह पूर्ण रूप से वर्जित है, जबकि गृहस्थ के लिये आवश्यकता से अधिक संग्रह करना निषिद्ध है।

मनुस्मृति में तो सम्मान से प्राप्त होने वाले लाभ के प्रति भी अनिच्छा रखने का निर्देश दिया गया है।

अभिपूजितलाभंस्तु जुगुप्सेतैव सर्वशः।
अभिपूजितलाभैश्च यतिर्मुक्तोऽपि बद्धयते॥

मनु.6/58

पूजन अर्थात् सम्मान से प्राप्त होने वाले लाभ के प्रति भी जुगुप्सा अर्थात् अनिच्छा होनी चाहिये, लिप्सा अर्थात् प्राप्त करने की इच्छा नहीं। पूजा से प्राप्त होने वाले लाभों को प्राप्त करने की इच्छा करने वाला सन्यासी भी बन्धन में पड़ जाता है।

अपरिग्रह का फल

अपरिग्रहस्थैर्ये जन्मकथन्तासंबोधः। योग. साधनपादः, 39

अपरिग्रह के स्थिर हो जाने पर पूर्व जन्म तथा भावी जन्म आदि का बोध हो जाता है।

ब्रह्मचर्य

ब्रह्मचर्य का सामान्य अर्थ है वीर्य की रक्षा करना। पुरुष के जीवन में इसका अत्यन्त महत्व होता है।

ब्रह्मचर्यप्रतिष्ठायां वीर्यलाभः। योग साधनपादः, 38

ब्रह्मचर्य के पालन से वीर्य लाभ होता है, जिससे बल तेज तथा ओज प्राप्त होता है।

ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत।

इन्द्रो ह ब्रह्मचर्येण देवेभ्यः स्व१राभरत॥

अथर्व. 11.5.19

ब्रह्मचर्य तथा तप से देवों ने मृत्यु पर विजय प्राप्त की है। इन्द्र ने ब्रह्मचर्य के द्वारा ही देवों के लिये स्वर्ग, सुख तथा तेज उपलब्ध कराया है।

इन्द्र को भोग विलासी के रूप में चित्रित करने वाले मूर्ख लोगों को यह मन्त्र ध्यान से पढ़ना चाहिये।

ब्रह्मचर्यं परं शौचं ब्रह्मचर्यं परं तपः।

केवलं ब्रह्मचर्येण प्राप्यते परमं पदम्॥

महाभारत, अध्याय, 145

ब्रह्मचर्य सर्वोत्तम पवित्रता है,ब्रह्मचर्य सर्वोत्तम तप है। केवल ब्रह्मचर्य से ही परम पद की प्राप्ति हो सकती है।

संकल्पाद् दर्शनाच्चैव तद्युक्तवचनादपि।

संस्पर्शादथ संयोगात् पंचधा रक्षितं व्रतम्।

महाभारत अध्याय, 145

काम विषयक संकल्प तथा विचार से, स्त्रियों के दर्शन से, कामोत्तेजक वाणी से, स्पर्श से तथा सम्भोग से, इन पाँच प्रकार के कार्यों से दूर रहकर ब्रह्मचर्य व्रत की रक्षा की जाती है।

ब्रह्मचर्यव्रतफलं लभेद् दारव्रती सदा।
शौचमायुस्तथाऽऽरोग्यं लभ्यते ब्रह्मचारिभिः ॥

महाभारत आध्याय,145

जो सदा एकपत्नी व्रती रहता है, उसे ब्रह्मचारियों द्वारा प्राप्त किये जाने वाले फल- पवित्रता, आयु तथा आरोग्यता प्राप्त होती हैं।

जातिदेशकालसमयानवच्छिन्नाः सार्वभौमा महाव्रतम् ॥

योग. साधनपादः, 31

उपर्युक्त यम जाति, देश, काल तथा समय से अविच्छिन्न, (सीमा से परे) अर्थात् अप्रभावित रहने वाले महाव्रत हैं। इन का पालन समस्त मानव जाति को सदैव सर्वत्र करना चाहिये।

शौचसन्तोषतपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः ॥ योग दर्शन.2.32

(शौच) मन, शरीर एवं धन आदि की पवित्रता, (सन्तोष) जो उपलब्ध है उसमें सन्तोष करना, लोभ लालच न करना (तपः) सभी के कल्याण तथा श्रेष्ठ लक्ष्य की पूर्ति के लिये कष्ट सहन करना, (स्वाध्याय) वेद, शास्त्र तथा अन्य विद्याओं का अध्ययन करना (ईश्वर प्रणिधान) ईश्वर की अनन्य भक्ति करना तथा अपने आत्मा को परमात्मा से संयुक्त करना, ये पाँच नियम हैं।

शौच (पवित्रता)

अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थाङ्गतोऽपि वा।
यः स्मरेत्पुण्डरीकाक्ष स बाह्याभ्यन्तरः शुचिः॥

सुभाषित

अपवित्र अथवा पवित्र सभी अवस्थाओं में जो पुण्डरीकाक्ष भगवान् का स्मरण करता है, वह बाहर तथा अन्दर दोनों प्रकार से पवित्र हो जाता है।

सर्वेषामेव शौचनामर्थशौचं परं स्मृतम्।
योऽर्थे शुचर्हि स शुचिर्न मृद्वारिशुचिः शुचिः॥

मनु. 5.106

समस्त पवित्रताओं में धन की पवित्रता अत्यन्त श्रेष्ठ कही जाती है। जिस मनुष्य का धन पवित्र है वास्तव में वही पवित्र है। मिट्टी और जल से की गई शरीर की पवित्रता कोई पवित्रता नहीं होती।

जल आदि से शरीर की पवित्रता बाह्य शौच है। सात्विक पदार्थों के खाने से तथा मांस, मदिरा आदि के त्याग से शरीर के अन्दर की पवित्रता होती है।

आभ्यान्तर शौच-

ईर्ष्या, द्वेष, काम, क्रोध, लोभ, मोह, मत्सर, दम्भ, घृणा आदि अन्तःकरण के मलों को समाप्त करना, उनका प्रच्छालन करना आभ्यन्तर शौच है।

पवित्रता की महत्ता को दृष्टि में रखते हुये वेद में प्रार्थना की गयी है-

पुनन्तु मा देवजनाः पुनन्तु मनसा धियः ।
पुनन्तु विश्वा भूतानि जातवेदः पुनीहि मा ॥

अथर्व. 6.19.1(पाठ भेद) यजु. 19/39

(पुनन्तु मा देवजनाः) समस्त देव तथा विद्वान् (पुनन्तु मनसा धियः) मुझे मन, बुद्धि, वाणी तथा कर्मों से पवित्र करें (पुनन्तु विश्वा भूतानि) समस्त प्राणी मुझे पवित्र करें, (जातवेदः पुनीहिमा) समस्त उत्पन्न पदार्थों को जानने वाले अग्नि देव तथा भगवान् मुझे पवित्र करें।

दृष्टिपूतं न्यसेत्पादं वस्त्रपूतं जलं पिबेत ।
सत्यपूतां वदेद् वाचं मनःपूतं समाचरेत ॥

मनु. 6/46

दृष्टि से पवित्र करके अर्थात् सावधानी से देख कर पैर रखे, वस्त्र से छान कर अथवा अन्य किसी प्रकार से स्वच्छ करके जल पिये, सत्यसे पवित्र करके वाणी बोले तथा मन से पवित्र होकर आचरण करे। इस प्रकार मनसा वाचा कर्मणा पवित्र बनने का प्रयास करना चाहिये।

तप

यज्ञदान तपः कर्म न त्याज्यं कार्यमेव तत् ।

यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानिमनीषिणाम् ॥

गीता. 18.5

यज्ञ-दान तथा तप कभी त्यागने योग्य नहीं हैं। इन्हें तो करना ही चाहिये। यज्ञ दान तथा तप मनीषियों अर्थात् अपने मन पर शासन करने वाले ज्ञानी पुरुषों को पवित्र करने वाले होते हैं।

मनः प्रसादः सौम्यत्वं मौनमात्मविनिग्रहः।
भावसंशुद्धिरित्येतत्तपो मानसमुच्यते ॥

गीता.17.16

मन की प्रसन्नता तथा शान्तभाव, व्यवहार में सौम्यता, मौन, आत्म संयम और अन्तःकरण की पवित्रता, इन सब को मानसिक तप कहा जाता है।

देव द्विज गुरु प्राज्ञ पूजनं शौचमार्जवम्।
ब्रह्मचर्यमहिंसा च शरीरं तप उच्यते ॥

गीता. 17.14

देवता, ब्राह्मण, गुरु और विद्वान् तथा ज्ञानी की पूजा, पवित्रता, सरलता, ब्रह्मचर्य तथा अहिंसा, इन सब को शरीरिक तप कहा जाता है।

ऋतं तपः सत्यं तपो दमस्तपः स्वाध्यायस्तपः

तैत्तरीय आरण्यक प्रपाठक 10, अनुवाक 10

ऋत अर्थात् भगवान् के अटल सत्य नियमों के अनुसार आचरण करना तप है, सत्य बोलना तथा सत्य का पालन करना तप है,

मन एवं इन्द्रियों का संयम तप है तथा स्वाध्याय अर्थात् वेदादि शास्त्रों का अध्ययन एवं प्रणव का जप, तप है।

अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रियहितं च यत्।
स्वाध्यायाभ्यसनं चैव वाङ्मयं तप उच्यते ॥

गीता. 17.15

उद्वेग अर्थात् दूसरे के मन में क्रोध, उग्रता एवं सन्ताप को उत्पन्न न करने वाली, सत्य प्रिय और हितकारक बात कहना तथा वेद शास्त्रों का पठन एवं परमेश्वर के नाम का जप, वाणी का तप कहलाता है।

सन्तोष

सन्तोषं परमास्थाय सुखार्थी संयतो भवेत्।
संतोषमूलं हि सुखं दुःखमूलं विपर्ययः ॥

मनु. 4.12

सुख की इच्छा करने वाला व्यक्ति परम सन्तोष को धारण करके संयमित जीवन व्यतीत करे क्योंकि सन्तोष ही सुख का मूल है और उसके विपरीत अर्थात् असन्तोष दुःख का कारण है।

सन्तोषस्त्रिषु कर्तव्यः स्वदारे भोजने धने।
त्रिषु चैव न कर्तव्यः दाने तपसि पाठने ॥

चाणक्य नीति. 7.4

अपनी स्त्री, धन और भोजन, इन तीन बातों में सन्तोष करना चाहिये परन्तु दान करने, तपस्या करने तथा अध्ययन करने में कभी सन्तोष नहीं करना चाहिये।

सन्तोषामृत तृप्तानां यत्सुखं शान्तिरेव च।
न च तद्धनलुब्धानामितश्चेतश्च धावताम्॥

चाणक्य नीति. 7.6

सन्तोष रूपी अमृत से तृप्त पुरुष को जो सुख तथा शान्ति प्राप्त होती है वह धन के लिये इधर उधर दौड़ने वाले लोभियों को कभी प्राप्त नहीं होती है।

सन्तोष लोभ को भी समाप्त करता है।

उदित अगस्त पंथ जल सोखा।
जिमि लोभहिं सोखइ सन्तोषा॥

राम. चरितमानस, किष्किन्धा काण्ड

लोभ ही पाप का मूल है। अतः सन्तोष करने वाला पुरुष सदा पाप से बचा रहता है।

सन्तोष का फल –

सन्तोषादनुत्तमसुखलाभः।

सन्तोष की प्रतिष्ठा हो जाने पर अनुत्तम सुख अर्थात् जिससे श्रेष्ठ अन्य कोई सुख नहीं है, प्राप्त होता है।

ईश्वर प्रणिधान

ईश्वर प्रणिधान का अर्थ है, ईश्वर की अनन्य भक्ति एवं उसके प्रतिसमर्पण ।

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।
भ्रामयन्सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया॥

गीता, 18.61

हे अर्जुन ! ईश्वर समस्त प्राणियों को यन्त्र पर आरूढ़ अर्थात् चढ़े हुये के समान, अपनी माया से घुमाता हुआ समस्त प्राणियों के हृदय में स्थित रहता है।

तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत।
तत्प्रसादात्परां शान्तिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम्॥

गीता, 18.62

हे भारत ! सर्वभाव से अर्थात् सब प्रकार से उस परमेश्वर की ही शरण में जाओ। उस की कृपा से परम शान्ति तथा शाश्वत स्थान अर्थात् परमात्मा के परम धाम को प्राप्त होगे।

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्॥

गीता, 9.22

अनन्य भाव से चिन्तन करते हुये जो मेरी उपासना करते हैं उन, भक्तिभाव से मुझ में नित्य अभियुक्त होने वाले, भली प्रकार जुड़ जाने वाले, भक्तों के योग तथा क्षेम को मैं स्वयं वहन करता हूँ।

(अलब्धलाभो योगः) अप्राप्त वस्तु की प्राप्ति का नाम योग है तथा (प्राप्तस्य संरक्षणं क्षेमः) प्राप्त वस्तु के संरक्षण का नाम क्षेम है।

यमान सेवेत सततं न नित्यं नियमान्बुधः।
यमान्पतत्यकुर्वाणो नियमान् केवलान् भजन् ॥

मनु.4.204

इन पाँच यमों का निरन्तर नित्य सेवन करना चाहिये, केवल नियमों का ही नहीं। जो यमों का परित्याग करके केवल नियमों का पालन करते हैं, उनका पतन हो जाता है। नियमों का पालन तो केवल दिखावे के लिये भी किया जा सकता है किन्तु यमों के पालन का प्रभाव पूरे समाज पर पड़ता है और इन के पालन के बिना मनुष्य का जीवन श्रेष्ठ नहीं बन सकता। इसी लिये नियमों के साथ यमों का पालन करना अति आवश्यक है।

वास्तव में यम और नियम हमारे धर्म के आधार हैं। इन का पालन न होने से ही आज हमारे समाज की इतनी दुर्दशा है।

मन की पवित्रता

इन्द्रियाणां तु सर्वेषामीश्वरं मन उच्यते।
प्रार्थनालक्षणं तच्च इन्द्रियं तु मनः स्मृतम् ॥

महाभारत, अध्याय, 145

मन समस्त इन्द्रियों का स्वामी तथा नियन्त्रक कहलाता है। मन का लक्षण है प्रार्थना अर्थात् किसी वस्तु की इच्छा करना। मन को भी इन्द्रिय माना गया है।

मनः पूर्वागमा धर्मा अधर्माश्च न संशयः।
मनसा बद्ध्यते चापि मुच्यते चापि मानवः॥
निगृहीते भवेत् स्वर्गो विसृष्टे नरको ध्रुवः॥

महाभारत, अध्याय, 145

इसमें सन्देह नहीं कि धर्म और अधर्म पहले मन में ही आते हैं। मन के कारण ही मनुष्य बँधन में पड़ता है और मन के कारण ही मुक्त होता है। यदि मन को वश में कर लिया जाय तो स्वर्ग प्राप्त होता है और यदि उसे मनमानी करने दी जाय तो नरक की प्राप्ति अवश्यम्भावी है।

मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयो।

मन से ही मनुष्य बन्धन में पड़ता है और मन से ही मोक्ष प्राप्त करता है।

यतो यतो निश्चरति मनश्चञ्चलमस्थिरम्।
ततस्ततो नियम्यैतदात्मन्येव वशं नयेत्॥

गीता, 6/26

(चञ्चलम्) अत्यन्त चलायमान (अस्थिरम्) एवं कभी न स्थिर रहने वाला मन (यतः यतः निश्चरति) जिस जिस विषय में इधर उधर विचरण करता है, उस उस विषय से उसे बारम्बार रोककर

(एतत् मनः आत्मनि एव वशं नयेत्) इस मन को आत्मा के ही वशीभूत करे, आत्मा में ही स्थिर करे, अन्य किसी ओर विचरण न करने दे।

श्रोत्रं त्वक्चक्षुषी जिह्वा नासिका चैव पञ्चमी।
पायूपस्थं हस्तं पादं वाक् चैव दशमी स्मृता॥

मनु.2/90

कान, त्वचा, चक्षु, जिह्वा, नासिका, वाणी, हाथ, पैर, (उपस्थ) मूत्रेन्द्रिय अथवा जननेन्द्रिय तथा (पायु) मलेन्द्रिय, यह दश इन्द्रियाँ हैं।

इन्द्रियेभ्यः परा ह्यर्था अर्थेभ्यश्च परं मनः।
मनसस्तु परा बुद्धिर्बुद्धेरात्मा महान् परः॥ कठ. 1/3/10

निश्चय ही इन्द्रियों से उनके (अर्थाः) विषय सूक्ष्म हैं, विषयों से मन सूक्ष्म एवं श्रेष्ठ है, मन से बुद्धि सूक्ष्म है तथा बुद्धि से (महानात्मा) महान् आत्मा उत्कृष्ट है।

अद्भिर्गात्राणि शुद्ध्यन्ति मनः सत्येन शुद्ध्यति।
विद्यातपोभ्यामं भूतात्मा बुद्धिर्ज्ञानेन शुद्ध्यति॥

मनु.5.109

जल से शरीर के अवयव शुद्ध होते हैं, सत्य से मन शुद्ध होता है, विद्या तथा तप से जीवात्मा शुद्ध होती है और ज्ञान से बुद्धि पवित्र होती है।

गायत्री उपासना की सफलता तथा जीवन की श्रेष्ठता एवं पवित्रता के लिये आवश्यक है, मन की निर्मलता क्योंकि मन ही समस्त इन्द्रियों को नियन्त्रित करता है, वही अच्छे अथवा बुरे जीवन का निर्माण करता है। अतः हमें सदैव यह प्रयास करना चाहिये कि हमारे मन में कभी कोई बुरा विचार तथा निकृष्ट संकल्प न आये। हमारे सभी संकल्प तथा कर्म कल्याणकारी हों। इसके लिये यजुर्वेद के निम्नांकित मन्त्रों में की गयी प्रार्थना अद्वितीय एवं सर्व श्रेष्ठ है।

संसार की किसी भी भाषा में ऐसी अद्भुत प्रार्थना नहीं है। प्रत्येक विद्यार्थी एवं प्रबुद्ध व्यक्ति को इन मन्त्रों को ध्यान पूर्वक पढ़कर अपने मन को निर्मल एवं शिव संकल्प वाला बनाना चाहिये।

यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवैति।
दूरङ्गमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः
शिवसंकल्पमस्तु॥ यजु. 34.1

(यत् जाग्रतः दूरं उत् एति) जो जाग्रत अवस्था में दूर दूर जाता है, (तत् उ सुप्तस्य तथा एव दैवं एति) और जो सुप्तावस्था में उसी प्रकार आत्मा की ओर चला जाता है, (दूरङ्गमं ज्योतिषां एकं ज्योतिः) दूर-दूर जाने वाला, तथा सभी ज्ञानेन्द्रियों को प्रकाशित करने वाली एक मात्र ज्योति के रूप में स्थित (तत् मे

मनः शिव संकल्पमस्तु) वह मेरा मन शिव संकल्प वाला हो, कल्याणकारी संकल्प वाला हो।

येन कर्माण्यपसो मनीषिणो यज्ञे कृण्वन्ति विदथेषु धीराः। यदपूर्वं यक्षमन्तः प्रजानां तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु॥ यजु. 34.2

(येन अपसः मनीषिणः धीराः यज्ञे विदथेषु कर्माणि कृण्वन्ति) जिसकी सहायता से धर्मनिष्ठ, सत्यवादी आप्त विद्वान् एवं मनीषी तथा धीर पुरुष यज्ञों में, विज्ञान सम्बन्धी कार्यों में तथा युद्धों अथवा जीवन के संघर्षों में विभिन्न कर्म करते हैं (यत् प्रजानां अन्तः अपूर्वं यक्षं) जो प्राणियों के अन्तःकरण में अपूर्वअर्थात् सर्वोत्तम गुण कर्म स्वभाव वाला अद्भुत पूजनीय यक्ष स्वरूप है, (तत् मे मनः शिव संकल्पस्तु) वह मेरा मन शिव संकल्प वाला हो।

यत्प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च यज्ज्योतिरन्तरमृतं प्रजासु। यस्मान्न ऋते किं चन कर्म क्रियते तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु॥ यजु. 34.3

(यत् प्रज्ञानम् उत चेतः धृतिः च) जो ज्ञान, चेतना, स्मृति तथा धैर्य आदि मानवीय सद्गुणों एवं भावनाओं का आधार है, (यत् प्रजासु अन्तः अमृतं ज्योतिः) जो प्राणियों के अन्तः करण में अमृत ज्योति स्वरूप है, (यस्मान् ऋते किं चन कर्म न क्रियते)

तथा जिसके बिना कोई भी कर्म नहीं किया जा करता, (तत् मे मनः शिव संकल्पस्तु) वह मेरा मन शिव संकल्प वाला हो।

येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत् परिगृहीतममृतेन सर्वम्। येन यज्ञस्तायते सप्तहोता तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु॥ यजु. 34.4

(येन अमृतेन भूतं भुवनं भविष्यत् सर्वं इदं परिगृहीतम्) जिस अमृत स्वरूप मन से भूत, भविष्य तथा वर्तमान में स्थित सब कुछ भली प्रकार ग्रहण किया जाता है, जाना जाता है, (येन सप्ताहोता यज्ञः तायते) शरीर में निरन्तर चलने वाला सप्तहोता यज्ञ जिसके द्वारा सम्पन्न होता है (तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु) वह मेरा मन शिव संकल्प वाला हो। सप्ताहोता- प्राण, अपान,व्यान चक्षु, श्रोत्र वाणी तथा मन, ये शरीर रूपी यज्ञ के सात होता हैं।(यजु 22.23)

यस्मिन्नृचः साम यजू ꣳषि यस्मिन् प्रतिष्ठिता रथनाभाविवाराः। यस्मिँश्चित्त ꣳ सर्वमोतं प्रजानां तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु॥

यजु. 34.5

(यस्मिन् ऋचः साम यजूंषि) जिसमें ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा (यस्मिन) जिसमें अथर्ववेद के मन्त्र (रथनाभौ अराः इव प्रतिष्ठिताः) इस प्रकार प्रतिष्ठित रहते हैं जिस प्रकार रथ के

पहिये की नाभि में पहिये के अरे प्रतिष्ठित रहते हैं, (यस्मिन् प्रजानां सर्वं चित्तं ओतम्) तथा जिसमें प्रजाओं का सम्पूर्ण चित्त ओत प्रोत रहता है (तत् मे मनः शिवसंकल्पमस्तु) वह मेरा मन शिव संकल्प वाला हो।

सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान्नेनीयतेऽभीशुभि र्वाजिन इव। हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु॥ यजु. 34.6

(यत् सुषारथिः अश्वान् इव मनुष्यान् नेनीयते) जो मनुष्यों को इस प्रकार इधर उधर ले जाता है, जिस प्रकार कुशल सारथी अश्वों को ले जाता है (अभीशुभिः वाजिन इव) तथा जो इन्द्रियों एवं शरीर को इस प्रकार नियन्त्रण में रखता है जैसे कुशल सारथी रस्सियों से बलशाली एवं वेगवान् अश्वों को नियन्त्रण में रखता है, (यत् हृत्प्रतिष्ठं
अजिरं जविष्ठं) जो हृदय में स्थित रहने वाला, कभी वृद्ध न होने वाला तथा अत्यन्त वेगवान् है (तत् मे मनः शिवसंक्ल्पमस्तु) वह मेरा मन शिव संकल्प वाला हो।

<u>माता पिता</u>

यन्मातापितरौ क्लेशं सहते संभवे नृणाम्।
न तस्य निष्कृतिः शक्त्या कर्तुं वर्षशतैरपि॥

मनु. 2.227

बच्चे के जन्म और पालन पोषण में माता-पिता जो क्लेश सहन करते हैं उसका प्रत्युपकार,उसकी प्रतिपूर्ति सौ वर्ष तक उनकी सेवा करने से भी नहीं की जा सकती।

सर्वे तस्यादृता धर्मा यस्यैते त्रय आदृताः।
अनादृतास्तु यस्यैते सर्वास्तस्याफलाः क्रियाः ॥

मनु.2.234

जिसने इन का आदर सम्मान किया, उसने समस्त धर्मों का पालन कर लिया और जिसने इनका अनादर किया उसकी समस्त क्रियायें निष्फल होती हैं।

दुर्भाग्य है कि आज हम इस शिक्षा को छोड़कर इसके ठीक विपरीत मार्ग पर चल रहे हैं, जिसका अत्यन्त सजीव चित्रण आध्यात्म रामायण के निम्नांकित श्लोक में किया गया है।

देहात्मदृष्टयो मूढा नास्तिकाः पशुबुद्धयः।
मातापितृकृतद्वेषाः स्त्रीदेवा कामकिंकराः ॥

आ.रामा. महात्म्य.11

यह लोग शरीर में आत्मबुद्धि वाले अर्थात् शरीर को ही आत्मा समझने वाले, मूर्ख, नास्तिक तथा पशुओं के समान बुद्धि वाले, माता पिता से द्वेष करने वाले और काम वासना के दास होकर स्त्री को ही देवता समझने वाले हैं।

पत्नी एवं परिवार

वेदों में बिवाह सम्बन्धी मन्त्र अत्यन्त सुन्दर हैं। कृपया मेरी पुस्तक **वेद सुरभि** में इनको देखने का कष्ट करें।

इनमें से दो महत्व पूर्म मन्त्र यहाँ प्रस्तुत किये जारहे हैं।

सम्राज्ञ्येधि श्वशुरेषु सम्राज्ञ्युत देवृषु।

ननान्दुः सम्राज्ञ्येधि सम्राज्ञ्युत श्वश्र्‌ वाः ॥

अथर्व. 14.1.44

वैदिक संस्कृति में नव वधू को इतना सम्मान दिया जाता है कि उससे कहा गया है कि (श्वशुरेषु सम्राज्ञी एधि) अपने श्वशुर के घर में सम्राज्ञी के समान रहो (उत देवृषु सम्राज्ञी) और अपने देवरों में भी सम्राज्ञी होकर रहो, (ननान्दुः सम्राज्ञी एधि) ननद के साथ भी सम्राज्ञी के समान रहो (उत) तथा (श्वश्र्‌ वाः सम्राज्ञी) अपनी सास के साथ भी सम्राज्ञी के समान रहो।

अब उसे दी गयी शिक्षा को देखिये।

अघोरचक्षुरपतिघ्नी स्योना शग्मा सुशेवा सुयमा गृहेभ्यः। वीरसूर्देवृकामा सं त्वयैधिषीमहि सुमनस्यमाना ॥

ऋग्. 10.85.44 अथर्व. 14.2.17

(अघोर चक्षुः) तुम्हारी दृष्टि कभी क्रूर न हो, (अपतिघ्नी) ग्रह कलह अथवा अन्य किसी प्रकार से पति को मारने वाली, उसका प्राण लेने वाली अर्थात् उसे दुखी करने वाली न बनना, (स्योना) सब को सुख देने वाली होना,(शग्मा) सब के लिये

कल्याणकारी, (सुशेवा) अपने से बड़ों की सेवा करने वाली तथा सेवकों से भली प्रकार सेवित होने वाली अर्थात् सेवकों को भी कष्ट न देने वाली (सुयमा) परिवार में यम नियम के अनुसार रहने वाली अर्थात् उच्छृंखल न होने वाली, (वीरसूः) वीर पुत्रों को जन्म देने वाली, (देवृकामा) देवरों को प्रेम करने वाली तथा (सुमनस्येमाना) अच्छे मन वाली बनना, (त्वया सम् एधिषीमहि) जिससे तुम्हारे उपरोक्त गुणों के कारण हम सब सखी एवं सम्पन्न हों।

यजुर्वेद के इस मन्त्र में पत्नी का वर्णन सरस्वती के रूप में किया गया है।

कुसुरुविन्दु- ऋषिः, देवता पत्नी

इडे रन्ते हव्ये काम्ये चन्द्रे ज्योतेऽदिते सरस्वति महि विश्रुति। एताते अघ्न्ये नामानि देवेभ्यो मा सुकृतं ब्रूतात्॥

यजु. 8. 43

(इडे) प्रशंसनीय गुणों से युक्त, स्तुति करने योग्य, (रन्ते) रमणीय, (हव्ये) स्वीकार करने योग्य, (काम्ये) सुन्दर कमनीय (चन्द्रे) अत्यन्त आनन्द देने वाली, (ज्योते) तेजोमयी, (अदिते) देवमाता अदिति के समान सम्माननीय, (विश्रुति) विशेष विद्या एवं ज्ञान से युक्त, बुद्धिमान (महि) श्रेष्ठ मानवीय गुणों से युक्त होने के कारण महान्, (सरस्वति) सरस्वती के समान ज्ञान का

श्रेष्ठ मार्ग दिखाने वाली तथा कल्याण करने वाली, (अघ्न्ये) किसी प्रकार का कष्ट न दिये जाने योग्य हे पत्नी ! ये सब तुम्हारे नाम हैं, (देवेभ्यः) तुम देवों के लिये, विद्वानों के हित के लिये (सुकृतं) मुझे श्रेष्ठ कर्म करने के लिये (ब्रुतात्) कहो, श्रेष्ठ कर्मों की प्रेरणा दो।

पूजनीया महाभागाः पुण्याश्च गृहदीप्तयः।
स्त्रियः श्रियो गृहस्योक्तास्तस्माद् रक्ष्याविशेषतः॥

विदुरनीति. 6.11

घर की स्त्रियाँ पूजा के योग्य, महालक्ष्मी स्वरूप, पुण्यरूप, घर को प्रकाशित करने वाली तथा घर की शोभा कही गयी हैं, अस्तु ये विशेष रूप से रक्षा किये जाने योग्य हैं।

सन्तुष्टो भार्यया भर्त्ता भर्त्रा भार्या तथैव च।
यस्मिन्नैव कुले नित्यं कल्याणं तत्र वै ध्रुवम्॥

मनु.2.60

जिस कुल में पत्नी से पति तथा पति से पत्नी सदा प्रसन्न एवं सन्तुष्ट रहते हैं, वहाँ निश्चय ही सदा आनन्द, कल्याण एवं सौभाग्य निवास करता है।

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः॥

मनु. 3.56

जहाँ स्त्रियों की पूजा होती है वहाँ देवता निवास करते हैं और जहाँ उनकी पूजा नहीं होती अर्थात् उनका सम्मान नहीं होता वहाँ की समस्त क्रियायें निष्फल हो जाती हैं।

शोचन्ति जामयो यत्र विनश्यत्याशु तत्कुलम्।
न शोचन्ति तु यत्रैता वर्धते तद्धि सर्वदा॥ मनु. 3.57

जिस कुल में स्त्रियाँ कष्ट भोगती हैं, वह कुल शीघ्र ही नष्ट हो जाता है और जहाँ नारियाँ दुःखी नहीं रहती वह कुल सदैव फलता फूलता है, समृद्ध होता है।

तस्मादेताः सदा पूज्या भूषणाच्छादनाशनैः।
भूतिकामैर्नरैर्नित्यं सत्कारेषुत्सवेषु च॥

मनु. 3.59

इसलिये ऐश्वर्य की इच्छा करने वाले पुरुषों के द्वारा ये स्त्रियाँ सत्कार के अवसरों तथा उत्सवों में सदा आभूषण, वस्त्र भोजन आदि के द्वारा पूज्य अर्थात् सम्मानित किये जाने के योग्य होती हैं।

अनुव्रतः पितुः पुत्रो मात्रा भवतु संमनाः।
जाया पत्ये मधुमतीं वाचं वदतु शन्तिवाम्॥

अथर्व. 3.30.2

(पुत्रः पितुः अनुव्रतः) पुत्र पिता के अनुकूल कर्म करने वाला हो और (मात्रा संमनाः भवतु) माता के साथ समान मन वाला हो।

(जाया) पत्नी (पत्ये) पति के लिये (मधुमतीम् शन्तिवाम् वाचं वदतु) मधुर तथा शान्तिदायक वाणी बोले।

व्रतं कर्म नाम। निघण्टु. 2.1

पुन्नाम्नो नरकाद्यस्मात्त्रायते पितरं सुतः।
तस्मात्पुत्र इति प्रोक्तः स्वयमेव स्वयंभुवा॥

मनु.9/138

(पुन्नाम्नः नरकात् त्रायते इति पुत्रः) पुम् नामक नरक (एवं वृद्धावस्था तथा अन्य कारणों से उत्पन्न दुःख) से पुत्र अपने माता पिता की रक्षा करता है, अतएव स्वयं प्रजापति ने ही उसे पुत्र कहा है।

मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन्मा स्वसारमुत स्वसा।
सम्यञ्चः सव्रता भूत्वा वाच वदत भद्रया॥

अथर्व. 3.30.3

(मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षत) भाई, भाई के साथ द्वेष न करे, (मा स्वसा स्वसारम्) बहिन, बहिन के साथ द्वेष न करे (सम्यञ्चः सव्रताः भूत्वा) और सम्यक् व्यवहार वाले तथा समान कर्मों वाले होकर (भद्रया वाचम् वदत) परस्पर सुखदायक, शान्तिपूर्ण, कल्याण करने वाली वाणी बोलें।

येन देवा न वियन्ति नो च विद्विषते मिथः।
तत् कृण्मो ब्रह्म वो गृहे संज्ञानं पुरुषेभ्यः॥

अथर्व.3.30.4

(येन देवाः न वियन्ति) जिसके कारण माता पिता आदि देव विपरीत मार्गों पर नहीं चलते (न च मिथः विद्विषते) और न परस्पर द्वेष करते हैं, (तत् ब्रह्म) उस वैदिक ज्ञान को, (पुरुषेभ्यः संज्ञानम्) जो पुरूषों को शिक्षा देता है, उचित मार्ग दर्शन करत है, (वः गृहे कृण्मः) तुम्हारे गृह के लिये निर्धारित करता हूँ।

प्रत्येक मनुष्य को वैदिक ज्ञान के अनुसार आचरण करके अपना पारिवारिक जीवन सुखमय बनाना चाहिये।

ज्यायस्वन्तश्चित्तिनो मा वि यौष्ट संराधयन्तः सधुराश्चरन्तः। अन्यो अन्यस्मै वल्गु वदन्त एत सध्रीचीनान् वः संमनस्कृणोमि ॥

अथर्व. 3.30.5

(ज्यायस्वन्तः) वृद्धजनों के नियन्त्रण में (चित्तिनः) अपने अपने कर्तव्यों के प्रति सचेत रहते हुये तथा (संराधयन्तः) एक साथ मिलकर कार्यों को सिद्धि करते हुये (सुधारः चरन्तः) एक बैलगाड़ी में जुते हुये बैलों के समान साथ साथ चलो,(मा वि यौष्ट) अलग अलग न हो, (अन्यो अन्यस्मै) परस्पर के दूसरे के लिये (वल्गु वदन्तः एत) प्रिय वचन बोलते हुये जीवन व्यतीत करो। (सध्रीचीनान् वः) तुम्हें गृहकार्यों में साथ साथ चलते हुये (संमनसः कृणोमि) समान मन वाला, एक से मन वाला बनाता हूँ।

प्राणायाम

तस्मिन्सतिश्वासप्रश्वासयोर्गतिविच्छेदः

प्राणायामः । योग दर्शन, साधनपादः ,49

आसन के सिद्ध हो जाने पर श्वास तथा प्रश्वास दोनों की गति का विच्छेद अथवा रोकना प्राणायाम कहलाता है।

प्राणायाम का शाब्दिक अर्थ है- प्राण+आयाम = प्राण का विस्तार, प्राण की पुष्टि । प्राणायाम से शरीर को निरोगिता तथा निर्मलता प्राप्त होती है और मन इन्द्रियों का संयम होता है तथा स्वर में माधुर्य एवं शरीर में हलकापन आ जाता है, साथ ही बुद्धि तीव्र एवं सूक्ष्म हो जाती है।

नमस्ते अस्त्वायते नमो अस्तु परायते ।
नमस्ते प्राण तिष्ठत आसीनायोत ते नमः ॥

आथर्व.12/4/7

मन्त्र में प्राणायाम का वर्णन है।

(नमस्ते अस्तु आयते) अन्दर आने वाले (पूरक) प्राण को प्रणाम, (नमस्ते अस्तु परायते) बाहर जाने वाले (रेचक) प्राण को प्रणाम, (नमस्ते प्राण तिष्ठत) शरीर के अन्दर स्थित किये गये (आभ्यान्तर कुम्भक) प्राण को प्रणाम (उत आसीनाय ते नमः) तथा बाहर रोके हुये प्राण तुम्हें प्रणाम है।

यहाँ 'आयते प्राण' का तात्पर्य पूरक से है, 'परायते प्राण' का तात्पर्य रेचक से है, 'तिष्ठत प्राण' का तात्पर्य अन्तः कुम्भक से है तथा 'आसीन प्राण' का तात्पर्य शरीर से बाहर रोके हुये प्राण अर्थात् बाह्य कुम्भक से है।

प्राणायामा ब्राह्मणस्य त्रयोऽपि विधिवत्कृताः।
व्याहृतिप्रणवैर्युक्ता विज्ञेयं परमं तपः॥

मनु. 6/70

ब्राह्मण द्वारा व्याहृतियों एवं ओंकार के साथ विधिवत् तीन प्राणायाम भी किया जाना, परम तप समझना चाहिये।

दह्यन्ते ध्यायमानानां धातूनां हि यथा मलाः।
तथेन्द्रियाणां दह्यन्ते दोषाः प्राणस्य निग्रहात्॥

मनु. 6/71

जिस प्रकार अग्नि में तपाने से (स्वर्णादि) धातुओं का मल नष्ट हो जाता है, उसी प्रकार प्राण के निग्रह अर्थात् प्राणायाम से इन्द्रियों के दोष दूर हो जाते हैं।

प्राणायामैर्दहेद्दोषान्धारणाभिश्च किल्विषम्।
प्रत्याहारेण संसर्गान्ध्यानेनानीश्वरान्गुणान्॥

मनु.6.72

प्राणायाम द्वारा दोषों को दग्ध करे तथा धारणा अर्थात् परमात्मा में मन एवं चित्त लगाकर पापों का नाश करे, प्रत्याहार द्वारा

लोभ मोह क्रोध आदि को दूर करे तथा भगवान् का ध्यान करके अनीश्वरवाद और नास्तिकता को दूर करे।

प्राणायाम का फल बताते हुये योग दर्शन में कहा गया है-

ततः क्षीयते प्रकाशावरणम्।

योग दर्शन, साधनपादः, 52

प्राणायाम का अभ्यास करने पर आत्मा के ज्ञान को ढँकने वाला अज्ञान का आवरण उत्तरोत्तर क्षीण होता जाता है तथा ज्ञान का प्रकाश बढ़ता जाता है।

दान

शतहस्त समाहर सहस्त्रहस्त संकिर।
कृतस्य कार्यस्य चेह स्फातिं समावह॥

अथर्व. 3.24.5

सौ हाथों से धन का संग्रह करो, हजारों हाथों से दान करों। अपने कार्यक्षेत्र तथा कर्तव्य क्षेत्र का विस्तार करो।

यानीन्मान्यत्तमानीह वेदोक्तनि प्रशंससि।
तेषां श्रेष्ठतमं दानमिति मे नात्र संशयः॥

महाभारत, अध्याय, 120. 17

महर्षि व्यास मैत्रेय से कहते हैं कि तुम जिन जिन वेदोक्त उत्तम कर्मों की यहाँ प्रशंसा कर रहे हो. उन सब में दान ही श्रेष्ठतर है, इस विषय में मुझे संशय नहीं है।

सर्वेषामेव दानानां ब्रह्मदानं विशिष्यते।
वार्यन्नगोमहीवासस्तिलकाञ्चनसर्पिषाम्॥

मनु. 4.233

जल, अन्न, गौ, भूमि, तिल, सोना, घी आदि समस्त वस्तुओं के दानों से ब्रह्मदान अर्थात् वैदिक ज्ञान का दान श्रेष्ठ है।

अन्न का दान

य आध्राय चकमानाय पित्वोऽ न्नवान्त्सन् रफितायोपजग्मुषे। स्थिरं मनः कृणुते सेवते पुरोतो चित् स मर्डितारं न विन्दते॥

ऋग्. 10.117.2

(यः अन्नवान् सन् आध्राय पित्वः चकमानाय) जो अन्नवान होता हुआ भी दुर्बल, को अन्न मांगने वाले बुभुक्षित याचक को, (रफिताय उपजग्मुषे मनः स्थिरं कृणुते) दरिद्र मनुष्य को तथा घर पर याचनार्थ आये व्यक्ति को देखकर हृदय को निष्ठुर कर लेता है, दान देने की इच्छा नहीं करता और (पुरा सेवते) उसके सामने ही स्वयं भोजन करता है, (सः मर्डितारं न विन्दते) उसे कोई सुख देने वाला प्राप्त नहीं होता, वह कभी सुखी नहीं हो सकता।

स इद्भोजो यो गृहवे ददात्यन्नकामाय चरते कृशाय।

अरमस्मै भवति यामहूता उतापरीषु कृणुते सखायम् ॥

ऋग्. 10.117.3

(सः इत् भोजः यः गृहवे अन्नकामाय चरते कृशाय ददाति) वही सच्चा दाता है, जो क्षुधा से व्याकुल, अन्न की इच्छा से भिक्षा मांगने वाले कृशकाय निर्बल व्यक्ति को अन्न देता है, (यामहुतौ अस्मै अरं भवति) उसे यज्ञ से पूर्ण फल प्राप्त होता है और (उत अपरीषु सखायं कृणुते) वह शत्रुओं में भी अपना मित्र बना लेता है।

मोघमन्नं विन्दते अप्रचोताः सत्यं ब्रवीमि वध इत् स तस्यनार्यमणं पुष्यति नो सखायं केवलाघो भवति केवलादी ॥

ऋग्, 10. 117.6

(अप्रचेताः मोघं अन्नं विन्दते) दान न देने वाला मनुष्य व्यर्थ ही अन्न को प्राप्त करता है। (सत्यं ब्रवीमि) मैं सत्य कहता हूँ कि (तस्य सः वधः इत्) वह दान न दिया हुआ अन्न न देने वाले के लिये घातक होता है, मृत्यु के समान होता है। (अर्यमणं न पुष्यति नो सखायं) जो न तो देवों को हवि अर्पण करता है और न आश्रित को अर्थात् पालन पोषण किये जाने योग्य व्यक्ति को अन्न देता है और जो दूसरे को अन्न न देकर स्वयं ही खाता है, (केवलादी केवलाघः भवति) ऐसा अकेले खाने वाला व्यक्ति

केवल पाप का ही भागी होता है, पाप को ही खाने वाला होता है।

अघं स केवलं भुङ्क्ते यः पचत्यात्मकारणात्।
यज्ञशिष्टाशनं ह्येतत्सतामन्नं विधीयते ॥

मनु. 3.118

जो पुरुष अपने आश्रितों तथा भूखे व्यक्तियों को भोजन न देकर स्वयं अकेला ही भोजन करता है, वह अन्न को नहीं बल्कि केवल पाप को ही खाता है। यज्ञ से बचा हुआ अन्न ही सत्पुरुषों का भोजन कहा गया है।

यज्ञशिष्टशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्बिषः।
भुञ्जते ते त्वघं पाप ये पचन्त्यात्मकारणात्॥

गीता.1.13

यज्ञ से शेष बचे हुये अन्न को खाने वाले श्रेष्ठ पुरुष समस्त पापों से मुक्त हो जाते हैं, जो पापी लोग केवल अपने लिये ही भोजन पकाते हैं, ये तो पाप को ही खाते हैं।

अहमस्मि प्रथमजा ऋतस्य पूर्वं देवेभ्यो अमृतस्य नाम। यो मा ददाति स इदेवमा वदहमन्नमन्नमदन्तमद्मि॥ साम.६/३/१०/९, क्र. सं. 594

(अहं प्रथमजा ऋतस्य अस्मि) मैं सर्वप्रथम सत्य को उत्पन्न करने वाला, सत्य का प्रथम प्रवर्तक हूँ, (पूर्वं देवेभ्यः अमृतस्य नाम) समस्त देवों से पूर्व प्रकट होने वाला तथा अमृत नाम

वाला हूँ, अमृत का केन्द्र हूँ। (अहं अन्नं) मैं अन्न हूँ, (यः मा ददाति) जो अन्न स्वरूप मुझे दूसरे भूंखे प्राणी को देता है, (सः इत् एवं आवत) वह इस प्रकार देने से उसकी रक्षा करता है, (अन्नं अदन्तंद्मि) किन्तु जो दूसरे को न देकर, स्वयं अकेले ही अन्न को खाता है, उसे मैं खा जाता हूँ, नष्ट कर देता हूँ।

मन्त्र में भगवान् ने स्वयं कहा है कि मैं अन्न स्वरूप हूँ और जो मुझे भूंखे प्राणी को नहीं देता है, उसे मैं खा जाता हूँ। यह है अन्न दान का महत्व।

अन्न के महत्व को बताते हुये तैत्तिरीय उपनिषद् में कहा गया है-

अन्नं न निन्द्यात्। तद्व्रतम्। - तैत्ति. उप. 3.7

अन्न की निन्दा न करे, यह व्रत है।

अन्नं न परिचक्षीत। तद्व्रतम्। -तैत्ति. उप. 3.8

अन्न की अवहेलना न करे, यह व्रत है।

अन्नं बहुकुर्वीत। तद्व्रतम्। तैत्ति.उप. 3.9

अन्न की वृद्धि करे। बहुत सा अन्न उत्पन्न करे। यह व्रत है।

स पचामि स ददामि स यजे स दत्तान्मा यूषम्॥

अथर्व. 6.123.4

(सः पचामि) वह मैं भोजन पकाता हूँ, (सः ददामि) वह मैं दान करता हूँ, (सः यजे) वह मैं यज्ञ करता हूँ, (सः दत्तात् मा यूषम्)

वह मैं दान से पृथक् न होऊँ।

योगी

योगस्थः कुरु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा धनञ्जय।
सिद्धियसिद्धयोः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते ॥

गीता.2/48

हे धनञ्जय ! आसक्ति को त्याग कर तथा सिद्धि और असिद्धि अर्थात् सफलता और असफलता में समत्व भाव रूपी योग में स्थित हो कर कर्म करो। समत्व भाव को ही योग कहा जाता है।

बुद्धियुक्तो जहातीह उभे सुकृतदुष्कृते।
तस्माद्योगाय युज्यस्व योगः कर्मसु कौशलम् ॥

गीता, 2/50

सफलता तथा असफलता में समत्व बुद्धि से युक्त व्यक्ति पुण्य तथा पाप दोनों से ऊपर हो जाता है क्योंकि अन्तःकरण की शुद्धि तथा ज्ञान से उसके समस्त कर्म नष्ट हो जाते हैं। अतः योग की प्राप्ति के लिये ही प्रयास करो क्योंकि योगस्थ होकर कर्म करना ही कर्म करने का वस्तविक कौशल है। तात्पर्य

यह है कि कर्म करने की चतुरता अथवा दक्षता यही है कि योगस्थ होकर कर्म किये जायँ। यही वास्तविक कर्म-योग है।

अनेक विद्वान इस श्लोक का यह अर्थ लगाते हैं कि कर्म करने में कुशलता ही योग है, जो कि पूर्ण रूप से गलत है।

जितात्मनः प्रशान्तस्य परमात्मा समाहितः।
शीतोष्णसुखदुःखेषु तथा मानापमानयोः॥

गीता. 6/7

अपने ऊपर संयम रखने वाले, शान्त अन्तःकरण वाले, अपनी बुद्धि एवं आत्मा को केवल परमात्मा में समाहित करने वाले, शीत-उष्ण, सुख-दुःख तथा मान-अपमान में समान भाव रखने वाले एवं -

ज्ञानविज्ञानतृप्तात्मा कूटस्थो विजितेन्द्रियः।
युक्त इत्युच्यते योगी समलोष्टाश्मकाञ्चनः॥

गीता.6/8

ज्ञान-विज्ञान से तृप्त अन्तःकरण वाले, विकार रहित, इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करने वाले तथा मिट्टी, पत्थर और सुवर्ण को समान समझने वाले योगी को युक्त कहा जाता है।

प्रयत्नाद्यतमानस्तु योगी संशुद्धकिल्बिषः।
अनेकजन्मसंसिद्धस्ततो याति परां गतिम्॥

गीता.6/45

प्रयत्न करने वाला योगी अत्यन्त प्रयत्न करके सभी पापों से मुक्त होकर, शुद्ध होकर, अनेक जन्मों में सिद्धि को प्राप्त करता हुआ अन्त में परमगति को प्राप्त होता है।

सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि।
ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः॥

गीता,6/29

(योग युक्तात्मा) योग से युक्त आत्मा अर्थात् समाहित अन्तः करण वाला तथा (समं निर्विशेषं दर्शनं ज्ञानं यस्य स सर्वत्र समदर्शनः) समस्त भूतों को समत्व भाव से, समान रूप से देखने वाला योगी, (सर्वेभूतस्थम् आत्मानम्) परमात्मा को समस्त भूतों में स्थित (च सर्वभूतानि आत्मानि) तथा समस्त भूतों को परमात्मा में स्थित (ईक्षते) देखता है।

यह स्पष्ट है कि जब तक कोई पुरुष परमात्मा को समस्त भूतों में, और समस्त भूतों को परमात्मा में स्थित नहीं देखेगा तब तक वह समदर्शी एवं योगी नहीं हो सकता।

श्रेष्ठ कर्म

यज्ञार्थात्कर्मणोऽ न्यत्र लोकोऽयं कर्मबन्धनः।
तदर्थं कर्म कौन्तेय मुक्तसङ्गः समाचर॥

गीता. 3.9

यज्ञ के लिये किये गये कर्मों के सिवाय अन्य कर्मों से मनुष्य कर्मों के बन्धन में फँसता है। अतः हे अर्जुन ! आसक्ति से रहित होकर यज्ञ के लिये, लोक कल्याण के लिये कर्म करो।

वैदिक धर्म में पाप - पुण्य की अवधारणा से कर्मों का गहरा सम्बन्ध है किन्तु दुर्भाग्य से अब हमारे समाज में बहुत से लोगों की दृष्टि में येन केन प्रकारेण स्वार्थ सिद्ध करना ही महत्व पूर्ण हो गया है। पाप-पुण्य का बिचार निरर्थक हो गया है। यही हमारे पतन का मुख्य कारण है।

अष्टा दश पुराणेषु व्यासस्य वचनद्वयम्।
परोपकारः पुण्याय पापाय परपीडनम्॥

सुभाषित

अट्ठारह पुराणों में व्यास जी के दो वचन महत्वपूर्ण हैं। दूसरों का उपकार करना पुण्य है तथा दूसरों को कष्ट पहुँचाना पाप है।

मनुस्मृति में कहा गया है –

यत्कर्म कुरुतोऽस्य स्यात्परितोषोऽन्तरात्मनः।
तत्प्रयत्नेन कुर्वीत विपरीतं तु वर्जयेत्॥

मनु. 4.161

जिस कार्य को करने में किसी व्यक्ति की अन्तरात्मा को परितोष हो अर्थात् आत्मा सब प्रकार से प्रफुल्ल एवं सन्तुष्ट हो, उसे अत्यन्त प्रयत्न पूर्वक करना चाहिये और इसके विपरीत जिस कार्य से आत्मा को ग्लानि हो उसे कभी नहीं करना चाहिये।

तपो विद्या च विप्रस्य निःश्रेयसकरं परम्।
तपसा किल्विषं हन्ति विद्ययाऽमृतमश्नुते॥

मनु. 12.104

तप और विद्या ब्राह्मण के लिये परम कल्याणकारी हैं क्योंकि वह तप से पाप का नाश करता है और विद्या से अमृतत्व अर्थात मोक्ष को प्राप्त करता है।

देखिये, आचार्य ने छोटे-छोटे वाक्यों में अपने शिष्यों को कैसी सुन्दर शिक्षा दी है।

सत्यं वद। धर्मं चर। सत्य बोलो धर्म का आचरण करो (स्वाध्यायात् मा प्रमदः) स्वाध्याय करने में प्रमाद न करो। (आचार्याय प्रियम् धनं आहृत्य) आचार्य के लिये जो प्रिय धन हो वह उन्हें लाकर दो। (प्रजातन्तुम् मा व्यवच्छेत्सीः) प्रजातन्तु का विच्छेद मत करो अर्थात् उत्तम सन्तान उत्पन्न करो। (सत्यात् न प्रमदितब्यं) सत्य के पालन में प्रमाद न करो। (धर्मात् न प्रमदितव्यं) धर्म के पालन में प्रमाद न करो। (कुशलात् न प्रमदितव्यं) कल्याण कारी कर्मों में प्रमाद न करो। (भूत्यै न प्रमदितव्यं) अभ्युदय के कर्मों में प्रमाद न करो। (स्वाध्यायप्रवचनाभ्याम् न प्रमदितव्यम्) स्वाध्याय तथा ज्ञान के प्रसार के लिये प्रवचन करने में प्रमाद न करो। (देव पितृकार्याभ्याम् न प्रमदितव्यम्) देवों और पितरों के प्रति किये

जाने वाले कर्तव्यों में प्रमाद न करो।
तौत्ति.उप. 1.11.1

मातृ देवो भव। पितृदेवो भव। आचार्यदेवो भव। अतिथिदेवो भव।

तैत्ति.उप. 1.11.2

(मातृदेवो भव) माता की देवता के तुल्य सेवा सुश्रूषा करो (पितृ देवो भव) पिता की देव तुल्य सेवा सुश्रूषा करो। (आचार्यदेवो भव) आचार्य की देव तुल्य सेवा सुश्रूषा करो (आतिथिदेवो भव) अतिथि का देव तुल्य सत्कार करो।

यहाँ माँ का नाम पिता से पहले आया है क्योंकि मनुस्मृति के अनुसार सन्तान पर माँ का अधिकार पिता से एक हज़ार गुना अधिक होता है।

यान्यनवद्यानि कर्माणि तानि सेवितव्यानि, नो इतराणि। यान्यस्माकं सुचरितानि तानि त्वयोपास्यानि नो इतराणि। ये के चास्मच्छ्रेयांसो ब्राह्मणास्तेषां त्वयाऽऽसनेन प्रश्वसितव्यम्॥

तैत्ति.उप. 1.11.3

(यानि अनवद्यानि कर्माणि) जो अनिन्दित कर्म है। (तानि सेवितव्यानि) उनका ही आचरण करो (नो इतराणि) अन्य निकृष्ट कर्मों का नहीं। (यानि अस्माकं सुचरितानि) जो हमारे

उत्तम आचरण हैं (तानि त्वया उपास्यानि) उन्हीं का तुम्हारे द्वारा अनुसरण किया जाना चहिये (नो इतराणि) हमारे अन्य कर्मों का नहीं। (ये के अस्मत् श्रेयांसः ब्राह्मणाः) जो कोई हमसे भी अधिक श्रेष्ठ ज्ञानी हों (तेषां त्वया आसनेन प्रश्वसितव्यम्) उसकी तुम्हारे द्वारा आसन आदि देकर सेवा की जानी चाहिये।

निष्पाप जीवन

अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाऽशुभम्।
नाभुक्तं क्षीयते कर्म जन्म कोटि शतैरपि॥

गरुड़, पुराण, 5.57

अपने द्वारा किये गये शुभ अथवा अशुभ कर्मों का फल अवश्य ही भोगना पड़ता है। सैकड़ों, करोड़ों जन्मों में भी फल का भोग किये बिना कर्मों का क्षय नहीं होता।

भगवान् हमारे समस्त कर्मों को जानने वाले हैं। भगवान् से कोई कार्य, विचार अथवा मन्त्रणा नहीं छिपाई जा सकती। इसका अत्यन्त सुन्दर वर्णन निम्नांकित मन्त्र में किया गया है।

यस्तिष्ठति चरति यश्च वञ्चति
यो निलायं चरति यः प्रतङ्कम्।
द्वौ संनिषद्य यन्मन्त्रयेते
राजा तद्वेद वरुणस्तृतीयः॥

अथर्व. 4/16/2

(यः तिष्ठति चरति) जो खड़ा होता है अथवा चलता है, (यः च वञ्चति) और जो ठगता है, (यः निलायं चरति यः प्रतंकम्) जो भीतर घुसकर चलता है अथवा बाहर निकल कर चलता है अर्थात् जो गुप्त व्यवहार करता है, या खुला व्यवहार करता है (द्वौ सं निषद्य यत् मन्त्रयेते) दो लोग पास – पास बैठकर जो मन्त्रणा करते हैं अथवा बातचीत करते हैं या विचार विमर्श करते हैं, (तत्) उस सबको (तृतीयः राजा वरुणः वेद) उन दोनों के अतिरिक्त सदैव सर्वत्र उपस्थित तीसरा राज राजेश्वर वरुण अर्थात् परमेश्वर जानता है।

अथर्व वेद के इससे अगले सूक्त में ही आलंकारिक ढंग से कहा गया है कि भगवान् के दूत इन पापियों को बाँधने के लिए हर स्थान पर हर समय पाश लिये हुये खड़े रहते हैं।

सहस्त्रधार एव ते समस्वरन्
दिवो नाके मधुजिह्वा असश्चतः।
तस्य स्पशो न निमिषन्ति भूर्णयः
पदे पदे पाशिनः सन्ति सेतवे॥

अथर्व.5/6/3

(दिवः सहस्त्रधारे नाके एव) द्युलोक के सहस्त्रों धाराओं से प्राप्त होने वाले सुख से पूर्ण स्थान में ही (ते असश्चतः मधुजिह्वाः समस्वरन्) वे निश्चल, स्थितिप्रज्ञ, शान्त-स्वभाव वाले मधुभाषी लोग सब मिलकर एक स्वर से कहते हैं कि (तस्यभूर्णयः स्पशः

न निमिष्यन्ति) दुष्टों को पाश में बाँधने वाले, पाश लिये हुये उसके दूत कभी पलक नहीं झपकाते अर्थात् पापियों को पकड़ने के लिये सदैव जागरुक रहकर प्राणियों द्वारा किये जा रहे पापों को खुली आँखों से देखते रहते हैं, (सेतवे पदे पदे पाशिवः सन्ति) और वे बाँधने के लिये पद-पद पर पाश लिये हुये खड़े रहते है, उनसे कोई पापी बच नहीं सकता।

बृहन्नेषामधिष्ठता अन्तिकादिव पश्यति।
य स्तायन्मन्यते चरन्त्सर्वं देवा इदं विदुः॥

अथर्व. 4/16/1

(देवाः इदम् सर्वं विदुः) देव अथवा विद्वान् लोग यह सब भली प्रकार जानते हैं कि (एषां बृहन् अधिष्ठाता) इनका अर्थात् इन लोगों का महान् अधिष्ठाता अर्थात् शासक एवं स्वामी (यः तायत्) जो सबका विस्तार करता है, सबकी वृद्धि करता है, सबका पालन-पोषण करता है, (चरन्) जो सर्वत्र विचरता है अर्थात् सर्वत्र उपस्थित रहता है तथा (मन्यते) जो सब कुछ जानता है, (अन्तिकात् इव पश्यति) वह समीप में स्थित हुये के समान सब कुछ देखता है।

मन्यन्ते वै पापकृतो न कश्चित्पश्यतीति नः।
तांस्तु देवाः प्रपश्यन्ति स्वस्यैवान्तरपूरुषः॥

मनु. 8/85

पापी लोग अपने मन में यह विचारते हैं कि हमारे पाप को कोई नहीं देखता परन्तु यह उन्का भ्रम है क्योंकि उनके पापों

को देवतागण तथा उनके ही हृदय में अन्तर्यामी रूप से स्थित परमात्मा स्वयं देखता है।

त्वं हि विश्वतोमुख विश्वतः परिभूरसि।
अप नः शोशुचदघम् ॥

ऋग्. 1.97.6 अथर्व. 4.33.6

(विश्वतो मुख) सब ओर मुख वाले, हे सर्व दृष्टा प्रभो ! (त्वं हि विश्वतः परिभूः असि) निश्चय ही आप सब को वश में रखने वाले हैं, सर्वोपरि हैं तथा सब ओर आपकी ही सत्ता है। (नः अघम् अप शोशुचत्) आप की कृपा से हमारे सब पाप नष्ट हो जायँ।

अनागसो अदितये देवस्य सवितुः सवे
विश्वा वामानि धीमहि ॥

ऋग्. 5.82.6

(देवस्य सवितः सवे) सविता देव की इस सृष्टि में हम (अनागसः) निरपराध एवं निष्पाप होकर (अदितये) अपनी माता एवं मातृभूमि के लिये (विश्वा वामानि धीमहि) समस्त प्रकार के श्रेष्ठ धनों को धारण करें।

अपि पन्थामगन्महि स्वस्तिगामनेहसम्।
येन विश्वाः परि द्विषो वृणक्ति विन्दते वसु ॥

ऋग्. 6.51.16

(स्वस्तिगां अनेहसं पन्थां अपि अगन्म) हम पापहित कल्याणकारी मार्ग से जायें, (येन विश्वाः द्विषः परिवृणक्ति)

जिससे समस्त शत्रु दूर होते हैं और (वसु विन्दते) धन प्राप्त होता है।

यदि जाग्रद् यदि स्वपन्नेन एनस्योऽकरम् ।
भूतं मा तस्माद् भव्यं च द्रपदादिव मुञ्चताम् ॥

अथर्व. 6.115.2

हे प्रभो! (यदि जाग्रत् यदि स्वपन्) यदि जागते हुये अथवा सोते हुये (एनस्यः एनः अकरम्) मैने पापी व्यक्ति द्वारा किये जाने योग्य पाप किया हो (भूतम् मा तस्मात् च भव्यम् मुञ्चताम्) तो उन भूत, वर्तमान अथवा भविष्य में होने वाले पाप से मुझे इस प्रकार छुड़ाइये (द्रुपदात् इव) जैसे खूँटे से पशु को छुड़ाया जाता है।

यद्ग्रामे यदरण्ये यत्साभायां यदिन्द्रिये ।
यच्छूद्रे यदर्ये यदेनश्चकृमा वयं यदेकस्याधि धर्मणि
तस्यावयजनमसि ॥

यजु. 20.17

(यत् ग्रामे, यत् अरण्ये, यत् सभायां, यत् इन्द्रिये) हे प्रभो ! हमने जो पाप ग्राम में, जो वन में, जो सभा में, जो इन्द्रियों के विभिन्न कार्यों में तथा (यत् शूद्रों, यत् अर्ये, यत एनः वयं चकृम्) जो शूद्रों के प्रति, जो वैश्यों के प्रति पाप किये हों और (यत् एकस्य अधिधर्मणि) जो पाप अन्य किसी एक भी मनुष्य के प्रति किये हों (तस्य अवयजनं असि) उन सब पापों से आप हमें मुक्त करने वाले हों, मुक्त करने की कृपा करें।

यद् विद्वांसो यदविद्वांस एनांसि चकृमा वयम् ।
यूयं नस्तस्मान्मुञ्चत विश्वेदेवाः सजोषसः ॥

अथर्व.6.151.1

(यद् विद्वांसः यद् अविद्वांसः वयम् एनांसि चकृम्) जो जानबूझकर या अनजाने में हमने पाप किया हो, (विश्वेदेवाः सजोषसः यूयम् नः तस्मात् मुञ्चतु) हे विश्वे देवाः ! आप हमारे ऊपर प्रेम एवं कृपा करते हुये हमें उस पाप से मुक्त कीजिये।

सप्त मर्यादायें

सप्त मर्यादाः कवयस्ततक्षुस्तासामिदेकामभ्यं हुरो गात् । आयोर्ह स्कम्भ उपमस्य नीडे पथां विसर्गे धरुणेषु तस्थौ ॥

अथर्व. 5.1.6

(कवयः सप्त मर्यादाः ततक्षुः)तत्वदर्शी ज्ञानियों ने सात मर्यादायें निश्चित की हैं, (तासां एकां इत् अभि) उनमें से यदि एक का भी उल्लंघन किया तो (अंहुरः गात्) मनुष्य पाप का भागी हो जाता है। पापी बन जाता है। जो सदाचारी श्रेष्ठ पुरुष इन मर्यादाओं का उल्लंघन नहीं करता अर्थात् जो ये सात दुष्कर्म नहीं करता, वह (आयोः स्कम्भः ह) आयु के, जीवन के आधार स्तम्भ के समान (उपमस्य नीडे) उपमा देने योग्य अथवा प्राप्त किये जाने योग्य परमात्मा के, (धरुणेषु तस्थौ) पुण्य कर्म करने वालों को धारण करने वाले, उस लोक को प्राप्त होता है,

(पथां वि सर्गे) जहाँ पहुँचकर सभी मार्ग समाप्त हो जाते हैं अर्थात् जो सभी मार्गों के पहुँचने का अन्तिम गन्तव्य स्थान है।

उपरोक्त सात मर्यादायें अर्थात् सात दुष्कर्म जिन्हें नहीं करना चाहिये, निम्नांकित हैं-

स्तेयम्, तल्पारोहणम्, ब्रह्महत्याम्, भ्रूणहत्याम्, सुरापानं, दुष्कृतस्य कर्मणः पुनः पुनः सेवाम्, पातकेऽनृतोद्यम्।

1 स्तेयम्- चोरी करना
2 तल्पारोहणम्- परस्त्री गमन करना
3 ब्रह्महत्या- वेदज्ञ ब्राह्मण की हत्या
4 भ्रूण हत्या- गर्भस्थ शिशु की हत्या
5 सुरापान- सुरा तथा अन्य मादक पदार्थों का सेवन
6 किसी बुरे कर्म को बार बार जानबूझ कर करना
7 किये गये पाप कर्म को असत्य बोल कर छिपाना

भगवान् हमारे पिता हैं, सखा हैं

प्र सो अग्ने तवोतिभिः सुवीराभिस्तरति वाज कर्मभिः। यस्य त्व ँ सख्यमाविथ॥

ऋग्. 8/19/20, सामवेद, क्रं.सं, 08 तथा 1822

(अग्ने) हे प्रकाश स्वरूप परब्रह्म ! (यस्य त्वं सख्यं आविथ)

जिसकी मित्रता आप स्वीकार कर लेते हैं अर्थात् जिसके आप मित्र हो जाते हैं, (सः तव सुवीराभिः ऊतिभिः वाजकर्मभिः) वह आपकी सुन्दर वीरतापूर्ण रक्षओं तथा आपके बलशाली कर्मों से (प्रतरति) सभी दुःखों तथा संकटों से पार हो जाता है।

त्वं हि नः पिता वसो त्वं माता शतक्रतो बभूविथ।
अधा ते सुम्नमीमहे ॥ अथर्व.20.108.2

ऋग्8.98.11(पाठभेद), साम.उत्त.8.6(2) क्रं.सं.1170,(पाठभेद)

(शतक्रतो) सैकड़ों पराक्रम तथा यज्ञ अर्थात् श्रेष्ठ कर्म करने वाले हे इन्द्र! (वसो) हे जगन्निवास! (त्वं हि नः पिता) निश्चय ही आप हमारे पिता तथा (त्वं माता बभूविथ) आप ही हमारी माता हो, (अधा ते सुम्नम् ईमहे) अतः हम आप से सुख की प्रार्थना करते हैं।

त्वं जामिर्जनानामग्ने मित्रो असि प्रियः।
सखा सखिभ्य ईड्यः ॥

साम. उत्त. 15/1/2, क्रं. सं. 1536, ऋग्. 1/75/4

(अग्ने) हे प्रकाशस्वरूप परब्रह्म ! (त्वं जनानम् जामिः) आप सब मनुष्यों के बन्धु तथा (प्रियः मित्रः असि) प्रिय मित्र हैं और (सखिभ्यः ईड्यः सखा) मित्रों के द्वारा स्तुति किये जाने योग्य सखा हैं।

तथा तदस्तु सोमपाः सखे वज्रिन् तथा कृणु।
यथा त उश्मसीष्टये ॥ ऋग्. 1/30/12

(सोमपाः सखे वज्रिन्) हे सोम पान करने वाले वज्रधारी मित्र ! (तथा तदस्तु) वैसा ही हो, वही हो (तथा कृणु) तथा आप वैसा ही करें, (तथा त) जैसा हम आपसे (इष्टये उश्मसि) अपने इष्ट की, अपनी अभिलाषा की पूर्ति के लिये इच्छा करें, प्रार्थना करें।

विष्णोः कर्माणि पश्यत यतो व्रतानि पस्पशे।

इन्द्रस्य युज्यः सखा ॥

अथर्व. 7/27/6 ऋग्.1/22.19

साम.18/2/3, क्रं.सं. 1371, यजु.6/4

(विष्णोः कर्माणि पश्यत) विष्णु के, भगवान् के कार्यों को देखो, (यतः व्रतानि पस्पशे) जिनसे सृष्टि के समस्त व्यापार, समस्त कार्य तथा समस्त शाश्वत नियम चलते हैं। (इन्द्रस्य युज्यः सखा) वह परमात्मा, जीवात्मा का योग्य एवं अनुकूल मित्र है।

आहि ष्मा सूनवे पितापिर्यजत्यापये।

सखा सख्ये वरेण्यः ॥

ऋग्.1/26/3

(वरेण्यः पिता) श्रेष्ठ पिता जिस प्रकार अपने पुत्र की, (आपिः आपये) बन्धु अपने बन्धु की तथा (सखा सख्ये) मित्र अपने मित्र की (यजति स्म) सहायता करता है,) उसी प्रकार हे प्रभो ! आप हमारी सहायता कीजिये।

इस प्रकार स्पष्ट है कि परमात्मा हमारा पिता, बन्धु तथा मित्र है। परमात्मा और आत्मा का सम्बन्ध स्वामी और दास के समान नहीं है।

भक्ति एवं उपासना

पुरुषः स परः पार्थ भक्त्या लभ्यस्त्वनन्यया।
यस्यान्तः स्थानि भूतानि येन सर्वमिदं ततम्॥

गीता, 8/22

हे पार्थ ! सभी प्राणी जिस परमात्मा के अन्तर्गत हैं, आधारित हैं, जिस सच्चिदानन्दघन परमात्मा से यह समस्त जगत् परिपूर्ण है, वह अनन्य भक्ति से ही प्राप्त होने योग्य है।

पुरिशेते इति पुरुषः अथवा पुरिवसति इति पुरुषः।

ब्रह्माण्ड रूपी पुरी में वसने के कारण ब्रह्म को पुरुष कहा जाता है। इसी प्रकार शरीर रूपी पुरी में वसने के कारण जीवात्मा को भी पुरुष कहा जाता है। अन्तर केवल इतना है कि ब्रह्म परम पुरुष, सर्वज्ञ तथा सर्वव्यापी एवं सर्वान्तर्यामी है और जीवात्मा केवल शरीर में स्थित रहने वाला अल्पज्ञ है और ब्रह्म का ही एक अंश है।

पूर्ण श्रद्धा, भक्ति एवं विश्वास से ही भगवान् की कृपा प्राप्त की जा सकती है जिससे मनुष्य के सभी दुःख और संकट क्षंण भर में ही दूर हो जाते हैं।

यथा वातश्च्यावयति भूम्या रेणुमन्तरिक्षाच्चाभ्रम् ।
एवा मत्सर्वं दुर्भूतं ब्रह्मनुत्तमपायति ॥अथर्व. 10/1/13

(यथा वातः भूम्याः रेणुम् च्यावयति) जिस प्रकार वायु भूमि से धूल को उड़ा ले जाती है, (च अन्तरिक्षात् अभ्रम्) और अन्तरिक्ष से मेघ को उड़ा ले जाती है, उसी प्रकार मेरे समस्त दुःख, कष्ट तथा संकट ब्रह्म द्वारा हटादिये जाते हैं, दूर करदिये जाते हैं।

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति ।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः ॥

गीता. 9/26

जो मेरे लिये भक्ति पूर्वक पत्र, पुष्प, फल तथा जल आदि अर्पित करता है, उस शुद्ध आन्तःकरण वाले पुरुष द्वारा समर्पित वस्तु को मैं स्वीकार करता हूँ।

श्रवणान्मननाच्चैव गीतिस्तुत्यर्चनादिभिः ।
आराध्यं सदा ब्रह्म पुरुषेण हितैषिणा ॥

महाभारत, अनुशासन पर्व अध्याय, 124

हितैषिणा पुरुषेण) अपना हित चाहने वाले पुरुष द्वारा (श्रवणात् मननात् च एव गीतिस्तुति अर्चनादिभः ब्रह्म सदा आराध्यम्) श्रवण, मनन एवं गीति, स्तुति तथा अर्चना आदि के द्वारा सदैव ब्रह्म की आराधना की जानी चाहिये।

सदा मुक्तोऽपि बद्धोऽस्मि भक्तेषु स्नेहरज्जुभिः ।
अजितोऽपि जितोऽहं तैरवशोऽपि वशीकृतः ॥

आदि पुराण

सदा मुक्त रहने वाला भी मैं भक्तों की प्रेमरूपी डोरी से बँधा हुआ हूँ। अजित हुआ भी मैं उनके द्वारा जीता हुआ हूँ और किसी के वश न आने वाला होता हुआ भी उनके वश में हूँ।

अहं भक्त पराधीनो ह्यस्वतन्त्र इव द्विज।
साधुभिर्ग्रस्तहृदयो भक्तैर्भक्तजनप्रियः॥

श्रीमद्भागवत. 9/4/63

(सुदर्शन चक्र से व्याकुल हो शरणागत दुर्वासा ऋषि से विष्णु भगवान् कहते हैं -) 'हे द्विज ! मैं पराधीन के समान भक्तों के वश में हूँ। भक्तजनों को प्रेम करने वाला मेरा हृदय मेरे श्रेष्ठ, सच्चरित्र प्रिय भक्तों ने बाँध रखा है'।

नाऽहं वसामि वैकुण्ठे योगिनां हृदयेऽपि वा।
मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद॥

आदि पुराण

हे नारद ! न तो मैं वैकुण्ठ में निवास करता हूँ और न ही योगियों के हृदय में। मेरे भक्त जहाँ मेरा गान करते हैं मैं वहीं निवास करता हूँ।

वास्तव में मन्दिरों का प्रयोग भगवान् की सामूहिक स्तुति एवं प्रार्थना के गान के लिये ही किया जाना चाहिये। वेद में कहा है –

सहस्र साकमर्चत परि ष्टोभत विंशति शतैनमन्वनोनवुरिन्द्राय ब्रह्मोद्यतमर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥ ऋग्. 1/80/9

(सहस्र साकं अर्चत) सहस्रों की संख्या में एकत्र होकर एक साथ प्रभु की स्तुति करो, (विंशतिः परिस्तोभत) बीसियों लोग मिलकर प्रभु की स्तुति का गान करो, (शता एनं अनु अनोनवुः) सैकड़ों लोग मिलकर उस प्रभु की बारम्बार प्रार्थना करो। (इन्द्राय ब्रह्म उत् यतं) इन्द्र के लिये यह स्तोत्र है। (स्व राज्यं अनु अर्चन) अपने देश के स्वराज्य का सम्मान करो।

संगठित होकर भगवान् की प्रार्थना करने का यह महत्वपूर्ण आदेश है। मन्दिरों तथा अन्य स्थानों में इस प्रकार एक साथ प्रार्थना करने से समाज का संगठन होगा और उससे अपने देश के स्वराज्य तथा अपनी संस्कृति के प्रति सम्मान बढ़ेगा।

इन्द्राय साम गायत विप्राय बृहते बृहत्।
ब्रह्मकृते विपश्चिते पनस्यवे ॥

साम.पूर्वा. क्रं.सं.388 साम. उत्त.6/72/11क्रं.सं.1025
ऋग्.8/98/1 (पाठभेद) अथर्व. 20/62/5

हे उद्गाताओ !(विप्राय) विविध कामनाओं को पूर्ण करने वाले, मेधावी (ब्रह्म कृते) वेदों को उत्पन्न करने वाले, (विपश्चिते) सर्वद्दष्टा, ज्ञानी तथा ज्ञान देने वाले (पनस्यवे)प्रशंसा एवं स्तुति के योग्य (बृहते इन्द्राय) महान इन्द्र

के लिये, परम ऐश्वर्यवान् परमेश्वर के लिये (बृहत् साम गायत) बृहत्साम का गान करो।

दोषो गाय बृहद् गाय द्युमद्धेहि।
आथर्वण स्तुहि देवं सवितारम्॥

अथर्व.6/1/1

(आथर्वण) हे स्थित मन तथा बुद्धि वाले भक्त ! (दोषो गाय) रात्रि के समय परमात्मा का गान करो, (बृहत् गाय) बहुत गान करो,(सवितारं देवं स्तुहि) सविता देव की स्तुति करो (द्युमत् धेहि) तथा भगवान् के ज्योतिर्मय स्वरूप को अपने हृदय में धारण करो।

प्रार्थना का कोई समय निर्धारित नहीं है जब भी इच्छा हो, जब भी समय मिले शान्ति से प्रार्थना करनी चाहिये।

नमः सायं नमः प्रातर्नमो रात्र्या नमो दिवा।
भवाय च शर्वाय चोभाभ्यामकरं नमः॥

अथर्व.11/2/16

हे परमेश्वर ! आपको सायंकाल में नमस्कार है, प्रातः काल में नमस्कार है, रात्रि में नमस्कार है तथा दिन में नमस्कार है। आपके सर्वोत्पादक एवं सर्व संहारक दोनों स्वरूपों को सदैव नमस्कार है।

युञ्जन्नेवं सदात्मानं योगी विगतकल्मषः।
सुखेन ब्रह्मसंस्पर्शमत्यन्तं सुखमश्नुते॥

गीता,6/28

(एवं सदा आत्मानं युञ्जन्) इस प्रकार अपने आत्मा को परमात्मा के साथ निरन्तर संयुक्त करता हुआ (विगत कल्मषः योगी) पापरहित योगी (सुखेन) बिना किसी कठिनायी के अनायास ही (ब्रह्म संस्पर्शम्) परब्रह्म के संस्पर्श का, ब्रह्म की प्राप्ति का (अत्यन्तं सुखम् अश्नुते) अत्यन्त, असीम परमानन्द प्राप्त करता है।

युञ्जते मन उत युञ्जते धियो विप्रा विप्रस्य बृहतो विपश्चितः। वि होत्रा दधे वयुनाविदेक इन्मही देवस्य सवितुः परिष्टुतिः॥

यजु.5/14,11/4,37/2, ऋग्. 5/81/1

श्वेताश्वतर उपनिषद् 2/4

(विप्राः) मेधावी विद्वान् तथा ज्ञानीजन (बृहतः विपश्चितः विप्रस्य) महान्, अनन्त ज्ञान युक्त, सर्वज्ञ परमात्मा में अपने (मनः युञ्जते उत धियः युञ्जते) मन को संयुक्त करते हैं तथा अपनी बुद्धि को संयुक्त करते हैं अर्थात् बाह्य विषयों से हटा कर अपने मन एवं बुद्धि को केवल एक मात्र परमात्मा में ही एकाग्ररूप से केन्द्रित कर देते हैं, उसी की भावना, उसी का ध्यान तथा उसी का अनन्य भाव से चिन्तन करते हैं। (वयुनावित् एकः इत् होत्राः विदधे) समस्त कर्मों, मनोभावों एवं चेष्टाओं को जानने वाले तथा अकेले ही समस्त यज्ञों को,

समस्त जगत को धारण करने वाले, (सवितुः देवस्य परिष्टुतिः मही) सविता देव की स्तुति महान् एवं श्रेष्ठ है।

तात्पर्य यह है कि केवल परमात्मा की ही स्तुति करनी चाहिये, वही कल्याण कारी हैं, अन्य किसी देवता अथवा पुरुष चाहे वह कितना ही महान् क्यों न हो, की स्तुति अथवा उपासना नहीं करनी चाहिये

युज वां ब्रह्म पूर्व्यं नमोभिर्वि श्लोक एतु पथ्येव सूरेः। शृण्वन्तु विश्वे अमृतस्य पुत्रा आ ये धामानि दिव्यानि तस्थुः ॥

यजु. 11/5 ऋग्.10/13/1

श्वेताश्वतर उप. 2/5

(ब्रह्म पूर्व्यं नमोभिः वां युजे) हे बुद्धि तथा मन ! मैं नमस्कार वचनों से, भक्ति पूर्वक की गयी स्तुतियों से तुम दोनों को उस (पूर्व्यं पूर्वं चिरन्तनम्) अनादि, अनन्त,पुरातन एवं सनातन ब्रह्म में संयुक्त करता हूँ। (सूरेः पथ्या इव श्लोकः वि एतु) परम विद्वानों के मार्ग के तुल्य, उनके श्रेष्ठ जीवन पथ का अनुसरण करते हुये मुझे सत्य कीर्ति प्राप्त हो अथवा (श्लोकः सूरेः पथ्या इव वि एतु) मेरा यह श्लोक, मेरे द्वारा वेद मन्त्रों से की गयी सुखदायी स्तुति देवों की कीर्ति की भाँति सब ओर फैल जाये। मेरी इस प्रार्थना को (दिव्यानि धामानि आ तस्थुः

विश्वे अमृतस्य पुत्राः शृण्वन्तु) दिव्य धामों में स्थित समस्त अमृत पुत्र सुनें।

परमात्मा का अंश होने के कारण आत्मा यथार्थ में अमृत पुत्र है।

वास्तव में हम सब अमृत पुत्र हैं किन्तु उस अमृतत्व की प्राप्ति के लिये हमें अपने अमृत स्वरूप परम पिता के साथ अपने मन तथा अपनी बुद्धि को अनन्य भक्ति के साथ संयुक्त करना चाहिये और उन श्रेष्ठ पुरुषों के मार्ग का अनुसरण करना चाहिये जो देवत्व प्राप्त करके परमात्मा के दिव्य धाम में स्थित हैं।

शतपथ ब्राह्मण 6/3/1/17 में श्लोक का अर्थ कीर्ति किया गया है और कहा गया है कि प्रजापति अमृत है, सब देव उसके पुत्र हैं तथा यह लोक ही दिव्य धाम है और इसमें ये देव उपस्थित हैं।

तमु ष्टुहि यो अन्तः सिन्धौ सूनुः।
सत्यस्य युवानमद्रोघवाचं सुशेवम्॥

अथर्व. 6/1/2

(तं उ स्तहि) उसी की स्तुति करो (यः सिन्धौ अन्तः) जो हमारे हृदय तथा इस संसार रूपी समुद्र के अन्दर (सत्यस्य सूनुः) सत्य की प्रेरणा देने वाला, (युवानम्) सदा युवा तथा (अ द्रोघ

वाचं) दोषरहित वेद वाणी का स्वामी है और (सुशेवम्) उत्तम सुखदायक हैं।

शेवम् सुख नाम। निघण्टु.3/6

सूनुः- षु प्रेरणे। (तुदादि)

अग्निहोत्र

अग्नये हूयते यस्मिन् तद् अग्निहोत्रम्।

जिस कर्म में अग्नि के लिये आहुति दी जाती है उसे अग्निहोत्र कहते हैं।

नित्यप्रति किये जाने वाले आवश्यक श्रौत कर्मों में सबसे सूक्ष्म कर्म अग्निहोत्र है जिसे यावज्जीवन करने का प्रविधान है।

यावज्जीवनमग्निहोत्रं जुहोति। शतपथ ब्राह्मण,12/4/1/1

पुरुष को अपने जीवन काल में स्वस्थ रहते हुये नित्यप्रति अग्निहोत्र करना चहिये।

उदितेऽनुदिते चैव समयाध्युषिते तथा।
सर्वथा वर्तते यज्ञं इतीयं वैदिकी श्रुतिः॥

मनु.2/15

(उदिते) सूर्योदय के पश्चात् (अनुदिते) सूर्योदय के पूर्व किन्तु नक्षत्रों के रहते हुये,(समयाध्युषिते) नक्षत्रों के अस्त हो जाने के पश्चात् तथा सूर्योदय के पूर्व, इन तीन कालों में प्रातःकालीन अग्नि होत्र तथा सूर्यास्त के पश्चात् सायंकालीन अग्निहोत्र किया जाना वेदानुसार है।

किन्तु ऐतरेय ब्राह्मण में सूर्योदय के पश्चात् ही यज्ञ करने को उचित बताया गया है।

सत्यं हास्य वदतः सत्ये हुतं भवति य एवं विद्वानुदिते जुहोति। तस्माद् उदिते होतव्यम्।

ऐतरेय. पंचम पंचिका 5.6

जो सूर्योदय के पश्चात् अग्नि होत्र करता है, वह सत्य बोलता है। इसलिये सूर्योदय के पश्चात् ही अग्नि होत्र करना चाहिये।

नौर्हवा एषा स्वर्ग्या यदग्निहोत्रम्।

शतपथ. 1/3/3/15

यह जो अग्निहोत्र है वह, संसार सागर से पार करवा कर, स्वर्ग को ले जाने वाली नाव है।

अग्निहोत्रं जुहुयात् स्वर्गकामः।

मै.उप. 6/26

स्वर्ग की कामना वाला अग्निहोत्र करे।

अग्निहोत्र तथा यज्ञ के मन्त्रों के लिये कृपया मेरी पुस्तक **यज्ञानुराग** देखने का कष्ट करें।

यज्ञ

शतपथ ब्राह्मण, 1/7/1/5 में कहा है-

यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म। यज्ञ ही श्रेष्ठतम् कर्म है।

यज्ञ का अर्थ है- देवपूजन ,सङ्गतिकरण तथा दान।

देवपूजन- भगवान् की अनन्य भक्ति पूर्वक उपासना तथा विद्वानों को सम्मान और उनके द्वारा बताये गये श्रेष्ठ मार्ग पर चलना।

सङ्तिकरण- श्रेष्ठ लोगों की सङ्गति जिससे मनुष्य का जीवन पवित्र, सुखी एवं सम्पन्न होता है।

दान- पात्र व्यक्तियों को दान देना, उनकी सब प्रकार से सहायता करना। भूखे को भोजन देना, पीड़ित प्राणी को अभय देना तथा विद्यार्थियों को विद्या, विशेष रूप से ब्रह्म विद्या की शिक्षा देना सर्वश्रेष्ठ दान माना गया है।

यज्ञ को इतना पवित्र माना गया है कि शतपथ ब्राह्मण के पहले ही वाक्य में कहा गया है-

अमेध्यो वै पुरुषो यदनृतं वदति अर्थात् असत्य बोलने वाला पुरुष अपवित्र होता है और यज्ञ करने के योग्य नहीं होता।

वैदिक धर्म में यज्ञ का अत्यन्त महत्व है।

यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् । ते ह नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः ॥

ऋग्.10/90/16,1/164/50,
अथर्व.7/5/1 0 यजु. 31/16

देवों ने, विद्वानों ने यज्ञ के द्वारा पूजनीय परमात्मा का यजन किया । विविध प्रकार के यज्ञ ही प्रमुख अर्थात् सर्वश्रेठ धार्मिक कार्य थे जिनके द्वारा यज्ञ करने वाले सदाचारी विद्वान, महिमा से युक्त होकर पूर्व में हुये ऋषियों के समान स्वर्ग अर्थात् आनन्द से परिपूर्ण परमात्मा के परम धाम को प्राप्त होते हैं ।

दुर्भाग्य से शुक्ल यजुर्वेद में धूर्तों द्वारा 75 फर्ज़ी मन्त्र मिला दिये गये हैं, जिनमें अश्वमेध यज्ञ से सम्बन्धित 11 अत्यन्त अश्लील मन्त्र हैं, 2 मूर्खता पूर्ण मन्त्र हैं तथा 62 ऐसे मन्त्र हैं जिनमें गाय, बैल, घोड़ा, भेड़, बकरे को काट कर उनके वपा अर्थात् चर्बी, मेद, मांस तथा मदिरा से आहुति देने की बात कही गयी है ।

उक्त वेद विरुद्ध मन्त्रों का विवरण तथा उन्हें निकाले जाने के लिये मेरी पुस्तिका **'शुक्ल यजुर्वेद में धूर्तों द्वारा मिलाये गये 75 निकृष्ट मन्त्रों को हटाये जाने हेतु सभी के सहयोग के लिये विनम्र प्रार्थना '** का अवलोकन करें ।

सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः ।अनेन प्रसविष्यध्वमेष वोऽस्त्विष्टकामधुक् ॥

गीता. 3/10

प्रजापति ने सृष्टि की आदि में यज्ञ के सहित प्रजाओं को उत्पन्न करके कहा कि तुम लोग इस यज्ञ के द्वारा वृद्धि को प्राप्त हो। यह यज्ञ तुम लोगों को इच्छित भोग प्रदान करने वाला तथा तुम्हारी कामनाओं की पूर्ति करने वाला है।

अन्नाद्भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्नसम्भवः ।
यज्ञाद्भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्मसमुद्भवः ॥

गीता, 3/14

समस्त प्राणी अन्न से उत्पन्न होते हैं, अन्न की उत्पत्ति वृष्टि से होती है, पृष्टि यज्ञ से होती है और यज्ञ वेद विहित कर्मों से उत्पन्न होने वाला है।

कर्म ब्रह्मोद्भवं विद्धि ब्रह्माक्षरसमुद्भवं ।
तस्मात्सर्वगतं ब्रह्म नित्यं यज्ञे प्रतिष्ठितम् ॥

गीता, 3/15

यज्ञ कर्म को वेद से उत्पन्न हुआ और वेद को अविनाशी परमात्मा से उत्पन्न हुआ जानो। इसीलिये सर्वव्यापी परमात्मा सदा यज्ञ में प्रतिष्ठित रहता है।

यज्ञों में ओम् तथा गायत्री के जप को सर्वश्रेष्ठ यज्ञ माना गया है।

महर्षीणां भृगुरहं गिरामस्म्येकमक्षरम् ।
यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि स्थावराणां हिमालयः ॥

गीता. 10/25

महर्षियों में मैं भृगु हूँ, वाणियों में एकाक्षर ओंकार हूँ, यज्ञों में जप यज्ञ हूँ तथा पर्वतों में हिमालय हूँ, ।

विधिहीनमसृष्टान्नं मन्त्रहीनमदक्षिणम् ।
श्रद्धाविरहितं यज्ञं तामसं परिचक्षते ॥

गीता. 17/13

शास्त्रविधि से हीन, अन्नदान से रहित, बिना दक्षिणा दिये हुये, वेद मन्त्रों से हीन श्रद्धा रहित यज्ञ को तामस यज्ञ कहते हैं।

महायज्ञ

स्वाध्यायेन व्रतैर्होमैस्त्रैविद्येनेज्ययासुतैः ।
महा यज्ञैश्च यज्ञैश्च ब्राह्मीयं क्रियते तनुः ॥

मनु. 2/28

स्वाध्याय, व्रत अर्थात् ब्रह्मचर्य आदि यम नियमों का पालन, अग्निहोत्र, वेदों का अध्ययन, दर्श पौर्णमास आदि यज्ञ, उत्तम सन्तान, महायज्ञ अर्थात् ब्रह्म यज्ञ, वेद यज्ञ, पितृ यज्ञ, बलि वैश्वदेव यज्ञ तथा नृयज्ञ अर्थात् अतिथि सत्कार आदि पुरुष के शरीर को ब्राहीयं अर्थात् ब्रह्म को प्राप्त करने योग्य बनाते हैं।

अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः पितृयज्ञस्तु तर्पणम् ।
होमो दैवो बलिर्भौतो नृयज्ञोऽतिथिपूजनम् ॥

मनु. 3/70

वेद शास्त्रों का अध्ययन अध्यापन ब्रह्मयज्ञ है, माता पिता तथा अन्य वृद्ध जनों को भोजन तथा सेवा सुश्रूषा आदि से सन्तुष्ट रखना पितृ यज्ञ है, अग्निहोत्र तथा अग्नि में देवताओं के लिये आहुति देना देव यज्ञ है, बलि वैश्व देव अर्थात् निर्धनों, अपाहिजों, कुष्ठ आदि के रोगियों, गौवों, कुत्तों, पक्षियों एवं चीटियों आदि को भोजन देना भूतयज्ञ है तथा अतिथि सत्कार नृयज्ञ है।

दैवी सम्पदा- श्रेष्ठ कर्म करने वालों के लक्षण

अभयं सत्त्वसंशुद्धिर्ज्ञानयोगव्यवस्थितिः।
दानं दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आर्जवम्॥

गीता, 16/1

दैवी सम्पदा का वर्णन करते हुये भगवान् कृष्ण कहते हैं कि हे अर्जुन! भय का सर्वथा अभाव, अन्तःकरण की पूर्ण निर्मलता, तत्व ज्ञान के लिये ध्यान योग में निरन्तर दृढ़ स्थिति, सात्विक दान, मन का संयम तथा इन्द्रियों का दमन, यज्ञ, वेद शास्त्रों का पठन पाठन तथा तप अर्थात् श्रेष्ठ उद्देश्य की पूर्ति के लिये कष्ट सहना और स्वभाव की सरलता।

अहिंसा सत्यमक्रोधस्त्यागः शान्तिरपैशुनम्।
दया भूतेष्वलोलुप्त्वं मार्दवं ह्रीरचापलम्॥

गीता, 16/2

मन, वाणी तथा शरीर से किसी को कष्ट न देना, प्राणिमात्र की हिंसा न करना, सत्य एवं प्रिय भाषण, अनावश्यक क्रोध न

करना, त्याग, मन की शान्ति, प्राणियों के प्रति दया, परनिन्दा तथा झूठी चुगली न करना, सब प्रकार के लोभ एवं लालसा का त्याग, चित्त की कोमलता, लोक तथा शास्त्र के विरुद्ध आचरण में लज्जा और व्यर्थ की चेष्टाओं एवं चपलता का अभाव।

तेजः क्षमा धृतिः शौचमद्रोहो नातिमानिता।
भवन्ति सम्पदं दैवीमभिजातस्य भारत॥

गीता,16/3

तेज, क्षमा, धैर्य, शरीर एवं मन तथा बुद्धि की पवित्रता, धर्म, समाज एवं देश के प्रति द्रोह न करना तथा अहंकार का अभाव, ये सब दैवी सम्पदा से सम्पन्न पुरुष के लक्षण हैं।

आसुरी संपदा- बुरे कर्म करने वालों के लक्षण

दम्भो दर्पोऽभिमानश्च क्रोधः पारुष्यमेव च।
अज्ञानं चाभिजातस्य पार्थ सम्पदमासुरीम्॥

गीता, 16/4

हे पार्थ! दम्भ, घमण्ड और अभिमान तथा क्रोध, निष्ठुरता, क्रूरता एवं अज्ञान, ये सब आसुरी सम्पदा से युक्त पुरुष के लक्षण हैं।

असत्यमप्रतिष्ठं ते जगदाहुरनीश्वरम्।
अपरस्परसम्भूतं किमन्यत्कामहैतुकम्॥

गीता, 16/8

यह संसार ईश्वर के बिना ही अपने आप स्त्री पुरुष के संयोग से उत्पन्न हुआ है। यह ईश्वर पर आधारित नहीं है, यह असत्य है तथा काम के भोगों के अतिरिक्त इसका और क्या प्रयोजन है अर्थात् यह संसार केवल काम वासना की तृप्ति तथा अन्य प्रकार के भोगों के लिये ही है।

एतां दृष्टिमवष्टभ्य नष्टात्मानोऽल्पबुद्धयः।
प्रभवन्त्युग्रकर्माणः क्षयाय जगतोऽहिताः॥

गीता, 16/9

ऐसी विपरीत दृष्टि का आधार लेकर आत्मा को नष्ट करने वाले, क्रूर कर्म करने वाले तथा सब का अहित करने वाले ये अल्प बुद्धि वाले लोग जगत् के नाश के लिये ही उत्पन्न होते हैं।

वेद में जिन्हें आत्महनः कहा गया है, उन्हीं को गीता में नष्टात्मानः कहा गया है।

काममाश्रित्य दुष्पूरं दम्भमानमदान्विताः।
मोहाद्गृहीत्वासद्ग्राहान्प्रवर्तन्तेऽशुचिव्रताः॥

गीता,16/10

दम्भ, अहंकार और मद से युक्त हुये लोग कभी न पूर्ण होने वाली कामनाओं का आश्रय लेकर मोहवश मिथ्या सिद्धान्तों को ग्रहण करके तथा भ्रष्ट आचरणों से युक्त होकर संसार में व्यवहार करते हैं।

आशापाशशतैर्बद्धाः कामक्रोधपरायणाः।
ईहन्ते कामभोगार्थमन्यायेनार्थसञ्चयान्॥

गीता,16/12

सैकड़ों प्रकार की आशाओं के पाश से बँधे हुये, काम और क्रोध से ग्रस्त मनुष्य काम वासनाओं के भोग के लिये अन्याय पूर्ण ढंग से धन का सञ्चय करने की चेष्टा करते हैं।

अनेकचित्तविभ्रान्ता मोहजालसमावृताः।
प्रसक्ताः कामभोगेषु पतन्ति नरकेऽशुचौ॥

गीता, 16/16

अनेक प्रकार से भ्रमित चित्त वाले, मोह रूप जाल में फंसे हुये तथा विषय भोगों में अत्यन्त आसक्त हुये, ऐसे लोग अत्यन्त अपवित्र नरक में गिरते हैं।

मानव शरीर की पवित्रता एवं श्रेष्ठता

मूर्ख लोग समझते हैं कि मल, मूत्र, रक्त,माँस आदि से भरा हुआ यह शरीर अपवित्र है और इसका कोई महत्व नहीं है किन्तु वेद के अनुसार यह शरीर ऋषियों और देवताओं का पवित्र मन्दिर है जिसमें परमात्मा का अंश जीवात्मा, प्राण तथा अपनी अनेक शक्तियों के साथ निवास करता है। इतना ही नहीं हमारा हृदय स्वयं ब्रह्म का ही निवास स्थान है।

प्राणापानौ चक्षुः श्रोत्रमक्षितिश्च क्षितिश्चया।
व्यानोदानौ वाङ् मनस्ते वा आकूतिमावहन्॥

अथर्व. 11/8/4

(प्राण, अपान, चक्षुः, श्रोत्रं) प्राण, अपान, चक्षु, श्रोत्र, (अक्षितिः च क्षितिः च) न क्षीण होने वाली ज्ञान शक्ति तथा क्षीण होने वाली कर्म शक्ति, (व्यान उदानौ वाङ् मनः) व्यान, उदान, वाणी तथा मन निश्चय ही (ते वै आकूतिं आवहन्) ये दश देव ही शरीर में संकल्प शक्ति को धारण करते हैं।

संसिचो नाम ते देवा ये सम्भारान्त्समभरन्।
सर्वं संसिच्य मर्त्यं देवाः पुरुषमाविशन्॥

अथर्व. 11/813

(ते देवाः संसिचः नाम) वे देव संसिच अर्थात् सींचने वाले इस नाम के हैं (ये संभारान् समभरन्) जिन्होंने शरीर में समस्त सामग्री अर्थात् सभी अङ्ग प्रत्यङ्गों रोम, त्वचा, मांस, मज्जा, केश, अस्थियों, स्नायुओं आदि को भरा है। (सर्वं मर्त्यं संसिच्य) मरणधर्मा शरीर को पूर्णतया सींचकर, (देवाः पुरुषं आविशन्) वे देव शरीर में ही प्रविष्ट हो गये।

यदा त्वष्टा व्यतृणत् पिता त्वष्टुर्य उत्तरः।
गृहं कृत्वा मर्त्यं देवाः पुरुषमाविशन्॥

अथर्व. 11/818

(यः त्वष्टुः पिता उत्तरः त्वष्टा) त्वष्टा का पिता जो उच्चतर श्रेष्ठ त्वष्टा अर्थात् परमात्मा है, (यदा व्यतृणत्) उसने जब शरीर में छिद्र कर दिये तब (मर्त्यं गृहं देवाः पुरुषं आविशन्) उन

छिद्रों से परणधर्मा शरीर को गृह बनाकर देवों ने पुरुष शरीर में प्रवेश किया।

अग्निर्वाग्भूत्वा मुखं प्राविशद्वायुः प्राणो भूत्वा नासिके प्राविशदादित्यश्चक्षुर्भूत्वाक्षिणी प्राविशद्दिशः श्रोत्रं भूत्वा कर्णौ प्राविशन्नोषधिवनस्पतयो लोमानि भूत्वा त्वचं प्राविशंश्चन्द्रमा मनो भूत्वा हृदयं प्राविशन्मृत्युरपानो भूत्वा नाभिं प्राविशदापो रेतो भूत्वा शिश्नं प्राविशन्॥ ऐतरेयोपनिषद्. 1/2/4

अग्नि वाक् इन्द्रिय बनकर मुख में प्रविष्ट हो गया, वायु प्राण बनकर नासिका के छिद्रों में प्रविष्ट हो गया, सूर्य नेत्र इन्द्रिय बनकर आँखों के गोलकों में प्रविष्ट हो गया, दिशाओं के अभिमानी देवता श्रोत्र इन्द्रिय बनकर कानों में प्रविष्ट हो गये, ओषधि और वनस्पतियों के अभिमानी देवता रोयें बनकर त्वचा में प्रविष्ट हो गये, चन्द्रमा मन बनकर हृदय में प्रविष्ट हो गया, मृत्यु देवता अपान वायु बनकर नाभि में प्रविष्ट हो गया, जल का अभिमानी देवता वीर्य बनकर लिङ्ग में प्रविष्ट हो गया।

तद् वा अथर्वणः शिरो देवकोशः समुब्जितः।
तत् प्राणो अभि रक्षति शिरो अन्नमथो मनः॥

अथर्व. 10/2/27

(तद् वा अथर्वणः शिरः) स्थिर बुद्धि वाले पुरुष का वह शिर (समुब्जितः देवः कोशः) देवों का सुरक्षित कोश है, सुरक्षित स्थान है। (तत् शिरः प्राणः अन्नं अथो मनः अभि रक्षति) उस शिर की रक्षा प्राण, अन्न तथा मन के द्वारा की जाती है।

प्राणायम, सात्विक पौष्टिक अन्न तथा वशमें किये गये शिव संकल्प वाले मन के द्वारा देवताओं के कोश रूपी इस शिर की रक्षा होती है।

अष्टाचक्रा नवद्वारा देवानां पूरयोध्या।
तस्यां हिरण्ययः कोशः स्वर्गो ज्योतिषा वृतः॥

अथर्व.10/2/31

(अष्टाचक्रा) यह पुरुष शरीर आठ चक्र तथा (नव द्वारा) नौ द्वारों वाली (देवानां पूः अयोध्या) देवों की अयोध्या नगरी है, समस्त देव इसमें निवास करते हैं। (तस्यां हिरण्ययः कोशः ज्योतिषा आवृतः स्वर्गः) उस शरीर रूपी अयोध्या नगरी में ज्योति से आवृत्त अर्थात् तेज से परिपूर्ण एक स्वर्णिम् कोश रूपी स्वर्ग है।

शरीर के मेरु दण्ड में स्थित ये आठ चक्र निम्नांकित हैं-

1. मूलाधार चक्र- गुदा के पास पृष्ठवंश समाप्ति के स्थान में है। यही इस शरीर रूपी नगरी का मूल आधार है।
2. स्वधिष्ठान चक्र- उसके ऊपर है,
3. मणिपूरक चक्र- नाभि स्थान में है,

4. अनाहत चक्र- हृदय स्थान में है ,
5. विशुद्धि चक्र- कंठ स्थान में है,
6. ललना चक्र- जिह्वा मूल में है,
7. आज्ञा चक्र- दोनों भौंहों के बीच में है,
8. सहस्रार चक्र- मस्तिष्क के उच्चतम भाग में है।

श्री सातवलेकर जी ने लिखा है कि सिर में, मस्तिष्क के उच्चतम भाग में ब्रह्मलोक है। इस ब्रह्मलोक में प्राण के साथ आत्मा जाता है, जहाँ उसे ब्रह्म के दर्शन होते हैं, ब्रह्म से साक्षात्कार होता है। इस के लिये प्राण को मूलाधार से ऊपर उठकर स्वाधिष्ठान आदि चक्रों से होते हुये सहस्रार चक्र तक ले जाया जाता है।

इस शरीर रूपी अयोध्या नगरी में, दो आँखें, दो नासिका छिद्र, दो कान, मुख, जननेन्द्रिय तथा गुदा, ये छिद्र रूपी नौ द्वार हैं।

तस्मिन् हिरण्यये कोशेत्र्यरे त्रिप्रतिष्ठते।
तस्मिन् यद् यक्षमात्मन्वत् तद्वै ब्रह्मविदो विदुः॥

अथर्व. 10/232

(तस्मिन् हिरण्यये कोशे) उस स्वर्णिम तेजस्वी हृदय रूपी कोश में (त्रि अरे) तीर अरों से युक्त (यत् आत्मन्वत् यक्ष) जो आत्मा रूपी यक्ष (त्रि प्रतिष्ठित) तीन प्रकार से स्थित रहता है, (तद् वै ब्रह्मविदः विदुः) उसे ब्रह्मज्ञानी ही निश्चित रूप से जानता है।

चक्र की नाभि को परिधि से जोड़ने वाले अवयवों को 'अरे' कहते हैं। मन्त्र में उल्लिखित 'अरे' सत्वगुण, रजोगुण तथा तमोगुण हैं, जिनसे युक्त होकर आत्मा शरीर में निवास करता है। यह अरे एक समान नहीं हैं प्रत्युत अलग तीन प्रकार के हैं, इसीलिये 'त्रिप्रतिष्ठित' शब्द का प्रयोग हुआ है। कोई भी मनुष्य अपने जीवन काल में इन तीन गुणों से मुक्त नहीं हो सकता क्योंकि आत्मा इनके साथ ही शरीर में रहता है।

पुण्डरीकं नवद्वारं त्रिभिर्गुणेभिरावृतम्।
तस्मिन् यद् यक्षमात्मन्वत् तद्वै ब्रह्मविदो विदुः॥

अथर्व. 10/8/43

(नवद्वारम्) नौ द्वारों वाले शरीर में स्थित् (पुण्डरीकम्) हृदय कमल (त्रिभिः गुणोभिः) तीन गुणों द्वारा (आवृतम्) ढका हुआ है। (तस्मिन्) उस हृदय कमल में (यद्) जो (यक्षम्) पूजनीय (आन्मन्वत्) जीवात्मा रहता है, (तत्) उसे (वै) निश्चय से (ब्रह्मविदः) ब्रह्मज्ञानी (विदुः) ही जानते हैं।

प्रभ्राजमानां हरिणीं यशसा संपरीवृताम्।
पुरं हिरण्ययीं ब्रह्माविवेशापराजिताम्॥

अथर्व. 10/2/33

(प्रभ्राजमानां) आनन्द तथा प्रकाश से युक्त, (हरिणीम्) दुःखों का नाश करने वाली, (यशसा संपरीवृताम्) यश से सब ओर से आवृत्त तथा परिपूर्ण, (हिरण्ययीं) स्वर्ण के समान

चमकीली, मनोहारिणी, (अपराजित) अजेय पुरी में (ब्रह्म आविवेश) ब्रह्म प्रवेश करके स्थित रहता है।

ब्रह्म एवं जीवात्मा का निवास स्थान यह शरीर मनुष्य के चरमोत्कर्ष एवं मोक्ष का साधन है अतः इसका सम्मान किया जाना चाहिये, इसकी रक्षा की जानी चाहिये।

शरीरमाद्यम् खलु धर्म साधनम्।

शरीर ही धर्म पालन का साधन है।

शरीर में स्थित सप्तर्षि

सप्त ऋषयः प्रतिहिताः शरीरे सप्त रक्षन्ति सदमप्रमादम्। सप्तापः स्वपतो लोकमीयुस्तत्र जागृतो अस्वप्नजौ सत्रसदौ च देवौ॥

यजु. 34/55

(सप्त ऋषयः प्रतिहिताः शरीरे) सात ऋषि अर्थात् मन तथा बुद्धि सहित पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ शरीर में निहित हैं। (सप्त अप्रमादं सदं रक्षन्ति) ये सातों ऋषि प्रमाद रहित होकर शरीर की रक्षा करते हैं, (सप्त आपः स्वपतः लोकं ईयुः) शरीर में व्याप्त रहने वाले ये सात ऋषि मनुष्य के सो जाने पर, प्रगाढ़ निद्रा में होने पर जीवात्मा में स्थित हो जाते हैं। (तत्र) उस समय (अस्वप्नजौ

सत्र सदौ च देवौ) कभी न सोने वाले प्राण तथा जीवात्मा शरीर की रक्षा के लिये सदैव जागृत रहते हैं।

आपः आप्नुवन्ति व्यापनुवन्ति।

निरुक्त. 12/4/25 में कहा गया है-

अत्र जागृतो अस्वप्नजौ सत्रसदौ च देवौ प्राज्ञश्चात्मा तैजसश्च- इत्यात्मगतिमाचष्टे।

अर्थात् जीवात्मा तथा प्राण ये दो देव जागते रहते हैं।

यजुर्वेद में सप्त ऋषियों का विवरण इस प्रकार दिया गया है-

1. प्राणो वै वसिष्ठ ऋषिः। यजु. 13/54

श्रेष्ठ होने से प्राण वसिष्ठ ऋषि हैं।

2. मनो वै भरद्वाज ऋषिः। यजु. 13/55

मन ही भरद्वाज ऋषि हैं।

वाज का अर्थ है अन्न। जिसके पास मन है वह अपने मन के अनुरूप अन्न प्राप्त करने की चेष्टा करता है।

3. चक्षुर्वै जमदग्निः ऋषिः। यजु. 13/56

चक्षु ही जमदग्नि ऋषि हैं। चक्षु से ही प्राणी जगत को देखता है और मनन करता है।

4. श्रोत्र वै विश्वामित्र ऋषिः। यजु.13/57

श्रोत्र ही विश्वा मित्र ऋषि हैं क्योंकि इसी से सब ओर से सुनते हैं और सब ओर मित्र मिल जाते हैं।

5. वाग्वै विश्वकर्म ऋषिः । यजु. 13/58

वाणी ही विश्वकर्म ऋषि है। वाणी से बोल कर ही सब कर्म किये जाते हैं।

6. **मुख ही अत्रि ऋषि है। अत्तीति अत्रिः।** मुख खाता है इसलिये अत्रि कह लाता है।

7. **कश्यप ऋषिः ।** शतपथ में कहा है कि नाक का एक नधुना वसिष्ठ ऋषि है और दूसरा कश्यप ऋषि है।

प्राण

प्राण के द्वारा ही अन्न खाया जाता है। शरीर से जब प्राण चला जाता है तब मुख खाना नहीं खा सकता।

सोऽयास्य अङ्गिरसोऽङ्गानां हि रसः।

शतपथ. 14/4/1/9

प्राण मुख में रहता है, इसीलिये इसको अयास्य कहते हैं। प्राण को अङ्गिरस भी कहते हैं क्योंकि प्राण अंगों का रस है। जिस अंग से प्राण चला जाता है वह अंग सूख जाता है।

एकं पादं नोत्खिदति सलिलाद्धंस उच्चरन्। यदङ्ग स तमुत्खिदंनैवाद्य न श्वः स्यान्न रात्री नाहः स्यान्न व्यु च्छेत् कदाचन॥ अथर्व.11/4/21

(सलिलात् हंस उच्चरन्) हृदय रुपी मानसरोवर के जल से ऊपर उठता हुआ प्राण रूपी हँस अपना (एकं पादं न उत्खिदति) (अपने दो पादों में से)

एक पाद ऊपर नहीं उठाता है। (अंग) हे प्रिय ! (यत् स तं उत्खिदेत्) यदि वह इस दूसरे पैर को भी उठा ले, उसे हृदय में न छोड़ दे अर्थात् शरीर से पूर्ण रूप से बाहर चला जाय तो व्यक्ति के लिये (म एव अद्य स्यात्) न आज रहेगा, (न कदाचन व्युच्छेत्) न कभी उषा चमकेगी अर्थात् उसके लिये न कभी रात्रि का अन्धकार होगा और न दिन का प्रकाश होगा।

श्वास के शरीर के अन्दर जाते समय 'स' की ध्वनि होती है और उच्छवास अर्थात् बाहर जाते समय 'हं' की ध्वनि होती है। इन्हीं 'हं' तथा 'स' को मिलाकर श्वास-च्छवास रूपी प्राण को 'हंस' कहा जाता है।

इन्हीं 'हं' तथा 'स' में 'ओम' मिलाकर 'सोहम्' शद्ब बनता है, जिसका अर्थ है जीवात्मा। शरीर में आत्मा तथा प्राण के सम्बन्ध पर ही आधारित है, ब्रह्मा का वाहन हंस तथा उनके कमलासन की कल्पना।

प्राण का इतना महत्व है कि अथर्व वेद में प्राण को ईश्वर ही कहा गया है-

प्राणाय नमो यस्य सर्वमिदं वशे।
यो भूतः सर्वस्येश्वरो यस्मिन्त्सर्वं प्रतिष्ठितम्॥

अथर्व. 11/4/1

(प्राणाय नमः) प्राण को नमस्कार है, (यस्य सर्वं इदं वशे) जिसके वश में यह सब कुछ है, (यः सर्वस्य ईश्वरः भूतः) जो

समस्त स्थावर जङ्गम जगत् का ईश्वर है (यस्मिन् सर्वं प्रतिष्ठितम्) तथा जिसमें सब प्रतिष्ठित है।

ऊर्ध्वः सुप्तेषु जागार ननु तिर्यङ् निपद्यते।
न सुप्तमस्य सुप्तेष्वनु शुश्राव कश्चन॥

अथर्व. 11/4/25

(सुप्तेषु) सोते हुये प्राणियों में भी यह प्राण (ऊर्ध्वः) खड़ा रहकर (जागार) जागता रहता है। (ननु तिर्यङ् निपद्यते) कभी तिरछा होकर लेटता नहीं है, सोता नहीं है, (सुप्तेषु अस्य) सोते हुये मनुष्य के भी प्राण को (कश्चन सुप्तं न अनुशुश्राव) कभी किसी ने सोता हुआ नहीं सुना।

शरीर में प्राण के दस भेद माने जाते हैं-

प्रमुख- प्राण, अपान, व्यान, समान, उदान।

गौण- नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त, धनञ्जय।

प्राणों की यह विशेषता है कि वह बिना रुके हुये, बिना थके हुये यावज्जीवन अपना कार्य निरन्तर करते रहते हैं।

देवी के रूप में भगवान् की शक्ति का वर्णन

आठ मन्त्रों का निम्नांकित सूक्त ऋग्वेद तथा अथर्व वेद में कुछ अन्तर के साथ आया है। अथर्व वेद में इसके ऋषि अथर्वा तथा देवता वाक् है, जबकि ऋग्वेद में ऋषि वागाम्भृणी तथा देवता आत्मा है।

अहं रुद्रेभिर्वसुभिश्चराम्यहमादित्यैरुत विश्वदेवैः।

अहं मित्रावरुणोभा बिभर्म्यहमिन्द्राग्नी
अहमश्विनोभा ॥

अथर्व. 4/30/1, ऋग्. 10/125/1

(अहं रुद्रेभिः, वसुभिः, आदित्यैः उत विश्वदेवैः चरामि) मैं (परमात्म शक्ति) रुद्रों के, वसुओं, आदित्यों तथा विश्वदेवों के साथ चलती हूँ। (अहं मित्रावरुणा उभा बिभर्मि) मैं मित्र और वरुण दोनों को धारण करती हूँ तथा (अहं इन्द्राग्नी उभा अश्विना अहम्) मैं ही इन्द्र, अग्नि और दोनों अश्विनी देवों को धारण करती हूँ।

आठ वसु-

अग्निश्च पृथिवी च वायुश्चान्तरिक्षं चादित्यश्च द्यौश्च चन्द्रमाश्चनक्षत्राणि चैते वसव एतेषु हीदम् सर्वम् हितमिति
तस्माद् वसव इति ॥ बृहदारण्यक उपनिषद्, 3/9/3

अग्नि, पृथिवी, वायु, अन्तरिक्ष, द्युलोक, आदित्य, चन्द्रमा तथा नक्षत्र, ये सब को वसाते हैं, जीवित रखते हैं, इसलिये इन सबके वसु कहा जाता है।

रुद्र- दश प्राण तथा आत्मा को भी रुद्र कहा जाता है क्योंकि जब ये शरीर से निकलते हैं तो प्रेम करने वालों को रुलाते हैं।

आदित्य- संवत्सर के बारह मासों को भी आदित्य कहा जाता है क्योंकि ये मनुष्य की आयु लेते हुये जाते हैं।

मित्र वरुण- दिन और रात तथा सूर्य और चन्द्रमा को भी मित्रावरुणौ कहा जाता है।

अश्विनौ- दिन और रात तथा द्युलोक और पृथिवी को भी अश्विनौ कहा जाता है।

मित्रावरुणौ- सूर्य तथा चन्द्रमा। दिन तथा रात

अश्विनौ- अहो रात्रौ (निरु. 12/1/1) सूर्य तथा चन्द्रमा।

अहं सोममाहनसं बिभर्म्यहं त्वष्टारमुत पूषणं भगम्। अहं दधामि द्रविणं हविष्मते सुप्राव्य ३ यजमानाय सुन्वते॥

अथर्व.4/30/6, ऋग्.10/125/2

(अहं आहनसं सोमं बिभर्मि) मैं रात्रि के अन्धकार रूपी शत्रु का हनन करने वाले सोम अर्थात् चन्द्रमा, (अहं त्वष्टारं उत पूषणं भगम्) मैं त्वष्टा और पूषा तथा भग को धारण करती हूँ। (अहं हविष्मते सुन्वते यजमानाय) मैं अन्न आदि हविष्य पदार्थों की उत्तम हवियों से देवों को तृप्त करने वाले तथा सोमयज्ञ करने वाले यजमान को (सुप्राव्ये द्रविणं दधामि) उत्तम प्रकार से रक्षा करने वाला धन प्रदान करती हूँ।

अहं राष्ट्री संगमनी वसूनां चिकितुषी प्रथमा यज्ञियानाम्। तां मा देवा व्यदधुः पुरुत्रा भूरिस्थात्रां भूर्यावेशयन्तीम्॥

अथर्व.4/30/2 ऋग्.10/125/3

(अहं राष्ट्री वसूनां संगमनी) मैं समस्त जगत् की तथा समस्त सम्पत्तियों की स्वामिनी हूँ और धन प्रदान करने वाली हूँ। (यज्ञियानां प्रथमा चिकितुषी) मैं ज्ञानवती हूँ तथा यज्ञों में पूजनीय देवों में प्रथम अर्थात् सर्वश्रेष्ठ हूँ। (तां भूरिस्थात्रां भूरि आवेशयन्ती) उस अनेक रूपों में विद्यमान तथा सबका भरण पोषण करने वाली मुझ को ही (देवाः पुरुष वि अदधुः) देव अनेक प्रकार से प्रतिपादित करते हैं, वर्णित करते हैं

मया सो अन्नमत्ति यो विपश्यति यः प्राणिति य ईं शृणोत्युक्तम् ।अमन्तवो मां त उप क्षियन्ति श्रुधि श्रुत श्रद्धिवं ते वदामि ॥

ऋग्.10/125/4 अथर्व.4/30/4

(सः यः अन्नं अत्ति) वह जो अन्न खाता है, (यः विपश्यति) जो देखता है, (यः प्राणिति) जो प्राण धारण करता है, (यः ईं श्रृणोति) जो इस कथन को श्रवण करता है, (मया) वह सब मेरी सहायता से करता है। (मां अमन्तवः ते उपक्षियन्ति) जो मुझे नहीं मानते हैं, वे नष्ट हो जाते हैं, नीचे गिर जाते हैं, दुःख एवं कष्ट को प्राप्त होते हैं। (श्रुत श्रुधि) हे प्राज्ञ मित्र ! तुम सुनो (ते श्रद्धिवं वदामि) तुम्हें मैं श्रद्धेय ज्ञान को कहती हूँ, उपदेश करती हूँ।

अहमेव स्वयमिदं वदामि जुष्टं देवेभिरुत मानुषेभिः।
यं कामये तं तमुग्रं कृणोमि तं ब्रह्माणं तमृषिं तं सुमेधाम्॥

अथर्व.4/30/3 ऋग्.10/125/5

(अहं) मैं स्वयं ही (देवानाम् उत मानुषाणाम्) देवों तथा मनुष्यों के लिये (जुष्टम्) हितकारी (इदम् वदामि) यह बात कहती हूँ कि (यं कामये) मैं जिसकी कामना करती हूँ, जिसे अच्छा तथा कृपापात्र समझती हूँ, (तम् उग्रं) उसी को तेचस्वी तथा श्रेष्ठ बनाती हूँ, (तं ब्रह्माणं) उसी को ब्रह्मा अर्थात् वेदों का ज्ञाता, (तम् ऋषिं) उसी को ऋषि (तम् सुमेधाम्) तथा उसी को उत्तम मेधा वाला (कृणोमि) बनाती हूँ।

अहं रुद्राय धनुरा तनोमि ब्रह्मद्विषे शरवे हन्तवा उ।
अहं जनाय समदं कृणोम्यहं द्यावापृथिवी आ विवेश॥

अथर्व.4/30/5 ऋग्.10/125/6

(ब्रह्मद्विषे शरवे हन्तवै उ रुद्राय धनुः अहं आ तनोमि) वेद तथा ब्रह्म से द्वेष करने वाले हिंसक शत्रु का वध करने के लिये मैं रुद्र के धनुष की प्रत्यग्चा चढ़ाती हूँ, तानती हूँ। (अहं जनाय समदं कृणोमि) मैं मनुष्यों के कल्याण के लिये युद्ध करती हूँ, (अहं द्यावा पृथिवी आ विवेश) मैं द्युलोक तथा पृथिवी में प्रविष्ट, व्याप्त हुयी हूँ।

अहं सुवे पितरमस्य मूर्धन् मम योनिरप्स्व १न्तः समुद्रे । ततो वि तिष्ठे भुवनानु विश्वो तामूं द्यां वर्ष्मणोप स्पृशामि ॥

अथर्व.4/30/7 ऋग्.10/125/7

(अहं अस्य मूर्धनि पितरं सुवे) मैं इस संसार के पिता अर्थात् द्युलोक को मूर्धा के स्थान में उत्पन्न करती हूँ, (मम योनिः समुद्रे अप्सु अन्तः) मेरी उत्पत्ति का कारण परमात्मा है (ततः विश्वा भुवना अनु वि तिष्ठे) तथा मैं समस्त लोकों को व्याप्त करके स्थित रहती हूँ (उत अमूं द्यां वर्ष्मणा उप स्पृशामि) तथा मैं इस संसार से ऊपर उठकर द्युलोक को स्पर्श करती हूँ, उस में व्याप्त रहती हूँ।

समुद्र का अर्थ अन्तरिक्ष भी होता है।

समुद्रवन्त्यस्माद्भूत जातानीति समुद्रः परमात्मा। (सायण भाष्य)

अहमेव वात इव प्रवाम्यारभमाणा भुवनानि विश्वा। परो दिवा पर एना पृथिव्यै तावती महिना सं बभूव ॥

अथर्व.4/30/8, ऋग्.10/125/8

(विश्वा भुवनानि आरभमाणा) सब भुवनों का निर्माण करती हुयी, (अहमेव वातः इव प्रवामि) मैं ही वायु के समान प्रवाहित हो रही हूँ, (दिवा परः) द्युलोक (एना पृथिव्यै पर) तथा इस पृथिवी से श्रेष्ठ मैं (तावती महिना सं बभूव) अपनी इतनी बड़ी महिमा से, अपने महान सामर्थ्य से प्रकट हुयी हूँ।

कतिपय महत्वपूर्ण श्लोक

या दुस्त्यजा दुर्मतिभिर्या न जीर्यति जीर्यतः।
याऽसौ प्राणान्तको रोगस्तां तृष्णां त्यजतः सुखम्॥

महाभारत शान्तिपर्व, अध्याय 145

जो दुर्बुद्धि लोगों के द्वारा अत्यन्त कठिनता से त्याग किये जाने वाली है, जो मनुष्य के जीर्ण हो जाने पर भी जीर्ण नहीं होती, जो प्राणनाशक रोग के समान है, उस तृष्णा का त्याग कर देने वाले पुरुष को ही सुख प्राप्त होता है।

शान्तितुल्यं तपो नास्ति न सन्तोषात्परं सुखम्।
न तृष्णायाः परो व्याधिर्न च धर्मो दयापरः॥

चाणक्य नीति, 8/13

शान्ति के समान कोई तप नहीं है, सन्तोष से बढ़कर कोई सुख नहीं है, तृष्णा से बड़ी कोई व्याधि नहीं है और दया से बढ़कर कोई धर्म नहीं है।

नास्ति तृष्णासमं दुःखं नास्ति त्यागसमं सुखम्।
सर्वान् कामान् परित्यज्य ब्रह्मभूयाय कल्पते॥

महाभारत अध्याय, 145

तृष्णा के समान कोई दुःख नहीं है, त्याग के समान कोई सुख नहीं है। समस्त कामनाओं का परित्याग करके मनुष्य

ब्रह्मभाव को प्राप्त हो जाता है, ब्रह्म को प्राप्त करने के योग्य हो जाता है।

प्रियवाक्य प्रदानेन सर्वे तुष्यन्ति जन्तवः।
तस्मात्तदेव वक्तव्यं वचने का दरिद्रता॥

चाणक्यनीति, 16/17

मधुर भाषाण से, प्रिय बात कहने से सभी प्राणी प्रसन्न होते हैं, अतः प्रिय वचन ही बोलने चाहिये, वाणी में भी क्या दरिद्रता।

विदेशेषु धनं विद्या व्यसनेषु धनं मतिः।
परलोके धनं धर्म शीलं सर्वत्र वै धनम्॥

सुभाषित

विदेशों में विद्या धन होती है, संकट में विवेक धन होता है, परलोक में धर्म धन होता है किन्तु शील, सज्जनता और विनम्रता तथा मधुर स्वभाव, सर्वत्र धन होता है।

रोहते सायकैर्विद्धं वनं परशुना हतम्।
वाचा दुरुक्तं बीभत्सं न संरोहति वाक्क्षतम्॥

विदुरनीति, 2/78

बाणों से किया गया घाव फिर भर जाता है, परशु (कुल्हाड़े) से काटा गया वन भी पुनः हरा हो जाता है परन्तु वाणी से कहे गये बीभत्स अर्थात् अत्यन्त चोट पहुँचाने वाले दुर्वचन से किया गया हृदय का घाव कभी नहीं भरता।

तृणानि भूमिरुदकं वाक्चतुर्थी च सूनृता।

एतान्यपि सतां गेहे नोच्छिद्यन्ते कदाचन ॥

विदुर नीति, 4/34 मनु. 3/101

तृण का आसन, बैठने के लिये उचित स्थान, जल तथा सत्य युक्त मधुर वाणी, ये सब उत्तम पुरुषों के घरों मे सदैव उपलब्ध रहते हैं।

मातृवएत्परदारेषु परद्रव्येषु लोष्ठवत्।
आत्मवत्सर्वभूतेषु यः पश्यति स पण्डितः ॥

चाणक्य नीति, 12/14

जो परायी स्त्रियों को माता के समान, पराये धन को मिट्टी के ढेले के समान तथा समस्त प्राणियों को अपने ही समान देखता है, वही वास्तव में पण्डित है।

लालयेत् पञ्च वर्षाणि दश वर्षाणि ताडयेत्।
प्राप्ते तु षोडशे वर्षे पुत्रं मित्रवदाचरेत् ॥

चाणक्य नीति, 3/18

पाँच वर्ष की आयु तक पुत्र का प्रेम से लालन पालन करना चाहिये, उसके बाद दश वर्ष तक अर्थात् पन्द्रह वर्ष की आयु तक उसे उचित मार्ग पर चलाने के लिये आवश्यकतानुसार दण्ड देना चाहिये किन्तु जब वह सोलह वर्ष की आयु प्राप्त कर ले, तो उससे मित्र के समान व्यवहार करना चाहिये।

सुखस्यानन्तरं दुःखं दुःखस्यानन्तरं सुखम्।
सुखदुःखे मनुष्याणां चक्रवत् परिवर्ततः ॥

महाभारत

सुख के उपरान्त दुःख मिलता है और दुःख के उपरान्त सुख। मनुष्यों में सुख और दुःख चक्र के समान निरन्तर परिवर्तित होते रहते हैं।

अधिष्ठानं तथा कर्ता करणं च पृथग्विधम्।
विविधाश्च पृथक्चेष्टा दैवं चैवात्र पञ्चमम्॥

गीता,18/14

जीवन की सफलता में इन पाँच कारणों का योगदान होता है। प्रथम- अधिष्ठान अर्थात् व्यक्ति का आधार, किस परिवार में उसने जन्म लिया, उसके माता पिता क्या करते थे। द्वितीय- व्यक्ति के गुण अथवा अवगुण, तृतीय- उसे प्राप्त होने वाले विविध प्रकार के उपकरण, साधन एवं सहायता, चतुर्थ- व्यक्ति के द्वारा अपने लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिये, अपने कार्यों के सम्पादन के लिये किये गये भिन्न भिन्न प्रकार के प्रयत्न तथा पाँचवा- उसका भाग्य।

इस प्रकार स्पष्ट है कि मनुष्य की सफलता अथवा असफलता में भाग्य का पाँचवा स्थान होता है, सबसे महत्व पूर्ण मुख्य स्थान नहीं।

उद्योगिनं पुरुष सिंहमुपैति लक्ष्मीः,
दैवेन देयमिति का पुरुषा वदन्ति।
दैवं निहत्य कुरु पौरुषमात्मशक्त्या,
यत्ने कृते यदि न सिद्ध्यति कोऽत्र दोषाः॥

सुभाषित

पुरुषों में सिंह के समान उद्यमी पुरुष को ही लक्ष्मी प्राप्त होती है अर्थात् जीवन में सफलता प्राप्त होती है। भाग्य से ही सब मिलता है, ऐसा केवल कायर ही कहते हैं। भाग्य की उपेक्षा करके अपनी पूरी शक्ति से पुरुषार्थ करो और प्रयत्न करने पर भी यदि कार्य सिद्ध न हो, तो देखो कि हमारे प्रयत्न में क्या कमी रह गयी।

लक्ष्मी का अर्थ शोभा भी होता है और जीवन में शोभा सफलता से प्राप्त होती है।

चरन् वै मधु विन्दति चरन् स्वादुमुदुम्बरम्।
सूर्यस्य पश्य श्रेमाणं यो न तन्द्रयते चरंश्चरैवेति॥

ऐतरेय ब्रह्मण. 33/3 सप्तम् पञ्चिकायां 3/3/4

इन्द्र ने नव युवक रोहित को समझाया कि पुरुष चलते हुये ही, परिश्रम करते हुये ही मधु को, सफलता को प्राप्त करता है और चलते हुये ही मधुर उदुम्बर आदि फलों को प्राप्त करता है। सूर्य के जगत् वन्दनीयत्व को देखो जो कभी आलस्य नहीं करता, सदैव अपना कर्तव्य करते हुये चलता रहता है। अतः तुम भी चलते रहो, चलते रहो।

उत्साहो बलवानार्य नास्त्युत्साहात्परं बलम्।
सोत्साहस्य हि लोकेषु न किंचिदपि दुर्लभम्॥

वाल्मीकि रामायण किष्किन्धाकाण्ड, 1/12

लक्ष्मण ने श्रीराम से कहा, हे आर्य ! उत्साह ही बलवान् होता है, उत्साह से बढ़कर कोई बल नहीं होता । उत्साही पुरुष के लिये संसार में कोई भी वस्तु दुर्लभ नहीं है।

गच्छन् पिपीलिको याति योजनानि शतैरपि।
अगच्छन् वैनतेयोऽपि पदमेकं न गच्छति ॥

सुभाषित

चलती हुयी चींटी धीरे धीरे सैकड़ों योजनों तक चली जाती है किन्तु न चलते हुये अर्थात् रुके हुये गरुड़ भी एक पद की दूरी तय नहीं कर सकते।

उद्यमेन हि सिद्ध्यन्ति कार्याणि न मनोरथैः।
न हि सुप्तस्य सिंहस्य प्रविशन्ति मुखे मृगाः ॥

हितोपदेश

केवल मनोरथ से कार्य सिद्ध नहीं होते हैं प्रत्युत उद्योग करने से ही सिद्ध होते हैं। सोये हुये सिंह के मुख में मृग स्वयं प्रवेश नहीं करते।

श्रूयतां धर्मसर्वस्वं श्रुत्वा चाप्यवधार्यताम्।
आत्मनः प्रतिकूलानि परेषान्न समाचरेत ॥

महाभारत

धर्म का सार यह है कि जो व्यवहार अपने को बुरा लगे उसे दूसरे के साथ मत करो। इस को ध्यान पूर्वक सुनो और इसका पालन करो ।

दानं भोगो नाशस्तिस्रो गतयो भवन्ति वित्तस्य।
यो न ददाति न भुङ्क्ते तस्य तृतीया गतिर्भवति ॥

भुर्तृहरि नीतिशतक, 34

दान अर्थात् पात्र व्यक्ति को धन दिया जाना, स्वयं उपभोग किया जाना तथा नष्ट हो जाना, धन की यही तीन गतियाँ होती हैं। जो न धन का दान करता है और न उपभोग करता है, उसके धन की तीसरी गति होती है अर्थात् नष्ट हो जाता है।

सर्वं परवशं दुःखं सर्वमात्मवशं सुखम्।
एतद्विद्यात्समासेन लक्षणं सुखदुःखयोः ॥

मनु. 4/160

जो कार्य दूसरे के वश में होता है वह दुःख देने वाला होता है और जो कार्य अपने वश में होता है वह सब सुख देने वाला होता है। संक्षेप में सुख और दुःख का यही लक्षण जानना चाहिये।

कामात्मता न प्रशस्ता न चैवेहास्त्यकामता ॥
काम्यो हि वेदाधिगमः कर्मयोगश्च वैदिकः ॥

मनु.2/2

न तो कामनाओं का अधिक होना और न उनका पूर्ण अभाव ही उचित है क्योंकि कामनाओं से ही तो पुरुष वेदों का ज्ञान प्राप्त करता है तथा कामनाओं की पूर्ति के लिये ही वेद विहित कर्मों का सम्पादन करता है।

संकल्पमूलः कामो वै यज्ञाः संकल्प सम्भवाः ।
व्रतानि यमधर्मांश्च सर्वे संकल्पजाः स्मृःताः ॥

मनु. 2/3

कामना ही सारे संकल्पों का मूल है। यज्ञ भी संकल्प पर आधारित होते हैं। इसी प्रकार व्रत, यम, नियम तथा सभी धार्मिक कृत्य संकल्प से ही उत्पन्न होने वाले हैं अर्थात् संकल्प पर ही आधारित होते हैं।

न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति ।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाऽभिवर्धते ॥

मनु. 2/94

जिस प्रकार अग्नि में हवि अर्थात् घृत आदि डालने से वह और अधिक प्रदीप्त होता है, उसी प्रकार कामनाओं के उपभोग से कामनायें शान्त नहीं होती बल्कि और अधिक बढ़ती हैं। इसीलिये इन्द्रियों का निग्रह आवश्यक है।

अतिमानोऽतिवादश्च तथाऽत्यागो नराधिप ।
क्रोधश्चात्मविधित्सा च मित्रद्रोहश्च तानि षट् ॥

विदुर नीति, 5/10

अत्यधिक अभिमान, बहुत बोलना, त्याग न करना, क्रोध, (आत्मविधित्सा) केवल अपनी आत्मा का पोषण अर्थात् अपने स्वार्थ की पूर्ति का प्रयास तथा मित्र द्रोह, इन छः कार्यों से मनुष्य पूर्ण आयु तक जीवित नहीं रहता।

लज्जां निहन्ति चापल्यं शोको धैर्यं जरा रुचम्।
अहंकारो गुणानां तु मूलमुत्खातत्यलम्॥

सुभाषित

चञ्चलता लज्जा को नष्ट कर देती है, शोक धैर्य को एवं वृद्धावस्था कान्ति को नष्ट कर देती है जब कि अहंकार तो गुणों के मूल को ही सर्वथा उखाड़ फेंकता है, नष्ट कर देता है।

आरम्भगुर्वी क्षयिणी क्रमेण,
लघ्वी पुरा वृद्धिमती च पश्चात्।
दिनस्य पूर्वार्द्ध परार्द्धभिन्ना,
छायेव मैत्री खलसज्जनानाम्॥

भरतृहरि नीतिशतक, 49

जैसे दिन के पूर्वार्द्ध (दोपहर से पहले) की छाया पहले लम्बी और फिर क्रमशः छोटी होती चली जाती है तथा उत्तरार्द्ध अर्थात् मध्याह्न के बाद की छाया पहले छोटी और फिर धीरे धीरे बड़ी होती चली जाती है, इसी प्रकार दुष्टों की मित्रता पूर्वार्द्ध की तरह पहले अत्यन्त घनिष्ठ और फिर धीरे धीरे कम होती चली जाती है जब कि सज्जनों की मित्रता उत्तरार्द्ध की तरह पहले कम और फिर धीरे धीरे घनिष्ठ होती जाती है।

परोक्षे कार्य हन्तारं प्रत्यक्षे प्रियवादिनम्।
वर्जयेत् तादृशं मित्रं विषकुम्भं पयोमुखम्॥

चाणक्य नीति. 2/5 हितोपदेश

सामने तो प्रिय वचन बोलने वाले किन्तु पीठ पीछे काम बिगाड़ने वाले बनावटी मित्र को, मुख पर दूध लगे हुये किन्तु अन्दर विष से भरे हुये घड़े के समान छोड़ देना चाहिये।

अनित्यानि शरीराणि विभवो नैव शाश्वतः।
नित्यं सन्निहितो मृत्युः कर्तव्यो धर्मसंग्रहः॥

चाणक्य नीति, 12/12

शरीर अनित्य है, धन भी सदा रहने वाला नहीं है तथा मृत्यु सदा सन्निकट ही रहती है, अतः धर्म का संग्रह करना चाहिये।

अजरामरवत् प्राज्ञो विद्यामर्थञ्च चिन्तयेत्।
गृहीत इव केशेषु मृत्युना धर्ममाचरेत्॥

हितोपदेश

बुद्धिमान को उचित है कि अपने को अजर अमर समझकर विद्या तथा धन का उपार्जन करे और मृत्यु केश पकड़े खड़ी है – यह सोचकर धर्म का आचरण करे।

अयं निजः परोवेति गणाना लघुचेतसाम्।
उदारचरितानाम् तु वसुधैव कुटुम्बकम्॥ सुभाषित

यह मेरा है, यह पराया है, यह गणना तो क्षुद्र हृदय तथा संकुचित चित्त वाले करते हैं, उदार चित्त वाले पुरुषों के लिये तो समस्त वसुधा ही कुटुम्ब है।

यदिदं किञ्च जगत्सर्वं प्राणे एजति निःसृतम्।
महद्भयं वज्रमुद्यतं य एतद्विदुरमृतास्ते भवन्ति॥

कठ. 2/3/2

जो कुछ भी यह जगत् है, वह सब (प्राणे) परमात्मा में ही गतिमान है अर्थात् उसी के द्वारा प्रदत्त शक्ति एवं गति से गतिशील है और उसी ब्रह्म से (निः सृतम्) उत्पन्न हुआ है । वह ब्रह्म (उद्यतम् वज्रम् इव) हाथ में वज्र उठाये हुये के समान महान् भय देने वाला है। उसी के भय से संसार का समस्त व्यापार, उसी के द्वारा निश्चित नियमों के अनुसार सतत् चलता रहता है। (ये एतत् विदुः) जो यह अथवा इस रहस्य को जानते हैं अर्थात् जिन्हें ब्रह्म की, इस सबको नियन्त्रित करने वाली शक्ति का ज्ञान हो जाता है (ते अमृतः भवन्ति) वे अमृतत्व को प्राप्त कर लेते हैं।

अहिंसयैव भूतानां कार्यं श्रेयोऽनुशासनम्।
वाक् चैव मधुरा श्लक्ष्णा प्रयोज्या धर्ममिच्छता॥

मनु. 2/159

समस्त प्राणियों के प्रति अहिंसा एवं उनके कल्याण करने की शिक्षा देना चाहिये। धर्म की इच्छा करने वाले को सदा मधुर तथा शालीनता युक्त वाणी ही बोलनी चाहिये।

अधर्मेणैधते तावत्ततो भद्राणि पश्यति।
ततः सपत्नाञ्चयति समूलस्तु विनश्यति॥

मनु. 4/174

अधर्म का आचरण करने से मनुष्य को जो तुरन्त लाभ तथा अपने शत्रुओं पर विजय प्राप्त होती है, उससे उस दुष्ट व्यक्ति को

उस समय उसी में अपना कल्याण दिखायी देता है किन्तु बाद में वह समूल नष्ट हो जाता है।

अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः।
चत्वारि तस्यवर्धन्ते आयुर्विद्यायशोबलम्॥

मनु.2/121

बड़े लोगों को अभिवादन करने वाले तथा वृद्ध, माता, पिता एवं भाई आदि अन्य गुरुजनों की नित्य सेवा करने वाले पुरुष की आयु, विद्या, यश और बल इन चारों की वृद्धि होती है।

अग्नौ प्रास्तं तु पुरुषं कर्मान्वेति सव्यं कृतम्।
तस्मात्तु पुरुषो यत्नाद् धर्मं संचिनुयाच्छनैः॥

विदुरनीति, 8/18

अग्नि में रखे जाने तथा भस्म हो जाने के बाद पुरुष द्वारा किये गये श्रेष्ठ कर्म ही उसका साथ देते हैं। अतः पुरुष को चाहिये कि यत्नपुर्वक धर्म का आचरण करके शनैः शनैः उसका संचय करे।

धर्म से ही मनुष्य को सफलता एवं विजय श्री प्राप्त होती है- 'यतो धर्मस्ततो जयः' जहाँ धर्म है वहीं विजय है।

कोकिलानां स्वरो रूपं नारी रूपं पतिव्रतम्।
विद्या रूपं कुरूपाणां क्षमा रूपं तपस्विनाम्॥

चाणक्य. नीति, 3/9

कोयल का रूप उसका स्वर है, नारी की सुन्दरता उसका प्रतिव्रता होना है, जो देखने में सुदर नहीं होते उनकी सुन्दरता विद्या है, तपस्वियों की सुन्दरता उनके द्वारा की गयी क्षमा होती है।

अति रूपेण वै सीता चातिगर्वेण रावणः।
अतिदानाद् बलिर्बद्धो ह्यति सर्वत्र वर्जयेत्॥

चाणक्य, नीति. /312

अत्यधिक सुन्दरता के कारण सीता का हरण हुआ, अत्यन्त अहंकार के कारण रावण का नाश हुआ, अत्यधिक दानी होने के कारण राजा बलि को विष्णु जी ने अपने वश में किया, कोई भी कार्य अत्यधिक नहीं करना चाहिये। आवश्यकता से अधिक प्रत्येक वस्तु हानिकारक होती है, सीमा से अधिक कुछ नहीं होना चाहिये।

अनभ्यासे विषं शास्त्रमजीर्णे भोजनं विषम्।
दरिद्रस्य विषं गोष्ठी वृद्धस्य तरुणी विषम्॥

चाणक्य नीति, 4/15

अभ्यास के बिना शास्त्र का ज्ञान विष है, निरर्थक है, भोजन के ठीक प्रकार से न पचने पर बिना भूंख के किया गया भोजन विष है, दरिद्र के लिये सभा में जाना विष है क्योंकि वहाँ उसका सम्मान नहीं होगा तथा वृद्ध पुरुष के लिये युवती विष होती है क्योंकि वह उसको सन्तुष्ट न कर पाने के कारण अपमानित होता है।

नास्ति कामसमो व्याधिर्नास्ति मोहसमो रिपुः ।
नास्ति कोप समो वह्नि नार्स्ति ज्ञानात्परं सुखम् ॥

चाणक्यनीति, 5/12

काम वासना के समान कोई व्याधि नहीं होती, मोह के समान कोई शत्रु नहीं होता, क्रोध के समान कोई अग्नि नहीं होती क्योंकि क्रोध मनुष्य को जला कर पूरी तरह से नष्ट कर देता है तथा ज्ञान से बढ़कर कोई सुख नहीं होता।

सत्येन धार्यते पृथ्वी सत्येन तपते रविः ।
सत्येनवातिवायुश्चसर्वंसत्ये प्रतिष्ठितम ॥

चाणक्य नीति, 5/19

परमात्मा के सत्य नियमों के कारण ही पृथ्वी अपने स्थान पर स्थित रहती है, उन्हीं के नियमों से सूर्य प्रकाशित होता है, उन्हीं के नियमों से वायु चलती है, भगवान् के सत्य अपरिवर्तनीय नियमों, जिन्हें ऋत कहा जाता है, पर ही सारा संसार आधारित है।

दृष्टिपूतं न्यसेत् पादं वस्त्रपूतं जलं पिवेत् ।
शास्त्रपूतं वदेद् वाक्यं मनःपूतं समाचरेत् ॥

चाणक्य नीति. 6/2

भली भाँति देख कर ही पैर आगे बढ़ाना चाहिये, सब प्रकार से स्वच्छ कर के ही जल पीना चाहिये, सत्य से पवित्र करके शास्त्र के अनुसार बोलना चाहिये और मन को पवित्र करके जीवन में आचरण करना चाहिये।

गतं शोको न कर्त्तव्यं भविष्यं नैव चिन्तयेत।
वर्तमानेन कालेन प्रवर्तन्ते विचक्षणाः ॥

चाणक्य नीति, 13/2

जो हो चुका है उसके विषय में दुख अथवा पश्चात्ताप नहीं करना चाहिये तथा भविष्य की निरर्थक चिन्ता भी नहीं करना चाहिये। बुद्धिमान लोग वर्तमान काल की परिस्थितियों के अनुसार कार्य करने में ही ध्यान देते हैं।

पृथिव्यां त्रीणि रत्नानि अन्नमापः सुभाषितम्।
मूढैः पाषाणखण्डे षु रत्नसंज्ञा विधीयते ॥

चाणक्य नीति, 14/1

पृथिवी में तीन रत्न हैं अन्न, जल तथा विद्वानों के सुभाषित वचन। किन्तु मूर्खों के द्वारा पत्थरों जैसे- हीरा, पन्ना, मोती, नीलम, आदि को रत्न कहा जाता है।

कुचैलिनं दन्तमलोपधारिणं बह्वाशिनं
निष्टुरभाषितं च। सूर्योदये चास्तमिते शयानं
विमुन्चतेश्रीर्यदि चक्रपाणिः ॥ चाणक्य नीति, 15/4

मैले कुचैले वस्त्र पहनना, दांतो का गन्दा रखना, बहुत अधिक खाना, कटु भाषण करना, सूर्योदय के पश्चात् देर तक तथा सूर्यास्त के समय सोना इन दुर्गुणों वाले पुरुष को लक्ष्मी

त्याग देती है चाहे वह स्वयं भगवान् विष्णु ही के समान होने का दिखावा करने वाला हो।

अजीर्णे भेषजं वारि जीर्णे तद् बलप्रदम्।
भोजने चामृतं वारि भोजनान्ते विषप्रदम्॥

चाणक्य नीति,8/7

भोजन ठीक से न पचने की अवस्था अर्थात् अजीर्ण में जल पीना अमृत के समान है, भोजन पच जाने पर जल पीने से बल मिलता है। भोजन करते समय जल पीना अमृत के समान है किन्तु भोजन करने के पश्चात् जल पीना हानिकारक है।

क्रोधो वैवस्तो राजा तृष्णा वैतरणी नदी।
विद्या कामदुधा धेनुः संतोषो नन्दनं वनम्॥

चाणक्य नीति, 8/14

क्रोध यमराज के समान है, तृष्णा वैतरणी नदी है क्योंकि तृष्णा के कारण मनुष्य स्वर्ग प्राप्त नहीं कर सकता, विद्या समस्त इचछाओं को पूर्ण करने वाली काम धेनु के समान है और सन्तोष इन्द्र के नन्दन वन के समान सुखकारी है।

सुखार्थी चेत् त्यजेद्विद्यां विद्यार्थी चेत् त्यजेत्सुखम्।
सुखार्थिनः कुतो विद्या कुतो विद्यार्थिनः सुखम्॥

चाणक्य नीति, 10/3

सुख चाहने वाला विद्या पढ़ना छोड़ दे और विद्या पढ़ने की इच्छा वाला सुख की इच्छा छोड़ दे। सुखार्थी को विद्या कहाँ और विद्यार्थी को सुख कहाँ।

बुद्धिर्यस्यबलं तस्य निर्बुद्धेस्तु कुतो बलम्।
वने सिंहो मदोन्मत्तः शशकेन निपातितः॥

चाणक्य नीति, 10/16

जिस के पास बुद्धि होती है उसी के पास बल होता है, बुद्धिहीन के पास बल कहाँ। जैसे वन में घमन्ड में डूबे हुये सिंह को बुद्धिमान खरगोश ने कुएं में गिरा दिया।

ब्राह्मण

अनभ्यासेन वेदानां आचारस्य च वर्जनात्।
आलस्याद् अन्नदोषाच्च मृत्युर्विप्राञ्जिघांसति॥

मनु. 5/4

वेद का अभ्यास न करने से, सदाचार का त्याग करने से, आलस्य से और अन्न दोष से मृत्यु ब्राहण को मारना चाहती है अर्थात् ब्राह्मण का पतन हो जाता है, नाश हो जाता है।

सम्मानाद् ब्राह्मणो नित्यमुद्विजेत् विषादपि।
अमृतस्येव चाकाङ्क्षेदवमानस्य सर्वदा॥

मनु. 2/162

ब्राह्मण सम्मान से विष के समान नित्य उदासीनता रखे तथा अपमान की अमृत के समान आकाङ्क्षा रखे (क्योंकि) जो अपमान से डरता है और सदा सम्मान की इच्छा करता है, वह निकृष्ट एवं पतित आचरण करने वाले की भी प्रशंसा करेगा और असत्य एवं अधर्म को भी उचित बताने का प्रयास करेगा।

तपो विद्या च विप्रस्य निःश्रेयसकरं परम्।
तपसा किल्विषं हन्ति विद्ययाऽमृतमश्नुते ॥

मनु.12/104

तप तथा विद्या ब्राह्मण के परम कल्याम के लिये, मोक्ष के लिये श्रेष्ठ साधन हैं, वह तप से पापों को नष्ट करता है और ज्ञान अर्थात् ब्रह्मज्ञान से मोक्ष को प्राप्त करता है।

ब्राह्मणः सर्वलोकानां महान्तो धर्मसेतवः।
धनत्यागाभिरामाश्च वाक्संयमरताश्च ये ॥

महाभारत अध्याय, 151/4

ब्राह्मण समस्त समाज को धर्म से जोड़ने वाले सेतु के समान है। वह सभी लोगों के द्वारा धार्मिक कार्य किये जाने में सहायता करने के लिये सर्वदा तत्पर रहता है। संसार में एक मात्र ब्राह्मण ही है जो धन संपत्ति का लोभ नहीं करता और धन का त्याग करके प्रसन्न होता है तथा वाणी पर संयम रखता है।

रमणीयश्च भूतानां निधानं च धृतव्रताः।
प्रणेतारश्च लोकानां शास्त्राणां च यशस्विनः॥

महाभारत अध्याय, 151/5

ब्राह्मण समस्त लोगों के लिये रमणीय उत्तम निधि के समान हैं। वे दृढ़ता पूर्वक व्रत का पालन करने वाले, लोक का नेतृत्व करने वाले, शास्त्रों के निर्माता, ज्ञाता एवं परम यशस्वी होते हैं।

शूद्रो ब्राह्मणतामेति ब्राह्मणश्चैति शूद्रताम्।
क्षत्रियाज्जातमेवन्तु विद्याद्वैश्यात्तथैव च॥

मनु.10/65

शूद्र अपने ज्ञान, गुण तथा कर्म के आधार पर ब्राह्मणत्व को प्राप्त करता है और इसके विपरीत अज्ञान, अवगुणों तथा दुष्कर्मों के कारण ब्राह्मण शूद्रता को प्राप्त करता है। इसी प्रकार क्षत्रिय और वैश्य के विषय में भी जानना चाहिये।

पर्जन्य नाथा पशवो राजानो मन्त्रि बान्धवाः।
पतयो बान्धवाः स्त्रीणां ब्राह्मणा वेद बान्धवाः॥

विदुर नीति,2/38

मेघ पशुओं के रक्षक होते हैं, मन्त्री राजा की सहायता करने वाले होते हैं, पति स्त्रियों के रक्षक एवं सहायक होते हैं तथा ब्राह्मण वेद की रक्षा करने वाले वेद के भाई होते हैं।

अपवित्र लक्ष्मी को दूर हटाना

या मा लक्ष्मीः पतयालूरजुष्टा ऽभि चस्कन्द वन्दनेव वृक्षम् । अन्यत्रास्मत्सवितस्मामितो धा हिरण्यहस्तो वसुनोरराणः॥

अथर्व. 7/20/2

(सवितः) हे सविता देव ! (पतयालूः) पतन की ओर ले जाने वाली, (अजुष्टा) सेवन करने अर्थात् श्रेष्ठ प्रकार से उपभोग करने के अयोग्य (या लक्ष्मीः) जो लक्ष्मी (मा अभिचस्कन्द) मेरे पास आ गयी है, जैसे (वन्दना वृक्षं इव) लता वृक्ष के ऊपर लिपट जाती है, (तां इतः अन्यत्र अस्मात् धाः) उसे हमसे दूर कहीं और स्थापित कर दीजिये, हमारे पास से हटा दीजिये। (हिरण्यहस्तः) हे स्वर्णिम हाथों वाले प्रभो ! (नः वसु रराणः) हमें श्रेष्ठ धन प्रदान कीजिये।

न वित्तेन तर्पणीयो मनुष्यः। कठोपनिषद्,1/27

मनुष्य कभी धन से सन्तुष्ट नहीं हो सकता अतएव वह अनुचित कार्यों से धन एकत्र करने का प्रयास करता है जिससे उस का जीवन और परिवार नष्ट हो जाता है।

इसीलिये भगवान् से केवल पवित्र धन की प्रार्थना की गई है।

सदाचार एवं दुराचार

आचारः परमो धर्मः श्रुत्युक्तः स्मार्त्त एव च।
तस्मादस्मिन्त्सदा युक्तो नित्यं स्यादात्मवान्द्विजः ॥

मनु. 1.108

वेद एवं वेदानुकूल स्मृतियों में प्रतिपादित धर्म का आचरण करना ही परम धर्म है। अतएव आत्मज्ञान के इच्छुक द्विज को सदैव सदाचार से युक्त रहना चाहिये।

गीता में कहा है -

पार्थ नैवेह नामुत्र विनाशस्तस्य विद्यते।
न हि कल्याण कृत्कश्चित दुर्गतिं तात गच्छति ॥

गीता 6.40

हे पार्थ! कल्याण कारी कर्म करने वाले किसी भी पुरुष का विनाश नहीं होता तथा न इस लोक में और न परलोक में उसकी दुर्गति होती है।

वेद में कहा है **'यस्य छायामृतं यस्य मृत्युः'** यजु. 25.13
भगवान् की छाया अर्थात् कृपा ही अमृत है और उसकी अकृपा ही मृत्यु है।

अतः हमें भगवान् की कृपा प्राप्त करने के लिये सदा श्रेष्ठ मार्ग पर चलना चाहिये।

स्वस्ति पन्थामनु चरेम् सूर्याचन्द्रमसाविव।
पुनर्ददताघ्नता जानता सं गमेमहि ॥

ऋग्.5/51/15

हम सूर्य एवं चन्द्रमा के समान जगत् का कल्याण करने वाले मार्ग पर चलें, और बार बार दान देने वालों, हिंसा न करने वालों तथा विद्वानों के साथ रहें अर्थात् उनके सम्पर्क में आयें तथा उनके अनुरूप आचरण करें।

यथा चित्तं तथा वाचो यथा वाचस्तथा क्रिया।
चित्ते वाचि क्रियायां च साधुनामेकरूपता ॥

सुभाषित

जैसा मन वैसा वचन और जैसा वचन वैसा कर्म। इस प्रकार सज्जनों के मन, वचन तथा कर्म में एकरूपता होती है।

आजारप्रभवो धर्मो धर्मादायुर्विवर्धते ॥

महाभारत अनु. पर्व. 104/155

सदाचार से धर्म की उत्पत्ति होती है और धर्म से आयु बढ़ती है।

वृत्तं यत्नेन संरक्षेद् वित्तमेति च याति च।
अक्षीणो वित्ततः क्षीणो वृत्तस्तु हतो हतः॥

विदुर. नीति. 4/30

वृत्त, अर्थात् चरित्र एवं आचरण की रक्षा विशेष यत्न से करनी चाहिये, वित्त अर्थात् धन सम्पत्ति तो आती जाती रहती है। वित्त के क्षीण होने से मनुष्य का नाश नहीं होता परन्तु चरित्र का नाश होने से मनुष्य का पूर्णरूपेण नाश हो जाता है।

आचाराद्विच्युतो विप्रो न वेदफलमश्नुते।
आचारेण तु संयुक्तः सम्पूर्णफल भाग्भवेत्॥

मनु.1/109

धर्माचरण से रहित विप्र वेदाध्ययन के फल को प्राप्त नहीं करता किन्तु जो सदाचार से संयुक्त है वह विहित कर्मों के फल को प्राप्त करता है।

आचाराल्लभते ह्यायुराचारादीप्सिताः प्रजाः।
आचारद्धनमक्षय्यमाचारो हन्त्यलक्षण्॥

मनु.4/156

सदाचार से दीर्घ आयु, उत्तम सन्तान तथा अक्षय धन प्राप्त होता है। सदाचार अवगुणों तथा अधर्म के बुरे लक्षणों को नष्ट कर देता है।

वेदास्त्यागश्च यज्ञाश्च नियमाश्च तपांसि च।
न विप्रदुष्टभावस्य सिद्धिं गच्छन्ति कर्हिचित्॥

मनु.2/97

दुष्टस्वभाव वाले विप्र के वेदपाठ, त्याग, यज्ञ, नियम तथा तप आदि कर्म कभी सफल नहीं होते। अतः ब्राह्मण के लिये दुष्टता एवं दुराचार का परित्याग सर्वाधिक महत्वपूर्ण है।

नास्तिक्यं वेदनिन्दा च देवतानाम् च कुत्सनम्।
द्वेषं दम्भं च मानं च क्रोधं तैक्ष्ण्यं च वर्जयेत्॥

मनु.4/163

नास्तिकता, वेदनिन्दा, देवतावों के प्रति कुत्सित भाषण, शत्रुता, द्वेष. दम्भ, अभिमान, क्रोध, तैक्ष्ण्य अर्थात् स्वभाव में अनावश्यक उग्रता, कटुता एवं रूखापन, इन सब का परित्याग करे।

परिमाऽग्ने दुश्चरिताद्बाधस्वा मा सुचरिते भज।
उदायुषा स्वायुषोदस्थाममृताँ२ अनु॥

यजु.4/28

(अग्ने) हे प्रभो ! (दुश्चरितात् मा परिवाद्धस्व) मुझे दोषपूर्ण निकृष्ट आचरण से रोकिये तथा (सुचरिते मा आभज) श्रेष्ठ सदाचार के मार्ग पर प्रवृत्त कीजिये, जिससे मैं (उदायुषा) उत्तम जीवन (स्वायुषा) तथा उत्तम आयु अर्थात् दिव्य गुण, कर्म तथा स्वभाव से युक्त होकर (अमृतान् अनु उद् अस्थाम्) अमरत्व को प्राप्त करूँ।

दुराचारो हि पुरुषो लोके भवति निन्दितः।
दुःखभागी च सततं व्याधितोऽल्पायुरेव च॥

मनु. 4/157

दुराचारी पुरुष संसार में सज्जनों के मध्य में निन्दित होने वाला, निरन्तर दुःख भोगने वाला, अनेक प्रकार के रोगों से ग्रस्त होने वाला तथा अल्प आयु वाला होता है।

न हीदृशमनायुष्यं लोके किञ्चन विद्यते।
यादृशं पुरुषस्येह परदारोपसेवनम्॥

मनु. 4/134

पर स्त्री से सम्भोग करने के समान आयु क्षीण करने वाली अन्य कोई वस्तु संसार में नहीं है।

प्रातःकाल उठने का लाभ

प्राता रत्नं प्रातरित्वा दधाति तं चिकित्वान्
प्रतिगृह्या नि धत्ते। तेन प्रजां वर्धयमान आयू
रायस्पोषेण सचते सुवीरः॥ ऋग्. 1/125/1

सूर्य (प्रातः प्रातः इत्वा) सबेरे सबेरे आकर लोगों को (रत्नं दधाति) रत्न देता है। (तं चिकित्वान्) बुद्धिमान् सुन्दर वीर पुरुष उसके महत्व को जानकर (प्रतिगृह्य नि धत्ते) उस धन को गृहण करके अपने पास सुरक्षित रख लेता है और (तेन आयुः प्रजां वर्धयमानः) उससे अपनी आयु तथा सन्तानों की वृद्धि करते हुये (रायः पोषेण सचते) धन और पुष्टि से अर्थात् ऐश्वर्य एवं स्वास्थ्य प्राप्त करता है।

उप क्षरन्ति सिन्धवो मयोभुवं ईजानं च यक्ष्यमाणं च धेनवः। पृणन्तं च पपुरिं च श्रवस्यवो घृतस्य धाराउपयन्तिविश्वतः॥

ऋग्.1/125/4

(ईजानं च यक्ष्यमाणं च) इस समय यज्ञ करने वालों तथा जो भविष्य में यज्ञ करने वाले हैं, उनके लिये (मयोभुवः सिन्धवः क्षरन्ति) सुख देने वाली नदियाँ बहती हैं। (पृणन्तं पपुरि च) सब को सुखी करने वाले तथा धन से तृप्त एवं सन्तुष्ट करने वाले को (श्रवस्यवः धेनवः) अन्न की इच्छा करती हूयी गायें (घृतस्य धारा उपयन्ति) सब ओर से घृत की धारायें उपलब्ध कराती हैं, दुग्ध, घृत आदि से सम्पन्न करती हैं।

यश की प्राप्ति

यशा इन्द्रो यशा अग्निर्यशाः सोमो अजायत।
यशा विश्वस्य भूतस्याहमस्मि यशस्तमः॥

अथर्व. 6/39/3

हे प्रभो ! जिस प्रकार (यशा इन्द्रः) सूर्य यशस्वी होकर उत्पन्न हुआ है, (यशा अग्निः) अग्नि यशस्वी होकर उत्पन्न हुआ है, (यशा सोमो अजायत) चन्द्रमा यशस्वी होकर उत्पन्न हुआ है, उसी प्रकार (यशा विश्वस्य भूतस्य) समस्त यशस्वी

प्राणियों में (अहम् अस्मि यशस्तमः) मैं सबसे अधिक यशस्वी बनूँ।

इस सुन्दर मन्त्र में किसी व्यक्ति से नहीं बल्कि अग्नि, सूर्य तथा चन्द्रमा से प्रेरणा लेकर उन्हीं के समान प्रकाशवान, पवित्र तथा तेजस्वी बनकर सब का कल्याण करते हुये यशस्वी बनने की शिक्षा दी गयी है।

यशो मा द्यावापृथिवी यशो मेन्द्रबृहस्पती।
यशो भगस्य विन्दतु यशो मा प्रतिमुच्यताम्।
यशसा ३स्याः संसदोऽहं प्रवदिता स्याम्॥

साम. पूर्वा.6/3/10, क्र.सं. 611

(यशः मा द्यावा पृथिवी) द्युलोक तथा पृथिवी लोक मुझे यश प्राप्त करायें, यशस्वी बनायें, (यशः मा इन्द्र बृहस्पती) इन्द्र तथा बृहस्पति मुझे यश प्रदान करें। (यशः भगस्य विन्दतु) भग देवता मुझे यश प्राप्त करायें। (यशः मा प्रतिमुच्यताम्) मैं यश से कभी वञ्चित न होऊँ, (यशसा अस्याः संसदः अहम् प्रवदिता स्याम) इस संसद में यश से युक्त हो कर में भांषण करूँ प्रवक्ता बनूँ।

यथेन्द्रो द्यावापृथिव्योर्यशस्वान् यथाप ओषधीषु यशस्वतीः एवा विश्वेषु देवेषु वयं सर्वेषु यशसः स्याम॥

अथर्व.6/58/2

(यथा इन्द्रः द्यावा पृथिव्योः यशस्वान्) जिस प्रकार इन्द्र, द्युलोक तथा पृथिवी के बीच में यशस्वी हैं, (यथा आपः ओषधीषु यशस्वीः) जिस प्रकार जल ओषधियों में यश से युक्त हैं, (एवा विश्वेषु देवेषु) उसी प्रकार समस्त देवों में (सर्वेषु वयं यशसः स्याम) और समस्त प्राणियों में हम यशस्वी हो जायँ।

उन्नति का मार्ग

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम्। आददेऽध्वरकृतं देवेभ्य इन्द्रस्य बाहुरसि दक्षिणः सहस्रभृष्टिः शततेजा वायुरसि तिग्मतेजा द्विषतोवधः॥

यजु. 1.24

सविता देव की इस सृष्टि में अश्वनि देवों की बाहुओं अर्थात् दूसरों की सहायता करने वाली, उन्हें निरोग तथा दुःखों से मुक्त करने वाली भुजाओं और पूषा के हाथों अर्थात् दूसरों का पालन पोषण करने वाले परोपकार करने वाले हाथों से तुम्हें देवों के लिये, विद्वानों के लिये (अध्वर कृतं) हिंसा तथा कुटिलता रहित श्रेष्ठ कर्मों द्वारा उनकी सब प्रकार से भलायी के लिये, सब के परोपकार के लिये (आददे) धारण करता हूँ, नियुक्त करता हूँ।

(इन्द्रस्य दक्षिणः बाहुः असि) तुम इन्द्र की दाहिनी भुजा हो, (सहस्र भृष्टिः) हज़ारों शत्रुओं का नाश करने वाले,

(शततेजा) सैकड़ों प्रकार के तजों से युक्त, (वायुरसि) वायु के समान तीव्र गति एवं बल से युक्त, (तिग्मतेजा) अत्यन्त तीक्ष्ण तेज, जिसके सामने शत्रु टिक न सके, से परिपूर्ण हो।

हमें देवों, विद्वानों तथा श्रेष्ठ जनों की सब प्रकार से सहायता करने वाले एवं सहस्रों शत्रुओं का नाश करने वाले बनना चाहिये। कर्म करते समय हमें यह विश्वास रखना चाहिये कि हम इन्द्र की दाहिनी भुजा हैं और तदनुसार श्रेष्ठता तथा वीरतापूर्ण कर्म के लिये ही परमात्मा ने हमें जन्म दिया है।

हमें कभी अपने को निर्बल तथा असहाय समझकर उद्देश्य एवं लक्ष्य विहीन जीवन व्यतीत नहीं करना चाहिये प्रत्युत सज्जनों की रक्षा तथा दुष्टों का नाश करने के लिये सतत् संघर्ष करना चाहिये ।

कृतं मे दक्षिणे हस्ते जयो मे सव्य आहितः।
गोजिद् भूयासमश्वजिद् धनंजयो हिरण्यजित्॥

अथर्व. 7.50.8

(कृतं मे दक्षिणे हस्ते) मेरे दाहिने हाथ में कर्म हो, प्रयास हो, पुरुषार्थ हो (जयः मे सव्य आहितः) तथा मेरे बायें हाथ में जय हो, विजय हो। (गोजित् अश्वजित् हिरण्यजित् धनंजयः भूयासम्) मैं गौवों, अश्वों, सुवर्ण एवं विविध प्रकार के धनों का विजेता बनूँ।

मनुष्य को सदा श्रेष्ठ कर्म करके विजयश्री, लक्ष्मी एवं ऐश्वर्य प्राप्त करना चाहिये।

तुभ्यं वातः पवतां मातरिश्वा तुभ्यं वर्षन्त्वमृतान्यापः। सूर्यस्ते तन्वे३शं तपाति त्वां मृत्युर्दयतां मा प्र मेष्ठाः॥

अथर्व.8/1/5

(मातरिश्वा वातः तुभ्यं पवतां) अंतरिक्ष में संचरण करने वाला वायु तुम्हारे लिये पवित्र होकर प्रवाहित हो, (आपः तुभ्यं अमृतानि वर्षन्तां) जल तुम्हारे लिये अमृत की वर्षा करें, (सूर्यः ते तन्वेशं तपति) सूर्य तुम्हारे शरीर के लिये सुखदायक होकर तपे, मृत्यु तुम्हारे ऊपर दया करे। (मा प्र मेष्ठाः) तुम किसी प्रकार की हिंसा को प्राप्त न हो।

मेष्ठाः, मीङ् हिंसायाम् लुङ्।

उद्यानं ते पुरुष नावयानं जीवातुं ते दक्षतातिं कृणोमि। आ हि रोहेममममृतं सुखं रथमथ जिर्विर्विदथमा वदासि॥

अथर्व.8/1/6

(पुरुष) हे पुरुष ! (ते उद्यानं तुम्हारी गति उन्नति की ओर अग्रसर होने वाली हो, (न अवयानं) अवनति की ओर नहीं। (ते

जीवातुं) तुम्हारे दीर्घ जीवन के लिये तुम्हें (दक्षताम्) दक्ष तथा बलशाली बनाता हूँ, (इमं अमृतं सुखं रथम्) इस अमृतमय अर्थात् मोक्ष की ओर ले जाने वाले सुखकारक शरीर रूपी रथ पर चढ़ो और (अथ जिर्विः) वृद्ध होने पर (विदथं आवदासि) ज्ञान को उपदेश करो।

ऋषी बोधप्रतीबोधावस्वप्नो यश्च जागृविः।
तौ ते प्राणस्य गोप्तारौ दिवा नक्तं च जागृताम्॥

अथर्व. 5/30/10

बोध अर्थात् ज्ञान और प्रतिबोध अर्थात् जागृत रहना, ये दो ऋषि हैं, (अस्वपनः यः च जागृविः) एक निद्रा रहित है और दूसरा जागृत रहता है। (तौ ते प्राणस्य गोप्तारौ) वे दोनों तुम्हारे प्राणों के रक्षक हैं, (दिवा नक्तं च जागृतां) वे तुम्हारे अन्दर दिन रात जागते रहें।

उन्नति के लिये जहाँ सब प्रकार का ज्ञान आवश्यक है, वहीं जीवन में प्रतिबोध अर्थात् आलस्य रहित होकर सावधान रहना, अपनी बुराइयों तथा संभावित आपत्तियों आदि से अपनी रक्षा करने के लिये सदा जागृत रहना, सतर्क रहना भी आवश्यक है।

प्रियं मा कृणु देवेषु प्रियं राजसु मा कृणु।
प्रियं सर्वस्य पश्यत उत शूद्रे उतार्ये॥

अथर्व. 19/62/1

(देवेषु) देवों में, ब्राह्मणों में (मा) मुझे (प्रियं कृणु) प्रिय कीजिये, (राजसु) राजाओं तथा क्षत्रियों में (मा) मुझे (प्रियं कृणु) प्रिय कीजिये (उत) और (शूद्रे) शूद्रों में (उत आर्ये) तथा श्रेष्ठ आचरण वाले वैश्यों में मुझे प्रिय कीजिये। (पश्यतः सर्वस्य) सभी देखने वाले अर्थात् सभी प्राणियों में मुझे (प्रियम्) प्रिय बनाइये।

सब का प्रिय बनना, सब की भलायी करना सफलता का मूल मंत्र है।

इदाह्नः पीतिमुत वो तदं धुर्न,
ऋते श्रान्तस्य सख्याय देवाः।
ते नूनमस्मे ऋभवो वसूनि,
तृतीये अस्मिन् त्सवने दधात॥

ऋग्. 4/33/11

(न श्रान्तस्य ऋते सख्याय देवाः) कठिन परिश्रम के बिना देवता किसी के मित्र नहीं बनते, किसी की सहायता नहीं करते। (ऋभवो) हे बुद्धिमानो ! (इदा अह्नः) दिन के इस भाग में देवों ने (आप के बुद्धिमत्ता पूर्ण परिश्रम के कारण ही) (वः) आप को (पीतिम् मदं धुः) श्रेष्ठ पेय पदार्थ तथा आनन्द प्रदान किया है। आप (अस्मिन् तृतीये सवने) इस तृतीय सवन में (अस्मे वसूनि नूनं दधात्) हमें धन अवश्य दीजिये।

जीवन में सफलता एवं धन की प्राप्ति के लिये बुद्धिमत्ता एवं दक्षता से, कठिन परिश्रम तथा देवों की सहायता अत्यन्त आवश्यक है।

स्वं वाजिंस्तन्वं कल्पयस्वं स्वयं यजस्व स्वयं जुषस्व। महिमा ते ऽन्येन न सन्नशे॥

यजु. 23/15

(वाजिन्) हे बलवान् ! (तन्वं स्वयं कल्पयस्व) अपने शरीर को स्वयं समर्थ बनाओ, (स्वयं यजस्व) स्वयं यज्ञ करो, श्रेष्ठ कर्म करो, (स्वयं जुषस्व) स्वयं राष्ट्र तथा समाज की प्रेमपूर्वक सेवा करो। (ते महिमा न अन्येन सन्नशे) तुम्हारी महानता दूसरों पर निर्भर रहने से नष्ट न हो जाय।

मनुष्य को स्वयं अपनी उन्नति करने का प्रयास करना चाहिये, दूसरों पर निर्भर नहीं रहना चाहिये तथा श्रेष्ठ कल्याणकारी मार्ग पर अकेला चलने का साहस रखना चाहिये।

जीवन में उन्नति के लिये यह भी आवश्यक है कि हम वेदों का ज्ञान रखने वाले विद्वानों के बताये हुये मार्ग पर चलें, मूर्खों के बताये मार्ग पर नहीं अन्यथा हमारी स्थिति ऐसी होगी जैसी कि एक अंधे के पीछे चलने वाले दूसरे अंधे की होती है।

उपनिषदों में यह महत्व पूर्ण शिक्षा इस प्रकार दी गयी है-

अविद्यायामन्तरे वर्तमानाः
स्वयं धीराः पण्डितम्मन्यमानाः।

दन्द्रम्यमाणाः परियन्ति मूढा

अन्धेनैव नीयमाना यथान्धाः ॥

मुण्डक.1/2/8 *कठ. 1/2/5*

(अविद्यायाम् अन्तरे वर्तमानाः मूढा) केवल अविद्या में वर्तमान् अर्थात् केवल अविद्या को जानने वाले मूर्ख लोग, (स्वयं धीराः पण्डितम्मन्यमानाः) अपने को धीर और विद्वान् मानते हुये, (दन्द्रम्यमाणाः परियन्ति) दम्भ से भरे हुये तथा विपरीत मार्ग पर चलते हुये इधर उधर इस प्रकार भटकते रहते हैं (यथा अन्धेन एव नीयमानाः अन्धाः) जैसे अन्धे के द्वारा ले जाये गये अन्धे।

दीर्घ जीवन

सौ वर्षों तक जीने की प्रार्थना (जीवेम शरदःशतम्) *यजु.36.24* प्रार्थना मन्त्रों में दी जाचुकी है।

त्र्यायुषं जमदग्नेः कश्यपस्य त्र्यायुषम्।

यद्देवेषु त्र्यायुषं तन्नो अस्तु त्र्यायुषम् ॥

यजु. 3.62

(जमदग्नेः त्र्यायुषं) हमारे चक्षु की दृष्टि शक्ति की तिगुनी आयु हो, (कश्यपस्य त्र्यायुषं) हमारी प्राणशक्ति की तिगुनी आयु हो, (यत् देवेषु त्र्यायुषं) देवों में जो तिगुनी आयु होती है, (तत् नः अस्तु त्र्यायुषं) वह तिगुनी आयु हमें प्राप्त हो।

चक्षुर्वै जमदग्निः ऋषिः। *यजु. 13.56*

चक्षु ही जमद्गनि ऋषि है।

कश्यपो वै कूर्मः। कूर्मो वै प्राणः। कश्यप = प्राण

प्राण कश्यप ऋषि है। *शतपथ. 8/1/2/36*

इसीलिये नाक के एक नथुने को वसिष्ठ ऋषि और दूसरे को कश्यप ऋषि कहा जाता है।

शतमिन्नु शरदो अन्ति देवा यत्रा नश्चक्रा जरसं तनूनाम्। पुत्रासो यत्र पितरो भवन्ति मा नो मध्या रीरिषतायुर्गन्तोः॥

ऋग्.1/89/9 *यजु.25/22*

(यत्र पुत्रासः पितरः भवन्ति) जिस आयु में हमारे पुत्र अपने पुत्रों के पिता बन जाते हैं, उस अवस्था तक (गन्तोः) पहुँचते हुये (नः आयुः मध्य मा रीरिषत्) हमारी आयु बीच में ही न समाप्त हो जाय। हे देवों ! आपके समीप रहते हुये हमारी वृद्धावस्था का जीवन कम से कम (शतः शरदः) सौ वर्ष का हो।

दृते दृꣳह मा ज्योक्ते सन्दृशि जीव्यासं ज्योक्ते सन्दृशि जीव्यासम्।

यजु. 36/19

(दृते) दुष्टों एवं दुखों का नाश करने वाले हे प्रभो ! (दृं ह मा) मुझे दृढ़ कीजिये, शक्तिशाली बानाइये ताकि मैं (ते संदृशि) आपके दर्शन अर्थात् ज्ञान चक्षुओं से आपके दर्शन करता हुआ, (ज्योक्) चिरकाल तक (जीव्यासम्) जीवित रह सकूँ। (ज्योक्

ते संदृशि जीव्यासम्) आदर एवं विनम्र प्रार्थना हेतु यह पुनर्वचन है।

न देवानामति व्रतं शतात्मा च न जीवति। तथा युजा वि वावृते॥ *ऋग्. 10/33/9*

(देवानां व्रतं अति) देवों के व्रत अर्थात् नियमों का उल्लंघन करने वाला कोई मनुष्य (शतात्मा च न जीवति) सौ वर्ष तक जीवित नहीं रहता (तथा युजा विवावृते) तथा पूर्ण आयु से पहले ही अपने संबन्धियों और साथियों से बिछुड़ जाता है।

मधुमय जीवन

मधुवाता ऋतायते मधु क्षरन्ति सिन्धवः।
माध्वीर्नः सन्त्वोषधीः॥

ऋग्. 1/90/6 *यजु.13/27*

(मधुवाता ऋतायते) हमारे लिये वायु मधुर होकर बहे, वायु हमारे जीवन में माधुर्य लाये, (मधु क्षरन्ति सिन्धवः) नदियाँ हमारे लिये मधुर, स्वास्थ्यकारी शुद्ध जल बहाकर लायें, हमारे जीवन को मधुर रस से परिपूर्ण कर दें। (माध्वीः नः सन्तु ओषधीः) ओषधियाँ हमारे लिये मधुर हों, पुष्टि कारक मधुर रस से परिपूर्ण हों।

मधु नक्तमुतोषसो मधुमत्पार्थिव१ँरजः।
मधु द्यौरस्तु नः पिता॥

ऋग् 1/90/7 *यजु.13/28*

(मधु नक्तं उत उषसः) रात्रि एवं उषा हमारे लिये मधुमय हों, (मधुमत् पार्थिवं रजः) पृथिवी का कण कण हमारे लिये मधुर हो। (मधु द्यौः अस्तु नः पिता) पिता के समान पालन एवं रक्षा करने वाला द्युलोक हमारे लिये मधुमय हो, सुखमय हो।

मधुमान्नो वनस्पतिर्मधुमाँर अस्तु सूर्यः।
माध्वीर्गावो भवन्तु नः ॥

ऋग्. 1/90/8 *यजु. 13/39*

(मधुमान् नः वनस्पतिः) वनस्पतियाँ अर्थात् वृक्ष आदि हमारे लिये मधुमय हों, सुखकारी हों, एवं मधुर रस से पूर्ण हों, (मधुमान् अस्तु सूर्यः) सूर्य हमारे लिये मधुमय हो, सूर्य का प्रकाश हमें सुख देने वाला हो। (माध्वीः गावः भवन्तु नः) सूर्य की किरणें तथा गौयें हमारे लिये मधुरिमा से पूर्ण हों, हमें स्वास्थ्यवर्धक दुग्ध देने वाली हों।

जिह्वाया अग्रे मधु मे जिह्वामूले मधूलकम्।
ममेदह क्रतावसो मम चित्तमुपायसि ॥

अथर्व. 1/34/2

(मे जिह्वाया अग्रे मधु) मेरी जिह्वा के अग्र भाग में मधुरता रहे, (जिह्वामूले) मेरी जिह्वा के मूल में मधुरता का बाहुल्य रहे। हे मधुरिमे ! (मम क्रतौ) तुम मेरे कर्म में (इत् अह) निश्चिय से (असः) रहो, जिससे मेरे कर्म मधुर हों, सबको सुख देने वाले हों (मम चित्तं) तथा तुम मेरे मन में, मेरे चित्त एवं अन्तःकरण में (उप आयसि) आ जाओ, जिससे मेरे विचार, मेरी कामनायें

मधुमय हों, सब के लिये सुखकारी हों। इस प्रकार मेरा मन, मेरी वाणी तथा मेरे कर्म सभी मधुर हों।

क्रतु कर्म नाम। (निघण्टु.2/1)

मधुमन्मे निक्रमणं मधुमन्मे परायणम्।
वाचा वदामि मधुमद् भूयासं मधुसंदृशः॥

अथर्व. 1/34/3

(में निक्रमणं मधुमत्) मेरा निकट आना मधुर हो, (मे परायणम् मधुमत्) मेरा जाना मधुर हो, अथवा मेरा कार्य प्रारम्भ करना मधुर हो तथा पूर्ण करना मधुर हो। (वाचा वदामि मधुमत्) मैं मधुर वाणी बोलूँ (भूयासम् मधुसंदृशः) तथा मैं माधुर्य की मूर्ति बन जाऊँ।

मधुमतीरोषधीर्द्याव आपो मधुमन्नो भवत्वन्तरिक्षम्।क्षेत्रस्य पतिर्मधुमान् नो अस्त्वारिष्यन्तो अन्वेनं चरेम॥

ऋग्.4/57/3

(ओषधीः नः मधुमतीः) ओषधियाँ अर्थात् गेहूँ, जौ, चना आदि की फसलें हमारे लिये मधुरता से भरपूर हों, (द्यावः आपः अन्तरिक्षं) द्युलोक, जल तथा अन्तरिक्ष (नः मधुमत् भवतु) हमारे लिये मधुर हों। (क्षेत्रस्य पतिः नः मधुमान् अस्तु) क्षेत्र के स्वामी सभी देव हमारे लिये मधुरता से युक्त हों (अरिष्यन्तः)

तथा किसी तरह से हिंसित अथवा दुःख को प्राप्त न होते हुये हम (एनं अनु चरेम) उनका अनुरसण करें।

सोम

अनेक मूर्ख लोग यह समझते हैं कि सोमरस का अर्थ शराब होता है और इस बहाने वे कहते हैं कि हमारे पूर्वज ऋषि आदि मदिरा पान करते थे, जबकि यह निकृष्ट विचार पूर्ण रूप से असत्य है।

सोम शद्ब बहुत पवित्र है, इसका अर्थ चन्द्रमा होता है और इसका प्रयोग भगवान् के लिये भी किया जाता है।

इस संसार में दो प्रकार की वस्तुयें हैं एक शीतलता देने वाली जिन्हें सोम कहते हैं और दूसरी ऊर्जा और तेज देने वाली जिन्हें अग्नि कहते हैं। इसी लिये संसार को अग्नि- शोमीय जगत कहा जाता है।

सोमरस सोमलता की पत्तियों से कूट कर निकाला जाता था और इसे गौ के दूध में मिलाकर पिया जाता था। आयुर्वेद में इस का विस्तृत विवरण उपलब्द्ध है। वैदिक वाङ्मय में सोम का महत्व इतना अधिक है कि ऋग्वेद के नवें मण्डल के अधिकांश सूक्तों का देवता सोम है।

सोमः पवते जनिता मतीनां जनिता दिवो जनिता पृथिव्याः। जनिताग्नेर्जनिता सूर्यस्य जनितेन्द्रस्य जनितोत विष्णोः॥

ऋग्.9.96.5

निरुक्त परिषिस्ठ. 13 12.14 के अनुसार अर्थ –

(सोमः पवते) सब का आत्म स्वरूप परमेश्वर सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के कण कण में गति कर रहा है। वह परमात्मा (जनिता मतीनां) बुद्धियों को उत्पन्न करने वाला, समस्त ज्ञानों का प्रकाशक (दिवो जनिता) द्युलोक को उत्पन्न करने वाला, (जनिता पृथिव्याः) पृथिवी को उत्पन्न करने वाला, (जनिता अग्निः) अग्नि को उत्पन्न करने वाला, (सूर्यस्य जनिता) सूर्य को उत्पन्न करने वाला, (जनिता इन्द्रस्य) विद्युत अथवा ऐश्वर्य को उत्पन्न करने वाला गतिशील एवं प्रेरक, (उत जनयिता विष्णोः) तथा विष्णु अर्थात् व्यापक यज्ञ को उत्पन्न करने वाला है।

ऋषिः वासिष्ठ उपमन्युः देवताः- पवमानः सोमः। छन्दः त्रिष्टुप्।

ध्यान देने की बात है कि इस मन्त्र का देवता 'पवमानः सोमः' है क्योंकि सोम का काम है पवित्र करना। सोमरस के पान से मनुष्य की बुद्धि पवित्र होती है उसे आनन्द प्राप्त होता है और श्रेष्ठ मार्ग पर चलने की प्रेरणा मिलती है जब की सुरापान से

शणिक शक्ति मिलती है, बुद्धि का नाश हो जाता है और मनुष्य बुरे से बुरे कर्म करने में प्रवृत्त हो जाता है।

वृषा शोणो अभिकनिक्रदद्गा नदयन्नेति पृथिवीमुत द्याम्। इन्द्रस्येव वग्नुरा शृण्व आजौ प्रचेतयन्नर्षति वाचमेमाम्॥

सामवेद,उत्तरार्चिकक्रं.सं.806 *ऋग्.9/97/13*

(शोणः) उत्साही क्रिया शील (वृषा) सब पर सुख की वर्षा करने वाला विद्वान् (गाः) वेद वाणी के (अभिकनिक्रदद्) श्रेष्ठ प्रकार से उच्चारण के द्वारा (नदयन्) प्रभु की स्तुति करते हुये (पृथिवी उत द्याम्) पृथिवी तथा द्युलोक को गुंजायमान करता हुआ (एति) जीवन पथ पर आगे बढ़ता है।

(आजौ) जीवन के संघर्षों में (वग्नुः इव आ शृण्वे) उसकी तेजस्वी वाणी इन्द्र की वाणी के समान सुनाई देती है। (इमाम् वाचम्) इस वेद वाणी से (प्रचेतयन्) सब को प्रेरणा देता हुआ (आ अर्षति) वह सर्वत्र भ्रमण करता है।

ऋषिः वासिष्ठ उपमन्युः देवताः- पवमानः सोमः। छन्दः त्रिष्टुप्।

रसाय्यःपयसा पिन्वमान ईरयन्नेषि मधुमन्तमंशुम्। पवमानः संतनिमेषि कृण्वन्निन्द्राय सोम परिषिच्यमानः॥

साम. उत्त. क्र. सं. 807 *ऋग्. 9/97/14*

(रसाय्यः पयसा पिन्वमानः) दूध के साथ मिला हुआ मधुर सोमरस (मधुमन्तं अंशुं ईरयन् एषि) सब को प्रेरित करता है (परिषिच्यमानः पवमानः संतनि कृण्वन् इन्द्राय एषि) जल के साथ मिलकर (छाने जाने पर) सोमरस धारा के रूप में पात्र में गिरता है और तब इन्द्र के लिये समर्पित किया जाता है।

ऋषिः वासिष्ठ उपमन्युः देवताः- पवमानः सोमः। छन्दः त्रिष्टुप्।

एवा पवस्व मदिरो मदायो दग्राभस्य नमयन् वधस्नैः।
परि वर्णं भरमाणो रुशन्तं गव्युर्नो अर्ष परि सोम सिक्तः॥

साम.उत्त.क्र.सं.808 *ऋग्.9/97/15*

(सोम) हे सोम ! (मदिरः) आनन्द देने वाले तुम (मदाय पवस्व) इन्द्र को आनन्द देने के लिये अपना रस इन्द्र को प्रदान करो, (जिससे इन्द्र अपने मेघ रूपी शत्रु वृत्र का हनन करते हैं।) (रुशन्तं वर्णम् परि भरमाणः) तेजस्वी वर्ण को धारण करके तुम (सिक्तः गव्युः नः परि अर्ष) यज्ञ के पात्र में गौ के दुग्ध की इच्छा करते हुये हमारे पास आओ।

(ऋषिः- निध्रविः काश्यपः। देवताः- पवमानः सोमः। छन्दः- गायत्री।)

इन्द्रं वर्धन्तो अप्तुरः कृण्वन्तो विश्वमार्यम्।
अपघ्नन्तो अराव्णः॥

ऋग् 9/63/5

(अप्तुरः इन्द्रम् वर्धन्तः) जल मिश्रित सोमरस इन्द्र के उत्साह आनन्द एवं शक्ति को बढ़ाता है, (विश्वम् आर्यम् कृण्वन्तः) सभी को आर्य अर्थात् श्रेष्ठ बनाता है तथा (अपघ्नन्तः अराव्णः) दान न देने वाले, दूसरों का शोषण करने वाले लोगों का नाश करता है।

मन्त्र का आदेश है कि हम अपने सौम्य स्वभाव एवं वैदिक ज्ञान से सबको आर्य अर्थात् श्रेष्ठ बनायें।

कर्त्तव्यमाचरन् काममकृतव्यमनाचरन्।
तिष्ठति प्रकृताचारे स तु आर्य इति स्मृतः ॥

वसिष्ठ स्मृति

जो कर्तव्यों का पालन करता है और निकृष्ट कर्मों को छोड़ देता है तथा स्वभाव से दयालु होता है, वह आर्य कहलाता है।

आर्य शब्द का अर्थ है- **सत्कुलोद्भवः, श्रेष्ठ, संगतः, मान्यः, उदारचरितः, शान्तचित्तः,** -

हलायुध कोष

पुरुरवा – उर्बशी प्रकरण

बिना विवाह के live in relationship में रहना अन्त में दुखदायी होता है, यह तथ्य पुरुरवा- उर्वशी की आख्या में सुन्दरता से दिखाया गया है।

हये जाये मनसा तिष्ठ घोरे वचांसि मिश्रा कृणवावहै नु। न नौ मन्त्रा अनुदितास एते मयस्करन् परतरे चनाहन्॥ *ऋग्. 10/95/1*

(पुरुरव-) पुरुरवा ने कहा (हये घोरे जाये) हे निष्ठुर पत्नी ! (मनसा तिष्ठ) तू प्रेमयुक्त चित्त से क्षणमात्र स्थिर हो। (मिश्रा वचांसि नु कृणवावहै) हम दोनों परस्पर मिले हुए आज शीघ्र कुछ उपयुक्त बातें करें। (नौ एते अनुदितासः मन्त्राः) इस समय हम दोनों में परस्पर किये मन्त्रणा एवं विचार (परतरे चन अहनि) क्या हमें भविष्य में आने वाले दिनों में (मयः न करन्) भी सुख प्रदान नहीं कर सकते ? अवश्य ही कर सकते हैं।

किमेता वाचा कृणवा तवाहं प्राक्रमिषमुषसामग्रियेव। पुरुरवः पुनरस्तं परेहि दुरापना वात इवाहमस्मि॥

ऋग्. 10/95/2

(उर्वशी-) (एता वाचा किं कृणव) केवल इस शुष्क बातचीत से हम दोनों क्या करेंगे ? क्या सुख मिलेगा ? (अहं उषसां अग्रिया इव प्र अक्रमिषम्) मैं उषाके समान तुम्हारे पाससे चली जा रही हूं। इसलिये (पुरूरवः) हे पुरुरवा ! तुम (पुनः अस्तं परेहि) फिर अपने घर लौट जाओ। (अहं वाता इव दुरापना अस्मि) में वायु के समान दुष्प्राप्य हूँ।

इषुर्न श्रिय इषुधेरसना गोषाः शतसा न रंहिः। अवीरे क्रतौ वि दविद्युतन्नोरा न मायुं चितयन्त धुनयः ॥

ऋग्. 10/95/3

पुरुरवा ने कहा – (इषुधेः इषुः श्रिये असना न) तेरे विरह के कारण मेरे तूणीरसे विजय प्राप्ति के लिये वाण नहीं निकल रहा, और (रंहिः गोषाः शतसाः न) बलवान् होता हुआ भी मैं शत्रुओं से गायों को और उनके ऐश्वर्य को नहीं छीन पा रहा हूं (अवीरे क्रतो न वि दविद्युतत्) वीरता से विहीन होने के कारण राज्यकार्य में मेरा सामर्थ्य दिखायी नहीं देता। (उर धुनयः मायुं न चितयन्त) तथा विस्तृत संग्राम में शत्रुओं को कंपा देने वाले मेरे वीर भी सिंहनाद नहीं कर पा रहे हैं।

जज्ञिष इत्था गोपीथ्याय हि दधाथ तत् पुरूरवो म ओजः। अशासं त्वा विदुषी सस्मिन्नहन् न म आशृणोः किमभुग्वदासि ॥

ऋग्.10/95/11

(पुरुरवा के यह कहने पर कि अब वह क्या करे, पृथिवी पर गिर पड़े या मर जाए, उर्वशी ने कहा-

(पुरुरवः) हे पुरुरवा ! (इत्था गोपीथ्याय हि जज्ञिषे) पृथिवी की रक्षा करने के लिये तू मुझमें पुत्ररूप से जन्मा है। (मे तत् ओजः दधाथ) तू ने ही मुझमें गर्भ स्थापित किया है। (विदुषी

सस्मिन् अहन् त्वा अशासं) उस समय मैं भविष्य को जान कर तुझे समझाती थी, परंतु तूने (मे न आशृणोः) मेरी बात नहीं सुनी, नहीं मानी। (किं अभुक् वदासि) अब शोक क्यों कर रहा है ?।

मैं तुम्हारे पुत्र को तुम्हारे पास भेज दूँगी।

पुरुरवो मा मृथा मा प्र पप्तो मा त्वा वृकासो अशिवास उ क्षन्। न वै स्त्रैणानि सख्यानि सन्ति सालावृकाणां हृदयान्येता ॥

ऋग्. 10/95/15

उर्वशी ने कहा (पुरुरवः) हे पुरुरवा ! तुम (मा मृधाः) मृत्यु को प्राप्त न हो, (मा प्र पप्तः) पृथिवी पर मत गिरो, (त्वा अशिवासः वृकासः मा उ क्षन्) तुम्हें भेड़िये आदि न खायें। (स्त्रैणानि सख्यानि न वै सन्ति) स्त्रियों की मैत्री तथा प्रेम से सम्बन्धित बातें स्थायी नहीं होतीं। (एता सालावृकाणां हृदयानि) उनके हृदय तो जंगली भेड़ियों के समान क्रूरता से भरे होते हैं।

यम- यमी सूक्त

ऋग्वेद के यम यमी सूक्त में यह शिक्षा दी गयी है कि सगे भाई बहनो का परस्पर शारीरिक सम्बन्ध बनाना महा पाप है।

पृथिवी सूक्त

अथर्व वेद का पृथिवी सूक्त बहुत सुन्दर है। उसके अनेक मन्त्र मेरी पुस्तक **वेद सुरभि** में दिये गये हैं, उन्हें अवश्य देखें। पृथिवी से सम्बन्धित तीन मन्त्र यहाँ दिये जा रहे हैं –

विश्वंभरा वसुधानी प्रतिष्ठा हिरण्यवक्षा जगतो निवेशनी। वैश्वानरं बिभ्रती भूमिरग्निमिन्द्रऋषभा द्रविणे नो दधातु॥

अथर्व. 12/1/6

(विश्वंभरा) सब का पालन पोषण करने वाली (वसुधानी) सोना, चाँदी, हीरा आदि अनेक रत्नों को अपने अन्दर धारण करने वाली (हिरण्यवक्षा) स्वर्णिम वक्षस्थल वाली अर्थात् जीवन के लिये आवश्यक समस्त पदार्थों को हमें उपलब्ध कराने वाली (जगतो निवेशनी) समस्त प्राणियों को रहने का स्थान देने वाली (वैश्वानरं बिभ्रती) वैश्वानर अग्नि को अपने अन्दर धारण करने वाली, सब को भोजन, ऊर्जा एवं शक्ति प्रदान करने वाली (भूमिः) हमारी मात्र भूमि (अग्निम्) अग्रगामी (इन्द्र-ऋषभौ) इन्द्र के समान पराक्रमी तथा ऋषभ के समान बलवान् वीर पुरुष एवं सब प्रकार का धन हमें प्रदान करे।

यस्याः पुरो देवकृताः क्षेत्रे यस्या विकुर्वते। प्रजापतिः पृथिवी विश्वगर्भामाशामाशां रण्यां नः कृणोतु॥ अथर्व 12/1/43

(यस्याः देवकृताः पुरा) जिसके नगर देवों ने बसाये हैं, (यस्याः क्षेत्रे विकुर्वते) जिसके विभिन्न क्षेत्रों में लोग अपना अपना काम करते हैं, (प्रजापतिः विश्वगर्भा पृथिवीं) प्रजापति समस्त प्राणियों एवं पदार्थों को उत्पन्न करने वाली उस हमारी मातृभूमि की (आशां आशां रण्यां) प्रत्येक दिशाओं को रमणीय (कृणोतु) बनायें।

प्रत्येक देश में अनेक नगरों का सम्बन्ध उनके देवताओं अथवा पूजनीय पूर्वजों से होता है, जैसे हमारे देश में काशी, अयोध्या, मथुरा, काँची, द्वारिका, पुरी आदि। यह नगर हमारे लिये गौरव का विषय होते हैं किन्तु दुर्भाग्य से हमारे देश में अनेक महत्वपूर्ण नगर तथा स्थान विदेशी अत्याचारी आक्रान्ता के नाम से हैं। यह हमारे लिये कैसी लज्जा की बात है।

यद् वदामि मधुमत् तद् वदामि यदीक्षे तद् वनन्ति मा।
त्विषीमानस्मि जूतिमानवान्यान् हन्मि दोधतः ॥

अथर्व. 12/1/58

(यत् वदामि) मैं अपने देश के सम्बन्ध मे जो बोलता हूँ, (तत् वदामि मधुमत्) वह मधुर बोलता हूँ, राष्ट्र के लिये हितकारी तथा सम्मानपूर्ण बात बोलता हूँ। (यत् ईक्षे) मैं जो देखूँ, (तत् मा वनन्ति) उससे मुझे सुख तथा सन्तोष प्राप्त हो, (त्विषीमान् जूतिमान् अस्मि) मैं तेजस्वी, वेगवान् तथा शक्तिशाली हूँ और (अन्यान् दोधतः अवहन्मि) हमारी मातृभूमि का दोहन करने

वाले, शोषण करने वाले विदेशियों अथवा देश द्रोहियों का नाश करता हूँ।

जल

शं नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये।
शं योरभि स्त्रवन्तु नः ॥

ऋग्. 10/9/4 *यजु. 36/12*
साम.पूर्वा.1/3/13, क्र.सं.33 *अथर्व. 1/6/1*

(देवी आपः) दिव्य गुणों से युक्त जल (पीतये नः अभीष्टये) पीने के लिये तथा हमारे अभीष्ट कार्यों की सिद्धि के लिये (शं भवन्तु) सुखकारी हों, शान्तिदायक हों (शं योः अभिस्त्रवन्तु नः) तथा रोग एवं भय आदि का शमन करके हमारे ऊपर चारों ओर से सुख की वर्षा करें।

आपो हि ष्ठा मयोभुवस्ता न ऊर्जे दधातन।
महे रणाय चक्षसे ॥

ऋग्.10/9/1 *यजु.36/14,11/50,*
साम.उत्त. क्र.सं. 1837, *अथर्व. 1/5/1*

(आपः) हे जल ! (हि मयोभुवः स्थ) तुम निश्चय ही सुखकारी हो, (ताः नः ऊर्जे) वह आप हमें अन्न तथा शक्ति (महे रणाय चक्षसे) और तीव्र तथा रमणीय नेत्र ज्योति प्रदान कीजिये। जल चिकित्सा से नेत्र ज्योति तीव्र तथा सुखदायी होती है।

यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः।

उशतीरिव मातरः ॥

ऋग्.10/9/2 *यजु. 36/15,11/51*

साम. उत्त.क्र. सं. 1838 *अथर्व.1/5/2*

हे जल! (उशतीः मातरः इव) जिस प्रकार बच्चे को दूध पिलाने की इच्छा करती हुयी मातायें अपने बच्चे को दूध पिलाती हैं, उसी प्रकार (यःवः शिवतमः रसः) आपका जो कल्याणकारी रस है,(तस्य इह नः भाजयन्ते) उसका आप यहाँ हमें सेवन कराइये।

तस्मा अरं गमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ ।

आपो जनयथा च नः ॥

ऋग्.10/9/3 *यजु. 36/16, 11/52*

साम. उत्त. क्र.सं. 1839, *अथर्व.1/5/3*

(आप) हे जल ! (वः यस्य क्षयाय जिन्वथ) तुम जिस रोग के विनाश के लिये हमारी सहायता करते हो, जिस रोग को दूर करके हमें प्रसन्न करते हों, (तस्मै अरं गमाम) उस कार्य के लिये हम तुम्हें पर्याप्त मात्रा में प्राप्त करें। (नः च आ जनयथ) हमें प्रजनन शक्ति प्रदान करो तथा वंश वृद्धि करने में हमारी सहायता करो।

ईशाना वार्याणां क्षयन्तीश्चर्षणीनाम् ।

अपो याचामि भेषजम् ॥

ऋग्. 10/9/5, *अथर्व. 1/5/4*

(अपः वार्याणां ईशाना) जल अभिलषित वस्तुओं के स्वामी हैं, वे रोग निवारण तथा मनुष्य को जीवित तथा स्वस्थ रखने के लिये अत्यन्त आवश्यक हैं, (चर्षणीनां क्षयन्ती) वे प्राणियों को वसाने वाले हैं, उनके जीवन का आधार हैं। (भेषजम् याचामि) याचना करता हूँ कि जल हमारे लिये ओषधियों के रूप में कार्य करें, हमारे रोगों तथा कष्टों का निवारण करें।

अप्सु मे सोमो अब्रवीदन्तर्विश्वानि भेषजा।
अग्निं च विश्वशंभुवम्॥

अथर्व.1/6/2 ऋग्.1/23/20 (पाठभेद) ऋग्10/9/6

(अप्सु अन्तर्विश्वानि भेषजा) जल में सब ओषधियाँ और (अग्नि च) जगत् को सुख देने वाली अग्नि है। (सोमः मे अब्रवीत्) यह सोम अर्थात् परमात्मा ने मुझसे कहा है।

इदमापः प्र वहत यत् किं च दुरितं मयि।
यद्वाहमभिदुद्रोह यद्वा शेप उतानृतम्॥

ऋग्. 1/23/22,10/9/8

(मयि यत् किं च दुरितं) मुझ में जो कुछ दोष हों, (यत् वा अहं अभिदुद्रोह) जो मैंने किसी से द्रोह किया हो, (यत् वा शेपे) जो मैंने किसी को शाप दिया हो (उत अनृतं) तथा असत्य भाषण किया हो, वे सब दोष (इदं आपः प्रवहत) ये जल बहाकर ले जायँ ताकि मैं शुद्ध हो जाऊं।

ता आपः शिवा अपोऽयक्ष्मंकरणीरपः।

यथैव तृप्यते मयस्तास्त आ दत्त भेषजीः ॥

अथर्व. 19/2/5

(ताः आपः शिवाः अपः) वह जल कल्याण करने वाला है, (आप अयक्ष्मंकरणीः अपः) वह जल यक्ष्मा आदि रोगों को दूर करने वाला है, (ताः ते भेषजीः आदत्त) वह जल तुम्हारे लिये रोगों को दूर करने वाली वह औषधि देने वाला है, (यथा एव मयः तृप्यते) जिससे तुम्हें सुख प्राप्त होता है।

यह जल चिकित्सा का उल्लेख है।

आप इद्वा उ भेषजीरापो अमीवचातनीः ।
आपो विश्वस्य भेषजीस्तास्त्वा मुञ्चन्तु क्षेत्रियात् ॥

अथर्व. 3/7/5

(आपः इत् वै उ ऊषजीः) जल निश्चय ही भेषज अर्थात् औषधि है, (आपः अमीवचातनीः) जल रोग विनाशक है, (आपः विश्वस्य भेषजीः) जल सब प्रकार के रोगों की औषधि है। (ताः त्वा क्षेत्रियात् मुञ्चन्तु) वे जल तुम्हें शरीर के रोगों से मुक्त करें।

अमृतम् उदकनाम्। *(निघण्टु. 1/12)* अमृत का नाम जल है।
आपो वै प्राणाः। *शतपथ. 3/8/2/4*
जल ही प्राण है।
अद्भिर्वा इदं सर्वमाप्तं। *शतपथ. 1/1/1/14*
जल से यह समस्त सृष्टि व्याप्त है।

तीन देवियाँ

वेद में केवल तीन देवियों का उल्लेख है।

इळा सरस्वती मही तिस्रो देवीर्मयोभुवः।
बर्हिः सीदन्त्वस्रिधः॥

ऋग्. 1/13/9, 5/5/8

(इडा, सरस्वती, मही) मातृभाषा, ज्ञान की देवी सरस्वती तथा मही अर्थात् मातृभूमि, (तिस्रः दैवीः मयोभुवः) ये सुख देने वाली तीन देवियाँ (अस्रिधः) क्षीण न होती हुयीं (बर्हिः सीदन्तु) प्रसन्नता पूर्वक यज्ञ में आकर विराजमान हों।

इळा के अर्थ हैं- गौः, भूमि, अन्न, वाणी। पृथ्वी स्थानीय अग्नि को भी इळा कहा जाता है।

निरुक्त. 8/2/13

कुछ मन्त्रों में मही के स्थान पर भारती शद्व का प्रयोग हुआ है। अतः इन मन्त्रों में भारती का अर्थ भारत माता, मातृ भूमि अथवा भारतीय संस्कृति लेना उचित प्रतीत होता है।

शरीर की तीन प्रमुख नाड़ियाँ

ऋग्वेद के मन्त्र संख्या 10/75/5 में आया है-

इमं मे गंगे यमुने सरस्वति........

इसी मन्त्र के आधार पर प्रयाग राज में गंगा, यमुना तथा सरस्वती के संगम की बात कही जाती है, जब कि इस समय सरस्वती अदृश्य है।

हो सकता है कि वैदिक काल में गंगा और यमुना के बीच में सरस्वती नदी स्थित रही हो जो अनेक युगों के दीर्घ काल में पृथिवी में भूकम्प आदि के कारण विलुप्त हो गयी हो।

आध्यात्मिक अर्थ में नदियों को नाड़ी कहा जाता है। अतः इस का अर्थ हुआ कि शरीर के प्रष्ठ भाग में तीन प्रमुख नाड़ियाँ हैं जिनका नाम गंगा, यमुना तथा सरस्वती है।

प्रयाग राज के संगम के समान शरीर में बायीं ओर इडा नाड़ी है जिसे गंगा कहा जाता है, दायीं ओर पिंगला नाड़ी है जिसे यमुना कहा जाता है, बीच में सुषुम्णा नाड़ी है जिसे सरस्वती कहा जाता है।

इडा को सित तथा पिंगला को असित भी कहते हैं क्योंकि गंगा का जल श्वेत है और यमुना का जल अश्वेत है।

योग साधना में इन नाड़ियों का अत्यन्त महत्व है। विस्तृत विवरण के लिये कृपया मेरी पुस्तक **वेद सुरभि** देखें।

अभय

यत इन्द्र भयामहे ततो नो अभयं कृधि। मघवञ्छग्धि तव तन्न ऊतये वि द्विषो वि मृधो जहि॥

ऋग्. 8.61.13, (पाठभेद) साम. पूर्वा. 1.9.2 क्र. सं. 274
अथर्व. 19.15.1 (पाठभेद), साम. उत्त. 10.10.21, क्र.सं. 1321

(इन्द्र) हे इन्द्र! (यतः भयामहे ततः नः अभयम् कृधि) जिससे अथवा जहाँ से हमें भय हो, वहाँ से हमें अभय कीजिये। (मघवन्) हे धनवान् इन्द्र! (शग्धि) आप हमें अभय करने में समर्थ हैं, अतः

(नः ऊतये) हमारी रक्षा के लिये (तव) अपनी शक्ति से (द्विषः वि जहि) हमसे द्वेष करने वाले हमारे शत्रुओं, (मृधः वि जहि) तथा
हमारे साथ हिंसा करने वालों को, हमें दुःख एवं कष्ट देने वालों को, नष्ट कर दीजिये, मार दीजिये।

अभयं नः करत्यन्तरिक्षमभयं द्यावापृथिवी उभे इमे।
अभयं पश्चादभयं पुरस्तादुत्तरादधरादभयं नो अस्तु॥

अथर्व. 19.15.5

(अभयं नः करति अन्तरिक्षं) अन्तरिक्ष हमें अभय प्रदाय करे, (अभयं द्यावा पृथिवी उभे इमे) द्युलोक तथा पृथिवी ये दोनों हमें अभय प्रदान करें, (अभयं पश्चात् अभयं पुरस्तात्) हमें पीछे से अभय हो, सामने से अभय हो, (उत्तरात् अधरात् अभयं नः अस्तु) ऊपर से हमें अभय हो तथा नीचे से हमें अभय हो। अथवा हमें पश्चिम दिशा से अभय हो, पूर्व दिशा से अभय हो, उत्तर दिशा से अभय हो तथा दक्षिण दिशा से अभय हो।

अभयं मित्रादभयममित्रादभयं ज्ञातादभयं पुरो यः।
अभयं नक्तमभयं दिवा नः सर्वा आशा मम मित्रं भवन्तु॥

अथर्व. 19.15.6

(अभयं मित्रात् अभयं अमित्रात्) हमें मित्र से अभय हो, अमित्र अर्थात् जो मित्र नहीं है, उससे अभय हो, (अभयं ज्ञातात् अभयं

पुरः यः) जो ज्ञात हे उससे अभय हो, जो सामने है उससे अभयं हो, (अभयं नक्तं अभयं दिवा) हमें रात्रि में अभय हो, दिन में अभय (सर्वाः आशाः मम मित्रं भवन्तु) तथा समस्त दिशायें हमारी मित्र हों।

दुष्टों एवं शत्रुओं का नाश

सुमित्रिया न आप ओषधयः सन्तु दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु योऽ स्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः।

यजु. 36.23

(आपः ओषधयः) जल तथा औषधियाँ (नः सुमित्रियाः) हमारी अच्छी मित्र हों, हमारे लिये हितकारी (सन्तु) हों तथा उसकी शत्रु हों, उसके लिये हानिकारक हों जो हमसे द्वेष करता है अथवा हम जिससे द्वेष करते हैं।

ये जनेषु मलिम्लव स्तेनासस्तस्करा वने।
ये कक्षेष्वघायवस्ताँस्ते दधामि जम्भयोः॥

यजु. 11.79

(ये जनेषु मलिम्लव स्तेनासः) मनुष्यों में जो मलिन अथवा नीच आचरण वाले तथा चोर हैं, जो (वनेः तस्कराः) वन प्रदेश में तस्कर तथा लुटेरे हैं, (ये कक्षेषु अघायवः) जो बन्द स्थानों, कमरों आदि में पाप करने वाले तथा मनुष्यों का प्राण हरण करने वाले हैं, (तान् ते जम्भयोः दधामि) उनको आपके दाढ़ों के अन्दर आपके द्वारा खाये जाने के लिये रखता हूँ।

यो अस्मभ्यमरातीयाद्यश्च नो द्वेषते जनः।

निन्दाद्यो अस्मान्धिप्साच्च सर्वं तं भस्मसा कुरु ॥

यजु. 11.80

(यः जनः अस्मभ्यं अरातीयात्) जो मनुष्य हमसे शत्रुता करे (च यः नः द्वेषते) और जो हमसे द्वेष करे, (यः निन्दात्) जो हमारी निन्दा करे तथा (च अस्मान् धिप्सात्) जो दम्भ पूर्वक हमको डराये, धमकाये, (सर्वं तं भस्मसा कुरु) उन सब को भस्म कर दो।

प्रत्युष्ट२ꣳ रक्षः प्रत्युष्टा अरातयो निष्टप्त२ꣳ रक्षो निष्टप्ता अरातयः। उर्वन्तरिक्षमन्वेमि ॥

यजु. 1.7

(रक्षः प्रत्युष्टम्) राक्षस दग्ध कर दिये गये हैं (अरातयः प्रत्युष्टाः) दान न देने वाले, अपने पास ही सब पदार्थों को इकट्ठे करने वाले, समाज के शत्रु दग्ध हो गये हैं। (रक्षः निष्टप्तम्) राक्षसों को निरन्तर दग्ध करता हूँ। (उरु अन्तरिक्षं अन्वेमि) ऐसे राक्षसों तथा दुष्ट स्वभाव के लोगों को दग्ध करके मैं विस्तृत अन्तरिक्ष के समान सुख एवं समृद्धि प्राप्त करता हूँ।

राक्षसों को बार बार नष्ट करना पड़ता है क्योंकि वे पुनः पुनः उत्पन्न हो जाते हैं। शरीर को हानि पहुँचाने वाले रोगाणु भी शत्रु हैं, राक्षस हैं, उन्हें भी नष्ट करना आवश्यक है। राक्षसों को नष्ट करके ही समाज सुखी एवं समृद्ध हो सकता है।

धूरसि धूर्व धूर्वन्तं धूर्व तं -

योऽस्मान्धूर्वति तं धूर्व यं वयं धूर्वामः।
देवानामसि वन्हितम ॐ –
सस्नितमं पप्रितमं जुष्टतमं देवहूतमम्॥

यजु. 1.8

हे अग्ने ! (धू असि) आप नष्ट करने वाले हो, (धूर्वन्तं धूर्व) जो सब को नष्ट करना चाहता है, उसे नष्ट कीजिये। (तं धूर्वं यः अस्मान् धूर्वति) जो हम को नष्ट करना चाहता है, उसे आप नष्ट कर दीजिये (तं धूर्व यं वयं धूर्वामः) तथा आप उस समाज विरोधी दुष्ट को नष्ट कर दीजिये, जिसे हम नष्ट करना चाहते हैं। (त्वं देवानामसि वन्हितमं) तुम देवताओं के महान वहन कर्ता हो, यज्ञ में दी हुयी आहुतियों को देवताओं के लिये ले जाने वाले हो, (सस्नितम्) उत्तम रूप से शुद्ध करने वाले हो, (पप्रितमं) एवं सुख देने वाले, पूर्णता देने वाले, (जुष्टतमं) सेवनीय, अर्थात् सदा सेवा किये जाने के योग्य (देवहूतमम् असि) और देवों को यज्ञ में बुलाकर लाने वाले हो।

संसार में जितने वाहन हैं, वह अग्नि अर्थात् ऊर्जा से ही चलते हैं, शरीर को भी अग्नि ही चलाती है। यदि शरीर में अग्नि न हो तो शरीर जीवित नहीं रह सकता । इसी लिये अग्नि को वैश्वानर कहा जाता है।

ये रूपाणि प्रतिमुञ्चमाना असुराः सन्तः स्वधया चरन्ति। परापुरो निपुरो ये भरन्त्यग्निष्टाँल्लोकात्प्रणुदात्यस्मात्॥

यजु. 2.30

(ये असुराः सन्तः रूपाणि प्रतिमुञ्चमानाः) जो असुर अपने वास्तविक स्वरूप को छिपाते हुये (परापुराः निपुरः भरन्ति) अपने दुष्ट स्वभाव के अनुसार समाज विरोधी कार्यों को पूर्ण करने के उद्देश्य से छद्म आचरण करते हैं (स्वधया चरन्ति) तथा मनमाने ढ़ंग से इधर उधर घूमते हैं, (तान्) उन दुष्ट लोगों को (अग्निः) परमात्मा (अस्मात् लोकात्) इस लोक से, इस देश से (प्रणुदाति) दूर करे।

यह मन्त्र आज के आतंकवादी तथा समाज विरोधी तत्वों के लिये कितना सटीक है। हमें ऐसे दुष्टों को नष्ट करने का सतत् प्रयास करना चाहिये।

देव स्तुति

यह पुनः स्पष्ट किया जाता है कि भगवान् केवल एक हैं।

ब्रह्मा, विष्णु, महेश, रुद्र, तथा देवियों आदि के नाम भी सब उन्हीं के नाम हैं। यह बात पुराणों में भी स्वीकार की गयी है जैसा कि विष्णुपुराण के निम्नांकित श्लोक से स्पष्ट है-

सृष्ठिस्थित्यन्तकरणीं ब्रह्मविष्णुशिवात्मिकाम्।
स संज्ञां याति भगवानेक एव जनार्दनः ॥

श्री विष्णु पुराण 2/66

वह एक ही भगवान् जनार्दन जगत् की सृष्टि, स्थिति और संहार के लिये ब्रह्मा, विष्णु और महेश इन तीन संज्ञाओं को धारण करते हैं।

सरस्वती जी

शुक्लां ब्रह्मविचार सार परमामाद्यां जगद्व्यापिनीम्।
वीणापुस्तकधारिणीमभयदाम्जाड्यान्धकारापहाम्।
हस्तेस्फाटिकमालिकांविदधतींपद्मासने संस्थिताम्।
वन्दे तां परमेश्वरीं भगवतीं बुद्धिप्रदां शारदाम्॥

जो अत्यन्त गौर वर्ण की हैं, जो ब्रह्म विचार की परम तत्व हैं, जो समस्त संसार में व्याप्त हैं, जो हाथों में वीणा तथा पुस्तक धारण किये हुये हैं, जो अभय देने वाली, जो मूर्खतारूपी अन्धकार को दूर करने वाली हैं तथा जो हाथ में स्फटिक मणि की माला लिये हुये हैं, उन कमल के आसन पर विराजमान बुद्धि प्रदान करने वाली आद्या परमेश्वरी भगवती सरस्वती की मैं वन्दना करता हूँ।

या कुन्देन्दु तुषारहारधवला या शुभ्रवस्त्रावृता,
या वीणावरदण्डमण्डितकरा या श्वेतपद्मासना।
या ब्रह्माच्युत शङ्करप्रभृतिभिर्देवैः सदा वन्दिता,
सा मां पातु सरस्वती भगवती निःशेषजाड्यापहा॥

जो कुन्द के पुष्प, चन्द्रमा तथा तुषार के समान श्वेत हार एवं शुभ्र वस्त्रों को धारण करने वाली हैं, जिनके हाथ उत्तम

वीणा से सुशोभित हैं, ऐसी कमल के आसन पर विराजमान ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि देवों द्वारा सदैव वन्दित, सब प्रकारकी जड़ता को नष्ट करने वाली भगवती सरस्वती मेरी रक्षा करें।

शिव जी

भवानी शंङ्करौ वन्दे श्रद्धाविश्वासरूपिणौ।
याभ्यां बिना न पश्यन्ति सिद्धाः स्वान्तस्थमीश्वरम्॥

रामचरितमानस, 1/2

जिन की कृपा के बिना सिद्ध पुरुष भी अपने हृदय में स्थित ईश्वर के दर्शन नहीं कर पाते उन श्रद्धा एवं विश्वास रूपी पार्वती जी तथा शंकर जी को मैं प्रणाम करता हूँ।

श्रीशिवपञ्चाक्षरस्तोत्रम्

नागेन्द्रहाराय त्रिलोचनाय
भस्माङ्गरागाय महेश्वराय।
नित्याय शुद्धाय दिग्म्बराय
तस्मै 'न' काराय नमः शिवाय ॥1॥
मन्दाकिनीसलिलचन्दनचर्चिताय
नन्दीश्वरप्रमथनाथमहेश्वराय।
मन्दारपुष्पबहुपुष्पसुपूजिताय
तस्मै 'म' काराय नमः शिवाय ॥2॥

शिवाय गौरीवदनाब्जवृन्द-
सूर्याय दक्षाध्वरनाशकाय।
श्रीनीलकण्ठाय वृषध्वजाय
तस्मै 'शि' काराय नमः शिवाय ॥3॥

वसिष्ठकुम्भोद्भवगौतमार्य-
मुनीन्द्रदेवार्चितशेखराय।
चन्द्रार्कवैश्वानरलोचनाय
तस्मै 'व' काराय नमः शिवाय ॥4॥

यक्षस्वरूपाय जटाधराय
पिनाकहस्ताय सनातनाय।
दिव्याय देवाय दिगम्बराय
तस्मै 'य' काराय नमः शिवाय ॥5॥

श्री शंकराचार्य जी

1. कण्ठ में सर्पों का हार धारण करने वाले, तीन नेत्रों वाले, भस्म ही जिनका अंगराग है ओर दिशायें ही जिनके वस्त्र हैं ऐसे नित्य शुद्ध शिव को प्रणाम है।

2. चन्दन और गंगा जल से जिन का स्नान कराया गया है, मन्दार पुष्प आदि अनेक पुष्पों से जिनका भली प्रकार पूजन किया गया है उन भगवान् शिव को प्रणाम।

3. जो कल्याण स्वरूप हैं, पार्वती जी के मुख कमल को बिकसित करने के लिये सूर्य स्वरूप हैं, जो दक्ष के यज्ञ का नाश करने वाले हैं, जिनकी ध्वजा में वृषभ का चिन्ह है, उन नील कंठ शिव को प्रणाम है।

4. वसिष्ठ, अगस्त्य तथा गौतम आदि श्रेष्ठ ऋषियों द्वारा पूजित चन्द्रमा, सूर्य और अग्नि रूपी नेत्रों वाले शिव को प्रणाम है।

5. यक्ष रूपी, जटा धारी हाथ में पिनाक धनुष को धारण करने वाले दिव्य, सनातन, दिगम्बर शिव को प्रणाम है।

नमामीशमीशान निर्वाणरूपं
विभुं व्यापकं ब्रह्म वेदस्वरूपं।
निजं निर्गुणं निर्विकल्पं निरीहं
चिदाकाशमाकाशवासं भजेऽहं ॥1॥

समस्त संसार के ईश्वर, मुक्ति स्वरूप, ब्रह्म तथा वेदस्वरूप अपने दिव्य स्वरूप में स्थित, गुणों से परे, निर्विकल्प, एक अकेले सब पर शासन करने वाले आकाश के समान सर्व व्यापक भगवान् शिव का हम भजन करते हैं, स्तुति करते हैं।

निराकारमोङ्कारमूलं तुरीयं
गिरा ज्ञान गोतीतमीशं गिरीशं।
करालं महाकाल कालं कृपालं
गुणागार संसारपारं नतोऽहं ॥2॥

राम चरित मानस

निराकार, ओंकारस्वरूप, वाणी,बुद्धि तथा इन्द्रियों आदि से परे,गुणों के सागर, संसार से मुक्ति दिलाने वाले, कृपा करने वाले कैलाश पति महाकाल को मैं प्रणाम करता हूँ। 2.

यस्याङ्के च विभाति भूधरसुता देवापगा मस्तके
भाले बालविधुर्गले च गरलं यस्योरसि व्यालराट्।
सोऽयं भूतिविभूषणः सुर वरः सर्वाधिपः सर्वदा।
शर्वःसर्वगतःशिवःशशिनिभःश्रीशङ्करः पातु माम् ॥

जिनके बायीं ओर पार्वती जी शोभायिमान हो रहीं हैं, जिनके जटाजूटों में गंगा जी, जिनके मस्तक पर बाल चन्द्र, गले में हलाहल तथा भयंकर सर्प शोभामान हो रहा है, ऐसे समस्त विभूतियों से सुषोभित देवाधि देव सर्व व्यापक, सब का कल्याण करने वाले शिव जी तथा सुख देने वाले शंकर जी मेरी रक्षा करें।

श्री विष्णु जी

शान्ताकारं भुजगशयनं पद्मनाभं सुरेशं
विश्वाधारं गगनसदृशं मेघवर्णं शुभाङ्गम् ।
लक्ष्मीकान्तं कमलनयनं योगिभिर्ध्यानगम्यं
वन्दे विष्णुं भवभयहरं सर्वलोकैकनाथम् ॥

शान्त स्वरूप, शेष नाग पर शयन करने वाले, पद्मनाभि वाले देवताओं के ईश्वर, विश्व को धारण करने वाले, आकाश के समान सर्वव्यापक, योगियों द्वारा ध्यान से प्राप्त किये जाने वाले, मेघ के समान वर्ण वाले, अत्यन्त सुन्दर अङ्गों वाले, संसार रूपी सागर का भय हरण करने वाले, समस्त लोकों के एक मात्र स्वामी, लक्ष्मी पति भगवान् विष्णु को मैं प्रणाम करता हूँ।

यं ब्रह्मा वरुणेन्द्ररुद्रमरुतस्तुन्वन्ति दिव्यै स्तवै-
र्वेदैः साङ्गपदक्रमोपनिषदैर्गायन्ति यं सामगाः ।
ध्यानावस्थिततद्गतेन मनसा पश्यन्ति यं योगिनो
यस्यान्तं न विदुः सुरासुरगणा देवाय तस्मै नमः ॥

ब्रह्मा, वरुण, इन्द्र, रुद्र, मरुद्गण आदि सभी देवता जिनकी स्तुति करते हैं, वेद तथा उपनिषद्, एवं सामगान करने वाले जिनकी महिमा का गान करते हैं, योगी जन ध्यान में स्थित मन के द्वारा जिनका दर्शन करते हैं, जिनका अन्त

देवता, तथा असुर आदि कोई भी नहीं जानता ऐसे अनन्त देव भगवान् विष्णु को मैं प्रणाम करता हूँ।

ध्येयं सदा परिभवघ्नमभीष्ट दोहं,
तीर्थास्पदं शिवविरिञ्चिनुतं शरण्यम्।
भृत्यार्तिहं प्रणतपाल भवाब्धिपोतं,
वन्दे महापुरुष ते चरणारविन्दं॥

श्रीमद्भागमत, 11/533

सदा ध्यान किये जाने योग्य, अपने भक्तों के पराभव को दूर करके उन्हें सफलता दिलाने वाले, उन्हें अभीष्ट की प्राप्ति कराने वाले, परम तीर्थ स्वरूप, शिव तथा ब्रह्मा आदि के द्वारा भी वन्दनीय, सब को शरण देने वाले, अपने सेवकों की विपत्तियो तथा कष्टों को दूर करने वाले, सब की रक्षा एवं पालन पोषण करने वाले तथा भव सागर से पार कराने वाले पोत के समान हे महा पुरुष ! मैं आपके चरण कमलों की वन्दना करता हूँ।

श्री राम

त्यक्त्वा सुदुस्त्यजसुरेप्सित राज्यलक्ष्मीं,
धर्मिष्ठ आर्यवचसा यदगादरण्यम्।
माया मृगं दयितेप्सितमन्वधावद्,
वन्दे महापुरुष ते चरणारविन्दं॥

श्रीमद्भागमत, 11/5/34

अत्यन्त कठिनायी से त्याग किये जानी वाली, देवताओं के द्वारा भी वाञ्छित राज्यलक्ष्मी का त्याग करके अपने पिता के वचन का सम्मान करते हुये वन को चले जाने वाले तथा अपनी पत्नी द्वारा इच्छित मायामृग के पीछे दौड़ने वाले हे धर्मनिष्ठ महापुरुष ! मैं आपके चरण कमलों की वन्दना करता हूँ।

नीलाम्बुजश्यामलकोमलाङ्गम्
सीतासमारोपितवामभागम् ।
पाणौमहासायकचारुचापं
नमामि रामं रघुवंशनाथम् ॥

रामचरितमानस

जिनके अंग नील कमल के समान सुन्दर श्याम वर्ण के हैं, जिनके बायीं और सीता जी सुशोभित हो रही हैं तथा जो हाथों में महान् धनुष वाण धारण किये हुये हैं, उन रघुवंश के स्वामी भगवान् राम को मैं प्रणाम करता हूँ।

शान्तंशाश्वतमप्रमेयमनघं निर्वाणशान्तिप्रदम् ।
ब्रह्माशम्भुफणीन्द्रसेव्यमनिशं वेदान्तवेद्यं विभुम् ॥
रामाख्यं जगदीश्वरं सुरगुरुं मायामनुष्यं हरिम् ।
वन्दे ऽहं करुणाकरं रघुवरं भूपालचूडामणिम् ॥

रामचरितमानस

शान्त स्वरूप, शाश्वत, निश्पाप, मोक्ष रूपी शान्ति प्रदान करने वाले, ब्रह्मा, शिव आदि से पूजित, वेदान्त ज्ञान द्वारा प्राप्त किये जाने योग्य सर्वव्यापक समस्त जगत् के ईश्वर करुणा मय राम की मैं वन्दना करता हूँ ।

दिव्य स्वरूप श्री कृष्ण

त्वमक्षरं परमं वेदितव्यं
त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम् ।
त्वमव्ययः शाश्वतधर्मगोप्ता
सनातनस्त्वं पुरुषो मतो मे ।

गीता.11/18

आप ही सर्व श्रेष्ठ जानने योग्य परमात्मा हैं, आप ही समस्त जगत् के आश्रय है , तथा आप ही अविनाशी धर्म रक्षक सनातन पुरुष हैं।

त्वमादिदेवः पुरुषः पुराण-
स्त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम् ।
वेत्तासि वेद्यं च परं च धाम
त्वया ततं विश्वमनन्तरूप ॥

गीता, 11/38

हे अनन्त रूप ! आप आदि देव, सनातन पुरुष, समस्त विश्व के आश्रय, सर्वज्ञ, ज्ञात किये जाने योग्य तथा परम धाम है।

आप के द्वारा ही यह विश्व बनाया गया है और आप इस में व्याप्त हैं।

वायुर्यमोऽग्निर्वरुणः शशाङ्कः
प्रजापतिस्त्वं प्रपितामहश्च।
नमो नमस्तेऽस्तु सहस्रकृत्वः
पुनश्च भूयोऽपि नमो नमस्ते॥

गीता, 11/39

हे प्रभो ! आप ही वायु हैं, आप ही यम हैं, आप ही अग्नि हैं, आप ही वरुण हैं, आप ही चन्द्रमा हैं, आप ही प्रजापति हैं, और आप ही प्रपितामहा, अर्थात् सब के पिता हैं। सहस्रों कर्म करने वाले आप को प्रणाम है, आप को पुनः पुनः बारम्बार प्रणाम है।

आदित्य

विश्वा रूपाणि प्रति मुञ्चते कविः प्रासावीद् भद्रं द्विपदे चतुष्पदे। वि नाकमख्यत् सविता वरेण्यो ऽनु प्रयाणमुषसो वि राजति॥

ऋग्. 5/81/2 *यजु. 12/3*

(कविः) मेधा शक्ति को बढ़ाने वाला सविता अर्थात् सूर्य (विश्वा रूपाणि प्रतिमुञ्चते) समस्त पदार्थों के वास्तविक स्वरूपों तथा संसार की वास्तविक स्थितियों को प्रकट करता है, दिखाता है, (द्विपदे चतुष्पदे भद्रं प्रासावित्) मनुष्यों, पशुओं एवं अन्य सभी प्राणियों को लिये कल्याण को उत्पन्न करता है,

उनके लिये मङ्गलकारी एवं सुखद वातावरण तथा परिस्थितियाँ उत्पन्न करता है। (वरेण्यः सविता नाकं व्यख्यत्) वरण करने योग्य, श्रेष्ठ सूर्य स्वर्ग तथा द्युलोक को भी प्रकाशित करता है तथा (उषसः प्रयाणम् अनु विराजति) तथा उषा के प्रयाण अर्थात् जाने के पश्चात् सुशोभित होता है।

निरुक्त के भाष्यकार श्री चन्द्रमणि विद्यालंकार ने लिखा है कि सूर्य उषा के प्रारम्भ के साथ ही प्रकाशित होना प्रारम्भ हो जाता है। इस समय इसको सविता कहते हैं, फिर धीरे धीरे जैसे जैसे उषा विदा होती जाती है, वैसे वैसे सविता का प्रकाश बढ़ता जाता हैं और उषा के प्रयाण के पश्चात् सूर्य पूर्ण रूप से प्रकाशित हो जाता है। उस पूर्ण रूप से उदय हुये आदित्य को सूर्य कहा जाता है।

निरुक्त 12/12/7 में 'रूपाणि' का अर्थ 'प्रज्ञानानि' किया गया है।

(निरुक्त 1/14) के अनुसार 'नाक' शब्द का अर्थ है ऐसा लोक जहाँ दुःख न हो। क = सुख। (न्+अक)=नक अर्थात् दुःख। (न + अक = नाक)। अतः नाक का अर्थ है वह लोक जहाँ दुःख न हो अर्थात् स्वर्ग।

सविता शब्द आदित्य की उस स्थिति का वाचक है, जो पूर्ण सोर्योदय से पूर्व की होती है। इस समय अन्तरिक्ष में तो प्रकाश रहता है किन्तु भूमि पर थोड़ा थोड़ा अंधेरा रहता है। यह काल

पुरुष की मेधा शक्ति को बढ़ाने वाला होता है। इसीलिये सविता को कविः कहा गया है। सूर्योदय से पूर्व का यह समय मनुष्यों के लिये हर प्रकार से कल्याणकारी एवं स्वास्थ्यवर्धक होता है, इसीलिये सविता को भद्रता अथवा कल्याण उत्पन्न करने वाला कहा गया है।

सविता के उपर्युक्त काल की पुष्टि करते हुये यास्काचार्य जी ने लिखा है- अधोरामः सवित्रः। अधोराम पक्षी को सवित्र कहा जाता है क्योंकि सवित्र काल में ऊपर प्रकाश होता है और नीचे पृथ्वी पर अन्धकार होता है। इसी प्रकार (कृकवाकुः सवित्रः)। 'कृक- कृक' करके बोलने वाला कृकुवाकु पक्षी, जिसे कुक्कुट अथवा मुर्गा कहते हैं, भी सवित्र कहलाता है क्योंकि यह सविता के काल में बोलता है।

प्रश्नोपनिषद् में सूर्योदय का वर्णन करते हुये कहा गया है कि समस्त जीवों का यह सूर्य रूपी प्राण उदय हो रहा है।

विश्वरूपं हरिणं जातवेदसं
परायणं ज्योतिरेकं तपन्तम्।
सहस्ररश्मिः शतधा वर्तमानः
प्राणः प्रजानामुदयत्येष सूर्यः॥

प्रश्नो.1.8

समस्त उत्पन्न पदार्थों को जानने वाला, प्रकाश की हज़ारों किरणों से, समस्त संसार के रूप को स्पष्ट रूप से दिखा

ने वाला, सैंकड़ों प्रकार से सब के जीवन का आधार, प्रकाश एवं ऊर्जा देने वाली एक मात्र ज्योति प्रजाओं का प्राण यह सूर्य उदय हो रहा है।

उ दुत्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः।
दृशे विश्वाय सूर्यं॥

यजु.7/41,8/41, (पाठभेद) 33/31 ऋग्.1.50.1
साम. पूर्वा.1/3/11 अथर्व.13/2/16, 20.84.13

(जातवेदसं) समस्त उत्पन्न प्राणियों एवं पदार्थों को जानने वाले तथा हमें जीवन, प्रकाश, ऊर्जा, प्रेरणा एवं ज्ञान देने वाले (त्यं देवं) उस सूर्य देव को (केतवः उत् वहन्ति) किरणें ऊपर उठाती हुयी प्रतीत होती हैं, (दृशे विश्वाय सूर्यम्) जिससे कि समस्त विश्व सूर्य का दर्शन कर सके।

यह आलंकारिक तथा काव्यात्मक वर्णन है। सूर्योदय के समय सूर्य की किरणें पहले दिखायी देती हैं, उसके पश्चात् सूर्य ऊपर उठता दिखायी देता है, जिससे ऐसा प्रतीत होता है कि मानो सूर्य की किरणें ही उसे ऊपर उठा रही हों ताकि संसार सूर्य का दर्शन कर सके।

चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः।
आप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं सूर्य आत्मा
जगतस्तस्थुषश्च॥

साम पूर्वा.6.5.3 क्रमां.629, *ऋग्. 1.115.1,*
यजु.7.42 (पाठभेद) 13.46

(देवानां अनीकं) देवों का मुखस्थानीय अर्थात् देवों में प्रमुख (चित्रं) यह अद्भुत देव अर्थात् सूर्य (उत् अगात्) उदय हुआ है। (मित्रस्य वरुणस्य अग्नेः चक्षुः) यह मित्र, वरुण तथा अग्नि अर्थात् समस्त देवताओं एवं मनुष्यों के चक्षु के समान है क्योंकि इसके प्रकाश में ही सब कुछ स्पष्ट रूप से दृष्टि गोचर होता है।

अथवा, (चित्रं देवानां अनीकं उदगात्) यह दर्शनीय रश्मि पुञ्ज सूर्य उदित हुआ है, (मित्रस्य वरुणस्य अग्नेः चक्षुः) यह प्राण, अपान तथा यज्ञाग्नि का चक्षु है क्योंकि सूर्योदय होने पर मनुष्य की प्राण तथा अपान वायुयें भली प्रकार गति करती हैं और इसी समय यज्ञाग्नि प्रदीप्त की जाती है।

(द्यावा पृथिवी अन्तरिक्षं आप्राः) उदय होकर इसने द्युलोक, अन्तरिक्ष तथा पृथिवी को अपने प्रकाश से परिपूर्ण कर दिया है, पूर्ण रूप से आलोकित कर दिया है। (सूर्यः आत्मा जगतः तस्थुषः च) सूर्य जङ्गम तथा स्थावर अर्थात् इस समस्त चराचर जगत् का आत्मा है।

ऐतरेय ब्राह्मण में विधान है कि सूर्योदय होने पर ही हवन किया जाना चाहिये, इसके पहले नहीं।

जो सूर्योदय के पश्चात् अग्नि होत्र करता है, वह सत्य बोलता है।

(ऐतरेय. ब्रा. 25.3)

तस्माद् उदिते होतव्यम्।

इसलिये सूर्योदय के पश्चात् ही अग्नि होत्र करना चाहिये।

ऐतरेय.25.4

देवों मे अग्रणी यह सूर्य संसार में समस्त प्राणिमात्र को उसी प्रकार जीवनी शक्ति प्रदान करता है जिस प्रकार शरीर में प्राण। इसीलिये प्रश्नोपनिषद् में इसे प्रजाओं का प्राण कहा गया है किन्तु यह स्पष्ट है कि सूर्य केवल उस सीमा तक ही जगत् को प्रेरणा एवं स्फूर्ति सकता है, जितनी शक्ति उसे भगवान् ने प्रदान की है।

सप्त त्वा हरितो रथे वहन्ति देव सूर्य।
शोचिष्केशं विचक्षण॥

अथर्व. 13.2.23, 20.47.20, (पाठभेद)

ऋग्.1.50.8 (पाठभेद), साम. पूर्वा.6.4.14., क्र. सं. 640

(विचक्षण देव सूर्य) हे सर्वद्रष्टा सूर्य देव ! (शोचिष्केशं त्वा रथे) आप के रथ को पवित्र ज्वाला वाले बालों से युक्त, (सप्त

हरितः) सब को प्रकाशित करने वाले सात अश्व (वहन्ति) वहन करते हैं। सूर्य की सात रंगों वाली, सब को पवित्र एवं प्रकाशित करने वाली किरणों को ही यहाँ आलंकारिक रूप से अश्व कहा गया है।

यह निम्नांकित सात रंग इन्द्र धनुष में स्पष्ट रूप से दिखायी देते हैं। VIBGYOR= Violet, Indigo, Blue, Green, Yellow, Orange & Red.

देवों की माता अदिति का पुत्र होने के कारण सूर्य को आदित्य कहा जाता है।

आदित्य शद्ब का दूसरा अर्थ इस प्रकार है-

'द' का अर्थ है देना अतः 'अद' का अर्थ हुआ लेना। सूर्य प्राणियों की आयु नित्य प्रति एक एक दिन कम करता जाता है, लेता जाता है तथा पृथिवी से जल को लेता जाता है इसलिये उसको आदित्यकहते हैं।

यह भी उल्लेखनीय है कि जहाँ एक ओर सूर्य हमें जीवन देता है, स्वस्थ रखता है वहीं दूसरी ओर इसकी प्रचण्ड धूप तथा गर्मी मनुष्य का जीवन लेती भी है। इसलिये प्रकृति में सूर्य को रुद्र माना जाता है, वह जीवित भी रखता है और रुलाता भी है।

वायु

वात आ वातु भेषजं शंभु मयोभु नो हृदे।
प्र ण आँयूंषि तारिषत्।

साम.क्र.सं.1840, *ऋग्.10.186.1*

(वातः नः हृदे भेषजं आ वातु) वायु हमारे हृदय के लिये औषधि बन कर आये। (शम्भु मयोभु नः आयूंषि प्र तारिषत्) वह कल्याणकारी एवं सुखकारी होकर हमें दीर्घ आयु प्रदान करे।

अन्तरिक्षे पृथिभिरीयमानो न नि विशते कतमच्चनाहः। अपां सखा प्रथमजा ऋतावा क्व स्विज्जातः कुत आ बभूव॥

ऋग्.10.168.3

(अन्तरिक्षे पृथिभिः ईयमानः कतमत् चन अहः न नि विशते) अन्तरिक्ष में अनेक मार्गों से जाने वाला वायु किसी भी दिन निश्चल होकर नहीं बैठता, (अपां सखा प्रथमजाः ऋतावा) जलों का मित्र, सब प्राणियों से पहले उत्पन्न होने वाला तथा भगवान् के सत्य नियमों का पालन करने वाला वायु (क्व स्वित् जातः कुतः आ बभूव) भला, कहाँ उत्पन्न हुआ है और कहाँ से आता है?

आत्मा देवानां भुवनस्य गर्भो यथावशं चरति देव एषः। घोषा इदस्य शृण्विरे न रूपं तस्मै वाताय हविषा विधेम॥

ऋग्.10.168.4

यह वायु (देवानां आत्मा भुवनस्य गर्भः) देवों का आत्मा तथा लोक का गर्भ है, प्राण के रूप में समस्त प्राणियों को जीवन देने वाला, उत्पन्न करने वाला है, (एषः देवः यथा वशं

चरति) यह देव अपनी इच्छानुसार चलता है, (अस्य घोषाः इत् शृण्विरे) इसका केवल नाद ही सुनायी देता है, (रूपं न) रूप नहीं दिखायी देता। (तस्मै वाताय हविषा विधेम) उस वायु देव के लिये हम श्रेष्ठ हव्य पदार्थों की आहुति देकर यज्ञ करें, उसे स्वच्छ तथा शुद्ध रखें।

ऋग्.10,168.2 में कहा गया है '**अस्य विश्वस्य भुवनस्य राजा**' यह वायु समस्त विश्व का राजा है।

यह सूत्रात्मा वायु प्राण के रूप में समस्त प्राणियों के जीवन का आधार है, इसीलिये समस्त विश्व का राजा है।

सैषा नस्तमिता देवता यद् वायुः।

शतपथ. ब्रा.14.4.3.33

यह जो वायु है, वह कभी अस्त न होने वाला देवता है। यह सदा प्रत्यक्ष रहता है।

अग्नि

तनूपा अग्ने ऽसि तन्वं मे पाह्यायुर्दा अग्ने ऽस्यायुर्मे देहि वर्चोदा अग्ने ऽसि वर्चो मे देहि। अग्ने यन्मे तन्वा ऊनं तन्म ऽआपृण ॥

यजु. 3.17

(अग्ने) हे अग्ने ! (तनूपा असि) आप शरीर की रक्षा करने वाले हैं, (तन्वं में पाहि) मेरे शरीर की रक्षा कीजिये, (अग्ने आयुर्दा असि आयुः मे देहि) हे अग्ने ! आप आयु देने वाले है, मुझे

आयु दीजिये, (वर्चोदा अग्ने असि वर्चः में देहि) हे अग्ने! आप तेजस्विता देने वाले हैं, मुझे तेजस्विता दीजिये। (अग्ने यत् मे तन्वा ऊनं) हे अग्ने ! मेरे शरीर मे जो न्यूनता हो, अस्वस्थता आदि हो, (तत् मे आ पृण) मेरी उस कमी को पूर्ण कीजिये।

देवो देवानामसि मित्रो अद्भुतो वसूर्वसूनामसि चारुरध्वरे। शर्मन्त्स्याम तव सप्रथस्तमे ऽग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव।

ऋग्. 1.94.13

(अग्ने) हे अग्ने! (देवः देवानाम्) देवों में श्रेष्ठ देव तथा दिव्य गुणों से युक्त एवं प्रकाशमान आप (अद्भुतः मित्रः असि) अद्भुत मित्र हैं तथा (अध्वरे) यज्ञ में (चारुः) शोभायमान होने वाले आप (वसूनाम् वसुः असि)

अष्ट वसुओं में श्रेष्ठ वसु हैं, (तव सप्रथस्तमे) आपके द्वारा प्रदान किये गये सर्वत्र विस्तृत (शर्मन्) सुख में अथवा सुख देने वाली परिस्थितियों में (वयम् स्याम) हम रहें अर्थात् आपके द्वारा प्रदान किये गये सब प्रकार के सुख का हम उपभोग करें तथा (तव सख्ये) आपकी मित्रता में रहकर (वयं मा रिषाम) हम किसी प्रकार की हिंसा, दुःख अथवा कष्ट को प्राप्त न हों।

अग्नि, पृथिवी, वायु, अन्तरिक्ष, आदित्य, द्युलोक, चन्द्रमा तथा नक्षत्र ये आठ वसु हैं, जिनके आधार पर प्राणि मात्र वसते हैं, जीवित रहते हैं।

प्र सो अग्ने तवोतिभिः सुवीराभिस्तरति वाजकर्मभिः। यस्य त्वं सख्यमाविथ॥

ऋग्8.19.30 (पाठभेद), साम.पूर्वा.1.2.2, क्र. सं. 108
साम. उत्त. 20.6.1, क्र.सं. 1822

(अग्ने) हे प्रकाशस्वरूप परब्रह्म ! (यस्य त्वं सख्यं आविथ) जिसकी मित्रता आप स्वीकार कर लेते हैं अर्थात् आप जिसके मित्र हो जाते हैं, (सः तव सुवीराभिः ऊतिभिः वाजकर्मभिः) वह आपकी अत्यन्त वीरतापूर्ण रक्षाओं तथा आपके बलशाली कर्मों से (प्रतरति) सभी दुःखों, कष्टों एवं संकटों से पार हो जाता है।

<u>जल से विद्युत उत्पन्न करना</u>

मयो दधे मेधिरः पूतदक्षो दिवः सुबन्धुर्जनुषा पृथिव्याः। अविन्दन्नु दर्शतमप्स्व १न्तर्देवासो अग्निमपसिस्वसृणाम्॥

ऋग्. 3.1.3

यह अग्नि (मेधिरः पूतदक्षः जनुषा सुबन्धुः) मेधावान् पवित्र बलशाली एवं जन्म से ही उत्कृष्ट बन्धु है तथा (दिवः पृथिव्याः मयः दधे) द्युलोक और भूमि में सुख से स्थापित है। (देवासः) देवों ने (स्वसृणां अप्सु अन्तः) बहने वाली नदियों के जल में गुप्त रूप से स्थित उस (दर्शतं अग्निं) दर्शनीय अग्नि को (अपासि अविन्दन्) अपने कार्य के लिये जल से प्राप्त किया।

उषा

ए॒षा शु॒भ्रा न॒ तन्वो॑ विदा॒नोर्ध्वेव॑ स्ना॒ती दृ॒शये॑ नो अस्थात्। अप॒ द्वेषो॒ बाध॑माना॒ तमां॑स्यु॒षा दि॒वो दु॑हि॒ता ज्योति॒षागा॑त्॥ ऋग्.5/80/5

(स्नाती उर्ध्वा इव) स्नान करके जल में से ऊपर उठकर (तन्वा विदाना) अपने शरीर के अंगों को दिखाती हुयी, (एषा शुभ्रा न) गौरवर्ण वाली स्त्री के समान (उषाः) उषा (नः दृशये अस्थात्) हम सब के देखने के लिये ऊपर आकाश में स्थित हुयी है। (द्वेषां तमांसि अपबाधमाना) अन्धकार तथा द्वेष करने वाले शत्रुओं आदि को हटाती हुयी (दिवः दुहिता) द्युलोक की यह पुत्री (ज्योतिषा आगात्) अपने प्रकाश के साथ आ गयी है।

कन्येव तन्वा३ शाशदानाँ एषि देवि देवमियक्षमाणम। संस्मयमाना युवतिः पुरस्तादाविर्वक्षांसि कृणुषे विभाती।

ऋग्. 1/123/10

(तन्वा शाशदानां कन्या इव) जिस प्रकार अपने शरीर को स्पष्ट रूप से दिखाती हुयी कन्या (इयक्षमाणं जेवं एषि) इच्छित सुख देनेवाले पति के पास जाती है तथा (युवतिः संस्मयमाना) जिस प्रकार मुस्कराती हुयी युवती अपने पति के (पुरस्तात्) समक्ष (वक्षांसि आविः कृणुषे) अपने सुन्दर वक्षस्थलों को प्रकट करती है, दिखाती है, उसी प्रकार (एषी देवि विभाती) यह उषा

देवी अपने शरीर की सुन्दरता दिखाती हुयी शोभाय मान होती है।

उषा के अन्य सुन्दर मन्त्र कृपया मेरी पुस्तक **वेद सुरभि** में देखें ब्राह्म मुहूर्त में जगकर उषाकाल का सौन्दर्य एवं सूर्योदय का मनोहर दृष्य देखकर हमें यह प्रार्थना एवं प्रयास करना चाहिये कि –

वेद पाठ के लिये कतिपय महत्व पूर्ण मन्त्र

इ॒षे त्वो॒र्जे त्वा॑ वा॒यव॑ स्थ दे॒वो वः॑ सवि॒ता प्रार्प॑यतु॒ श्रेष्ठ॑तमाय॒ कर्म॑ण॒ आप्या॑यध्वमघ्न्या॒ इन्द्रा॑य भा॒गं प्र॒जाव॑तीरनमी॒वा अ॑य॒क्ष्मा मा व॑स्ते॒न ई॑शत॒ माघशं॑ ॐ सो ध्रु॒वा अ॒स्मिन् गोप॑तौ स्यात ब॒ह्वीर्यज॑मानस्य प॒शून्पा॑हि ॥

यजुर्वेद का प्रथम मन्त्र *यजु. 1.1*

(इषे त्वोर्जे त्वा वायव स्थ) तुम्हें अन्न तथा रस देने के लिये यह वायु है (देवः वः सविता श्रेष्ठतमाय कर्मण) समस्त संसार को उत्पन्न करने वाले सविता देव तुम्हें श्रेष्ठ अन्न, जल तथा वायु प्राप्त करने के लिये श्रेष्ठतम कर्म करने की (प्रार्पयतु) प्रेरणा दें जिससे तुम (आप्यायध्वम्) सर्वतोमुखी उन्नति को प्राप्त कर सको। (अघ्न्याः इन्द्राय भागं प्रजावतीः अनमीवाः अयक्ष्माः) इन्द्राय भागम् अर्थात् ऐश्वर्य तथा धन की प्राप्ति के लिये, (अघ्न्याः) न हिंसा किये जाने योग्य तुम्हारी गौयें सन्तान वाली हों तथा यक्ष्मा एवं अन्य समस्त रोगों से मुक्त हों। (मा वः

स्तेन ईशत) ऐसी व्यवस्था करो कि चोर तुम्हारे ऊपर शासन न कर सकें (मा अघशंसः) तुम्हारे समाज में पाप एवं पापियों की प्रशंसा करने वाले न हों। (ध्रुवा अस्मिन् गोपतौ स्यात बह्वीः) हे प्रभो ! गोपतौ अर्थात् गौओं, पृथिवी एवं वेद की रक्षा करने वाले इस श्रेष्ठ पुरुष के पास बहुत सी गौयें तथा धन सम्पत्ति अचल होकर रहे। (यजमानस्य पशून् पाहि) इस यज्ञ करने वाले श्रेष्ठ पुरुष की सन्तान एवं पशुओं की रक्षा कीजिये।

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्।
तत्त्वं पूषन्नपावृणु सत्यधर्माय दृष्टये॥

यजु. काण्व. सं. 40/15

(सत्यस्य मुखम् हिरण्मयेन पात्रेण अपिहितम्) सत्य का मुख हिरण्मय पात्र से ढंका हुआ है, (पूषन्) हे पालन पोषण करने वाले प्रभो ! (सत्यधर्माय दृष्टये) सत्य धर्म को देखने के लिये (तत् त्वं अपावृणु) आप उस स्वर्णिम ढक्कन को हटा दीजिये।

मन्त्र से स्पष्ट है कि जो सत्य है वही धर्म है। शतपथ 14/4/24 तथा 14/426 में इस तथ्य को और भी स्पष्ट किया गया है। कितना दुःखद है कि आज धर्म में सत्य का कोई स्थान ही नहीं रह गया है।

यो वै स धर्मः सत्यं वै तत् (शतपथ- 14/4/26)

पूषन्नेकर्षे यम सूर्य प्राजापत्य व्यूह रश्मीन्त्समूह।

तजो यत्तें रूपं कल्यांणतमं तत्तें पश्यामि यो ऽसावसौ पुरुंषः सोऽहमंस्मि ॥

यजु. काण्व. सं. 40/16

(पूषन्) हे पोषण करने वाले ! (एक ऋषे) हे एक मात्र दृष्टा तथा ज्ञाता! (यम) हे सर्व नियन्ता ! (सूर्य) हे परम तेजस्वी ! सर्व प्रकाशक, (प्राजापत्य) हे जनक तथा प्रजापालक प्रभो! (रश्मिन् व्यूह समूह) अपनी किरणों को एकत्र करके, एक ओर कर दीजिये, हमारे सामने से हटा दीजिये, (यत्ते कल्याणतमं तेजो रूपम्) जिससे आपका जो परम कल्याणकारी तेजोमय रुप है, (तत्ते पश्यामि) उसे मैं देख सकूँ। (यः असौ असौ पुरुषः) जो यह प्राणों में रहने वाला पुरुष अर्थात् जीवात्मा है, (सः अहं अस्मि) वह मैं हूँ।

नेत्रों के सामने प्रकाश की तेज किरणों के समूह के आजाने पर हम प्रकाश की ओर नहीं देख सकते। इसीलिये भगवान् से प्रार्थना की गयी है कि अपनी तेजस्वी किरणों को हटा लीजिये ताकि में आपके कल्याणकारी रूप का दर्शन कर सकूँ। बिना भगवान् की कृपा के बिना कोई उनका दर्शन नहीं कर सकता।

ये त्रिंषुप्ताः परियन्ति विश्वां रूपाणि बिभ्रतः ।
वाचस्पतिर्बला तेषां तन्वो अद्य दधातु मे ॥

अथर्व वेद का प्रथम मन्त्र *अथर्व. 1.1.1*

1. (ये त्रिषप्ताः) जो तीन गुणा सात अर्थात् 21 तत्व (विश्वा रूपाणि बिभ्रतः) समस्त प्राणियों एवं पदार्थों के रूपों को धारण किये हुये (परियन्ति) विचरण करते हैं, सब ओर प्राप्त होते हैं, (वाचस्पतिः) वाणी का स्वामी परमात्मा अथवा प्रजापति (तेषाम् बला) उनके बलों को, सामर्थ्य को (मे तन्वः अद्य दधातु) आज मेरे शरीर के अन्दर धारण करे, मुझे दे।

2. वाणी परक अर्थ- एक वचन, द्विवचन तथा बहुवचन से गुणित सात विभक्तियाँ वाणी के विभिन्न स्वरूपों को धारण करती हुयी सर्वत्र विचरती हैं। वाणी का स्वामी परमात्मा आज इन 21 प्रकार के शब्दों के ज्ञान से प्राप्त होने वाला सामर्थ्य मुझे दे अर्थात् मुझे वाणी का समग्र ज्ञान दे।

इसका विस्तृत अर्थ कृपया मेरी पुस्तक **वेद सुरभि** में देखने का कष्ट करें।

सहस्रंशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रंपात्।
स भूमिंꣳ सर्वतं स्पृत्वाऽत्यंतिष्ठद्दशाङ्गुलम्॥

अथर्व. 19.6.1, (पाठभेद) *यजु.31.1*
ऋग्वे.10.90.1, *साम. पूर्वा. 6.4.3क्र. सं. 617, (पाठभेद)*

(सहस्रशीर्षा) वह परम पुरुष हज़ारों शिर, (सहस्राक्षः) हज़ारों नेत्रों तथा (सहस्रपात्) हज़ारों पैरों वाला है। (सः भूमिं) वह इस भूमि को, ब्रह्माण्ड को (सर्वतः स्पृत्वा) सब ओर से घेरकर, आच्छादित करके (अत्य तिष्ठत् दशाङ्गुलम्) दश

अङ्गुल के आकार वाले तथा नाभि से दश अङ्गुल ऊपर स्थित हृदय में तथा उसका उल्लंघन करके उसके अन्दर और बाहर ब्रह्माण्ड में सब ओर स्थित है।

मनुष्य के हृदय को दशाङ्गुलम् इसलिये कहते हैं क्योंकि इसका आकार दश अंगुल का है और यह नाभि से दश अंगुल ऊपर स्थित होता है।

ब्रह्माण्ड को दशाङ्गुलम् इसलिये कहते हैं क्योंकि यह पञ्च महाभूत अर्थात् आकाश, वायु, अग्नि, जल एवं पृथिवी तथा इनकी तन्मात्रायें, क्रमशः शद्ध, स्पर्श, रूप, रस तथा गन्ध से बनता है।

त्रिपादूर्ध्व उदैत्पुरुषः पादोऽस्येहाभवत् पुनः।
ततो विष्वङ् व्यक्रामत्साशनानशने अभि॥

ऋग्. 10.90.4 यजु.31.4

(अस्य पादः इह पुनः अभवत्) उस परब्रह्म के एक अंश से उत्पन्न होने वाली यह सृष्टि परिवर्तित होती रहती है, पुनः पुनः उत्पन्न एवं लय होती रहती है किन्तु (त्रिपात् पुरुषः ऊर्ध्वः उदैत्) उसके तीन पाद अर्थात् वह पूर्ण पुरुष अपने अमृत स्वरूप में सदा अविकारी, अपरिवर्तनीय, आनन्दमय एवं ध्रुव होकर सबके ऊपर प्रकाशित रहता है (ततः सः अशन अनशने विष्वङअ अभि व्यक्रामत्) तथा वह परब्रह्म अन्न खाने वाले

तथा अन्न न खाने वाले अर्थात् सभी प्राणियों एवं पदार्थों में अन्तर्यामी रूप से व्याप्त है।

नाभ्यां आसीदन्तरिक्षꣳ शीर्ष्णो द्यौः समवर्तत।
पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात्तथा लोकाँर अकल्पयन्॥

अथर्व. 19.6.8, ऋग्. 10.90.14, यजु. 31.13,

(नाभ्या अन्तरिक्षं आसीत्) ब्रह्म की नाभि से अन्तरिक्ष, (शीर्ष्णः द्यौः समवर्तत) शिर से द्युलोक, (पद्भ्यां भूमिः) पैरों से भूमि, (श्रोत्रात् दिशः) कानों से दिशायें उत्पन्न हुयीं (तथा लोकान् अकल्पयन्) तथा इसी प्रकार अन्य लोकों के उत्पन्न होने की कल्पना की गयी है।

यह ब्रह्म के विराट् स्वरूप की कल्पना है।

तस्माद्यज्ञात्सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे।
छन्दाꣳसि जज्ञि रेतस्माद्यजुस्तस्मादजायत॥

ऋग्. 10.90.9, यजु. 31.7,
कृष्ण यजु. 35.10, अथर्व. 19.6.13,

(तस्मात् यज्ञात् सर्वहुत) सभी आहुतियाँ जिसके लिये दी जाती हैं, उस सर्वपूज्य, सर्वोपास्य, सर्वशक्तिमान्, सर्वज्ञ परब्रह्म से (ऋचः सामानि जज्ञिरे) ऋग्वेद तथा सामवेद उत्पन्न हुये, (छन्दांसि जज्ञिरे तस्मात्) उससे अथर्ववेद उत्पन्न हुआ (यजुः तस्मात् अजायत) तथा उसी से यजुर्वेद उत्पन्न हुआ।

चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्यो अजायत।
मुखादिन्द्रश्चाग्निश्च प्राणाद्वायुरजायत॥

यजु.31.12 (पाठभेद) अर्थव. 19.6.7, ऋग्. 10.90.13

सूर्य चन्द्र आदि की उत्पत्ति का आलंकारिक वर्णन करते हुये यहाँ बताया गया है कि (चन्द्रमा मनसः जातः) ब्रह्म के विराट शरीर के मन से चन्द्रमा उत्पन्न हुआ, (चक्षोः सूर्यः अजायत) चक्षु से सूर्य उत्पन्न हुआ, (मुखाद् इन्द्रः च अग्निः च) मुख से इन्द्र तथा अग्नि एवं (प्राणाद् वायुः अजायत) प्राण से वायु उत्पन्न हुआ।

ततो॑ वि॒राड॑जायत वि॒राजो॒ अधि॒ पूरु॑षः।
स जा॒तो अत्य॑रिच्यत प॒श्चाद्भूमि॒मथो॑ पु॒रः॥

ऋग्. 10.90.5 (पाठभेद), *यजु. 31.5*

(ततो विराडजायत) उस परमात्मा से, विशेष रूप से देदीप्यमान प्रकृति उत्पन्न हुयी तथा (विराजो अधि पूरुषः) वह पुरुष अर्थात् परमात्मा ही प्रकृति के ऊपर नियन्त्रण करने वाला उसका अधिष्ठाता हुआ। (स जातो अत्यरिच्यत) वह प्रकृति उत्पन्न होकर अनेक रूपों में विभक्त होने लगी, (पश्चाद् भूमि अथो पुरः) तत्पश्चात् पृथिवी, सूर्यादि ग्रह तथा समस्त ब्रह्माण्ड पूर्व कल्प की भाँति उत्पन्न हुये।

सृष्टि एक कल्प तक रहती है। एक हज़ार चतुर्युगी का एक कल्प होता है, जिसे ब्रह्मा का एक दिन कहा जाता है। इसके पश्चात् प्रलय होती है।

प्रकृति को उत्पन्न करने वाला ब्रह्म का स्वरूप ब्रह्मा कहलाता है, पालन पोषण करने वाला रूप विष्णु कहलाता है, कल्याण करने वाला और सुख देने वाला रूप शिव कहलाता है

और अन्त में दण्ड देने वाला और संहार करने वाला रूप रुद्र कहलाता है।

पुनः स्पष्ट किया जाता है कि ब्रह्मा, विष्णु, महेश, इन्द, सविता तथा रुद्र कोई अलग अलग देवता नहीं है भगवान् के ही नाम हैं।

ब्रह्म ओम् पद वाच्य है अर्थात् ब्रह्म को ओम् शद्ध से पुकारा जाता है।

(भूः भुवः स्वः) अर्थात् सत् चित् आनन्द = सच्चिदानन्द भी ब्रह्म को ही कहते हैं।

अद्भ्यः सम्भृतः पृथिव्यै रसाच्च विश्वकर्मणः समवर्तताग्रे। तस्य त्वष्टा विदधद्रूपमेति तन् मर्त्यस्य देवत्वमाजानमग्रे॥

यजु.31.17

(अग्रे विश्वकर्मणः समवर्तत) सृष्टि के आदिकाल में केवल विश्वकर्मा परमात्मा ही था, (पृथिव्यै रसात् च संभृतः) उसने जल रूपी रस के साथ पृथिवी आदि अन्य पाँच महाभूतों से इस जगत् का निर्माण करके, इसे परिपुष्ट किया अर्थात् समस्त प्राणियों एवं पदार्थों को उत्पन्न करके उनका पोषण किया। (अग्रे त्वष्टा तस्य रूपं विदधत्) आदिकाल में विश्वकर्मा रूपी कारीगर ने समस्त प्राणियों एवं पदार्थों के रूप तथा उनके

लिये नियमों आदि का विधान किया, बनाया।
(मर्त्यस्य तत् देवत्वं आजानं एति) उसी के विधान के अनुसार मरणधर्मा मनुष्य श्रेष्ठ कर्म करके देवत्व प्राप्त करता है।

प्रजापतिश्चरति गर्भे अन्तरजायमानो बहुधा वि जायते। तस्य योनिं परि पश्यन्ति धीरास्तस्मिन्ह तस्थुर्भुवनानि विश्वा॥

अथर्व. 10.8.13.(पाठभेद) *यजु. 31.19*

(प्रजापतिः चरति गर्भे अन्तः) प्रजापति परमात्मा अपने अंश जीवात्मा के रूप में गर्भ में प्रवेश करता है तथा (अजायमानः बहुधा विजायते) अजायमान होते हुये भी बहुत प्रकार से जन्म लेता है। (तस्य योनिं परि पश्यन्ति धीराः) उसके स्वरूप को धीर पुरुष भली प्रकार देखते हैं। (तस्मिन् ह तस्थुः भुवनानि विश्वा) उसी परमात्मा में समस्त लोक स्थित है।

यो देवेभ्य आतपति यो देवानां पुरोहितः।
पूर्वो यो देवेभ्यो जातो नमो रुचाय ब्राह्मये॥

यजु. 31.20

(यः देवेभ्यः) जो देवों के लिये तपता है, सब को ऊर्जा तथा प्रकाश प्रदान करता है और अपनी गुरुत्वाकर्षण शक्ति से सबको नियन्त्रण में रखता है, (यः देवानां पुरोहितः) जो जल, अग्नि, वायु आदि समस्त देवों में श्रेष्ठ है, जो संसार की आत्मा तथा समस्त जीवों का प्राण कहा जाता है, (यः देवेभ्यः पूर्वः

जातः) तथा जो अन्य देवताओं से पहले उत्पन्न हुआ है, (रुचाय ब्राह्मये नमः) ब्रह्म द्वारा सृजित किये गये उस परम तेजस्वी सूर्य देव को प्रणाम है।

दि॒व्यो ग॑न्ध॒र्वो भुव॑नस्य॒ यस्पति॒रेक॑ ए॒व न॑म॒स्यो॑ वि॒क्ष्वीड्यः॑। तं त्वा॑ यौमि॒ ब्रह्म॑णा॒ दि॑व्य दे॒व नम॑स्ते अस्तु दि॒वि ते॑ स॒धस्थ॑म् ॥

अथर्व. 2.2.1

(यः दिव्यः गन्धर्वः) जो पृथिवी आदि को धारण करने वाला है, (भुवनस्य पतिः) जो समस्त जगत् का स्वामी है, (विक्षु एक एव नमस्यः ईड्यः च) संसार में जो केवल एक ही नमस्कार किये जाने तथा स्तुति किये जाने योग्य है, ऐसे (दिव्य देव) दिव्य देव, हे प्रकाशस्वरूप परब्रह्म ! (तं त्वा यौमि ब्रह्मणा) उस आपसे मैं ज्ञान के द्वारा संयुक्त होता हूँ। (ते नमः अस्तु) आपके लिये प्रणाम हो, (दिवि ते सधस्थम्) आपका स्थान द्युलोक में है, परम व्योम में है।

गन्धर्वः- (गाँ पृथिवीं धारयतीति गन्धर्वः) निरुक्त। 1/1

न तस्य॑ प्रति॒मा अ॑स्ति॒ यस्य॒ नाम॑ म॒हद्यशः॑। हि॒र॒ण्य॒ग॒र्भ इत्ये॒ष मा मा॑ हि ꣳसी॒दित्ये॒षा यस्मा॒न्न जा॒त इत्ये॒षः॑ ॥

यजु.32.3

जिसका नाम ही महान यश है जिसके नाम का ध्यान और जप महान यश देने वाला है उस ब्रह्म की कोई प्रतिमा अथवा

चित्र नहीं है और न ही कोई उसके समान है। उसका वास्तविक वर्णन **'हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे'**- *(यजुर्वेद 25.10)*, मा मा हिं सीत्, यजु. 12.102 तथा यस्मान्न जातः यजुर्वेद 8.36 में दिया गया है।

(हिरण्यगर्भः) मन्त्र का अर्थ प्रार्थना मन्त्रों में दिया जा चुका है। **मा मा हि ँ सीज्जनिता** मन्त्र का अर्थ भी प्रार्थना मन्त्रों में दिया जा चुका है।

यस्मान्न जातः परो अन्यो अस्ति य आविवेश भुवनानि विश्वा। प्रजापतिः प्रजया स ँ रराणस्त्रीणि ज्योती ँषि सचते स षोडशी ॥ *यजु. 8.36*

(यस्मात् परः अन्यः न जातः अस्ति) जिस परमात्मा से श्रेष्ठ और कोई दूसरा उत्पन्न नहीं हुआ है, (यः विश्वा भुवनानि आविवेश) जो समस्त भुवनोंमें व्याप्त है (सः प्रजापतिः प्रजया संरराणः त्रीणि जोतींषि सचते) वह प्रजापति सब का पालन करने वाला परमेश्वर अपनी प्रजा अर्थात् समस्त प्राणियों के साथ भली प्रकार रमण करता हुआ सूर्य, विद्युत और अग्नि इन तीनों ज्योतियों को अपने अन्दर धारण करता है तथा (षोडशी) सोलह कलाओं को उत्पन्न करने वाला है।

अग्नि, वायु और आदित्य को भी तीन ज्योतियाँ कहा जाता है।

एषो ह देवः प्रदिशो ऽनु सर्वाः पूर्वो ह जातः स उ गर्भे अन्तः। स एव जातः स जनिष्यमाणः प्रत्यङ् जनास्तिष्ठतिसर्वतोमुखः ॥ *यजु.32.4*

(एषः देवः) निश्चय ही यह परमात्मा (सर्वाः प्रदिशः) सब दिशाओं

तथा उपदिशाओं में व्याप्त है। (सः ह पूर्वो जातः) तथा वही सबसे पहले प्रकट हुआ था, (स उ गर्भे अन्तः) वही जीवात्मा के रूप में गर्भ के अन्दर आता है। वही पहले भी
उत्पन्न हुआ था और वही भविष्य में उत्पन्न होने वाला है, वह सर्वव्यापक परमात्मा प्रत्येक पदार्थ में स्थित रहता है।
इस मन्त्र में कहा गया है कि सर्व व्यापक परमात्मा, अपने अंश जीवात्मा के रूप में गर्भ में आता है और उत्पन्न होता है।

यस्मा॑ज्जा॒तं न पु॒रा किं च॒नैव य आ॑ब॒भूव॒ भुव॑नानि॒ विश्वा॑। प्र॒जाप॑तिः प्र॒जया॑ सꣳररा॒णस्त्रीणि॒ ज्योती॑ꣳषिसचते॒ स षो॑ड॒शी॥ *यजु 32.5*

(यस्मात् पुरा) जिसके पूर्व (किं च न एव) कुछ भी (न जात) उत्पन्न नहीं था, (यः) जो (विश्वानि भुवनानि) सब भुवनों (आ-बभूव) में व्याप्त है। (प्रजापतिः) सब प्रजावों का रक्षक एवं स्वामी वह परमात्मा (प्रजया) प्रजाके साथ (सं-रराणः) रमण करता है, (षोडशी) सोलह कलाओं को उत्पन्न करता है (सः) तथा (त्रीणि ज्योतींषि) सूर्य, अग्नि एवं विद्युत रूपी तीनों ज्योतियों को (सचते) धारण करता है।

प्रश्नोपनिषद् में सोलह कलाओं का विवरण निम्न प्रकार दिया गया है-
प्राण, श्रद्धा, आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथिवी, इन्द्रियाँ, मन, अन्न, वीर्य, तप, मन्त्र, कर्म, लोक, तथा नाम।

वेनस्तत्पंश्यन्निहितं गुहा सद्यत्र विश्वं भवत्येकंनीडम्। तस्मिंन्निदꣳसं च वि चैतिसर्वꣳ स ओतः प्रोतंश्च विभूः प्रजासुं॥

यजु. 32.8

(वेनः) ज्ञानी भक्त संसार में गुह्य रूप से स्थित उस ब्रह्म को एक घोंसले के समान देखता है जिसमें समस्त प्राणी इस प्रकार रहते हैं जैसे एक घोंसले में समस्त पक्षी रहते हैं।

गह्य रूप से स्थित होने का अर्थ यह है कि ब्रह्म कण कण में व्याप्त होते हुये भी किसी को दिखायी नहीं देता, केवल वही ज्ञानी अपने ज्ञान रूपी नेत्रों से उसे देख सकता है, जिस पर भगवान् की कृपा होती है।

ब्रह्म को एक नीड अर्थात् घोंसला इसलिये कहा गया है क्योंकि समस्त प्राणी उस में इस प्रकार रहते हैं, जैसे सारे पक्षी एक घोंसले में रहते हैं क्योंकि भगवान् के लिये सभी प्राणी एक से हैं, उनमें कोई भेद नहीं है। पशु, पक्षी, आदि सभी जीव जन्तु उसी की सन्तान हैं, उसी के बनाये हुये हैं और वह स्वयं सब में व्याप्त रहता है।

सृष्टि के उत्पन्न होने पर (इदं सर्वम्) यह सारा संसार (तस्मिन्) उस ब्रह्म में (सं-एति) स्थित रहता है (च वि-एति) और प्रलय होने पर उससे पृथक् हो जाता है। (सः) वह परमात्मा

(प्रजासु) सब प्रजाओं में (वि- भूः) ओत प्रोत है, सब प्रकार से व्याप्त है, क्योंकि सारा संसार उसी से बना हुआ है।

इस मन्त्र से स्पष्ट है यह सब कुछ ब्रह्म ही है जैसा कि पुरुष सूक्त में कहा गया है 'पुरुष एव इदं सर्वम्' यह सब कुछ पुरुष ही है।

दृते दृꣳह मा। ज्योक्ते सन्दृशि जीव्यासं ज्योक्ते सन्दृशि जीव्यासम्। *यजु. 36.19*

(दृते) हे शक्तिमान् प्रभो ! (मा दृंह) मुझे शक्ति सम्पन्न कीजिये जिससे मैं आप की कृपा से आप का दर्शन करते हुये दीर्घ काल तक जीवित रहूँ।

नमस्ते अस्तु विद्युते नमस्ते स्तनयित्नवे।
नमस्ते भगवन्नस्तु यतः स्वः समीहसे॥

यजु. 36.21

विद्युत में व्याप्त प्रभो आप के लिये नमस्कार है, (स्तनयित्नवे) महान् गर्जना करते हुये मेघों में व्याप्त आप के लिये नमस्कार है, (ते नमः अस्तु यतः स्वः सं-ईहसे) मुझे सब प्रकार से सुख देने वाले सर्व व्यापक भगवन्! आपको प्रणाम है।

सं वर्चसा पयसा सं तनूभिरगन्महि मनसा सꣳ शिवेन। त्वष्टा सुदत्रो वि दधातु रायोऽनुमार्ष्टु तन्वो यद्विलिष्टम्॥

यजु. 8.14 तथा 16

हम सब लोग (वर्चसा पयसा तनूभिः शिवेन मनसा सं अगन्महि) तेज, जल, दृढ शरीरों और कल्याणकारी शुद्ध मन से

भली प्रकार संयुक्त रहें। (सुदत्रः त्वष्टा रायः विदधातु) उत्तम पदार्थों का दाता सर्वोत्पादक परमेश्वर हमें समस्त ऐश्वर्य प्रदान करे और (तन्वः यत् विलिष्टम् अनुमार्ष्टु) हमारे शरीर में जो कुछ अनिष्टकारक पदार्थ हो उसको दूर करे।

उतेदानीं भगंवन्तः स्यामोत प्रंपित्व उत मध्ये
अह्नांम्। उतोदिंता मघवन्तसूर्यस्य वयं देवानां ꣳ
सुमतौ स्यांम ॥

अथर्व. 3.16.4, *यजु. 34.37*

(मघवन्) हे धनवान् इन्द्र! (वयं इदानीं भगवन्तः स्याम) हम इस समय समस्त ऐश्वर्य एवं ज्ञान युक्त हों (उत प्रपित्व उत मध्ये अह्नाम्) तथा सूर्यास्त के समय एवं मध्याह्न में (उत सूर्यस्य उदिता) और सूर्योदय के समय ऐश्वर्यवान् हों। (वयं देवानां सुमतौ स्याम) हम सब, देवों की सुमति में, उनकी कल्याणमयी कृपा दृष्टि में रहें।

त्वं स्त्री त्वं पुमांनसि त्वं कुंमार उत वां कुमारी।
त्वं जीर्णो दण्डेनं वञ्चसि त्वं जातो भंवसि
विश्वतोंमुखः।

श्वेता. उप. 4.3 *अथर्व. 10.8.27*

हे परमात्मान्! (त्वं स्त्री) आप ही स्त्री हैं, (त्वं पुमान् असि) आप ही पुरुष हैं, (त्वं कुमारः) आप ही कुमार हैं (उत वा कुमारी)

और आप ही कुमारी हैं। (त्वं जीर्णो दण्डेन वञ्चसि) आप ही वृद्ध होने पर दण्ड के सहारे चलते हैं और (त्वं जातः) और आप ही अनेक प्रकार से संसार में उत्पन्न होकर (भवसि विश्वतो मुखः) समस्त प्रकार के मुखों वाले, समस्त प्रकार के रूपों वाले होते हैं।

यदिंन्द्र चित्र मेहनाऽस्ति त्वादांतमद्रिवः।
राधस्तन्नों विदद्वस उभयाहस्त्या भंर॥

साम.8.3.14 ऋग्. 5.39.1

हे (आद्रिवः, चित्र, विदद्-वसो इन्द्र) हे वज्र धारी, विलक्षण सामर्थ्यवान्, तथा धनों के स्वामी इन्द्र ! (यत् मेहना त्वा दातं राधः अस्ति) तुम्हारे द्वारा दिया जाने वाला जो श्रेष्ठ धन है, (तत्) उस धनको (उभया हस्त्या आ भर) दोनों हाथोंसे भरपूर दीजिये।

(राध इति धन नाम)

निरुक्त 4,1 में मेहना का अर्थ लिखा है दर्शनीय तथा दान करने योग्य धन। निरुक्त में मेहना का दूसरा अर्थ लिखा है (**यत् चित्र राधः मे इह न अस्ति**) जो उत्तम धन मेरे पास नहीं है और जो (**त्वा दातं**) जो तुम्हारे द्वारा दिया जा सकता है, उसे दोनों हाथों से भर पूर दीजिये।

श्रेष्ठ धन की कैसी सुन्दर प्रार्थना है यह।

सं गच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम् ।
देवा भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते ॥

ऋग्. 10.191.2

(सं गच्छध्वं) तुम सब संगठित होकर साथ साथ चलो, मिलकर रहो, (सं वदध्वं) परस्पर विरोध को त्यागकर प्रेमपूर्वक वार्तालाप करो, (सं वो मनांसि जानताम्) तुम लोगों का मन समान भाव से शांत होकर ज्ञान प्राप्त करे। (देवा भागं यथा पूर्वे) जिस प्रकार तुम्हारे विद्वान् पूर्वज अपने अपने भाग में आने वाली धन सम्पदा को परस्पर सहमति से ग्रहण किया करते थे, (संजानाना उपासते) उसी प्रकार तुम भी एकमत होकर अपना अपना अंश स्वीकार करते हुये ईश्वर की उपासना करो।

समानो मन्त्रः समितिः समानी समानं मनः सह चित्तमेषाम् । समानं मन्त्रमभि मन्त्रये वः समानेन वो हविषा जुहोमि ॥

ऋग्. 10.191.3

(एषां मन्त्रः समानः समितिः समानी) राष्ट्र के इन सब निवासियों की प्रार्थना एवं विचार समान हों, इनकी सभा तथा आपस में मिलकर बैठने का स्थान एक समान हो। (मनः समानं एषा चित्तं सह) सबका मन एवं चित्त एक समान हो तथा साथ साथ मिलकर कर्म करने वाला हो। (वः समानं मन्त्रं अभि

मन्त्रये) तुम्हें एक समान मन्त्र द्वारा अभिमंत्रित करता हूँ, ज्ञान देता हूँ, (वः समानेन हविषा जुहोमि) तुम्हें एक समान हवि द्वारा यज्ञ करने अर्थात् एक समान संस्कृति द्वारा जीवन रूपी यज्ञ का सम्पादन करने के लिये प्रेरित करता हूँ, सुसंस्कृत करता हूँ।

भद्रमिच्छन्त ऋषयः स्वर्विदस्तपो दीक्षामुपनिषेदुरग्रे। ततो राष्ट्रं बलमोजश्च जातं तदस्मै देवा उपसंनमन्तु॥

अथर्व. 19.41.1

(भद्रम् इच्छन्तः स्वर्विदः ऋषयः) सबके कल्याण की इच्छा करने वाले ज्ञानी ऋषियों ने (अग्रे तपः दीक्षां उप निषेदुः) पूर्व काल में तपस्या की तथा दीक्षा अर्थात् ज्ञान और कर्म की शिक्षा दी, (ततः राष्ट्रं बलं ओजः च जातं) उससे मनुष्यों में राष्ट्र के प्रति प्रेम तथा राष्ट्रीय भावना और प्रजा में राष्ट्रीय बल, ओज एवं सामर्थ्य उत्पन्न हुआ। (तद् अस्मै) अस्तु इस राष्ट्र के प्रति (देवाः उप सं नमन्तु) समस्त विद्वान् विनम्र भाव से श्रद्धावनत हों अर्थात् विनम्र भाव से राष्ट्र की सेवा में तत्पर रहें।

आ ब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायतामा राष्ट्रे राजन्यः शूर इषव्यो ऽतिव्याधी महारथो जायतां दोग्ध्री धेनुर्वोढानड्वानाशुः सप्तिः पुरन्धिर्योषा जिष्णू रथेष्ठाः सभेयो युवास्य यजमानस्य वीरो

जायतां निकामे निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु फलवत्यो न ओषधयः पच्यन्तां योगक्षेमो नः कल्पताम् ॥

यजु.22.22

हे (ब्रह्मन्) महान् शक्तिवाले परमेश्वर! हमारे (राष्ट्रे ब्रह्मवर्चसी ब्राह्मणः आ जायताम्) राष्ट्र में ब्रह्मवर्चसी ब्राह्मण उत्पन्न हों, (शूरः इषव्यः अतिव्याधी महारथः राजन्यः आ जायताम्) शूर, बाण वेधन करने में कुशल, शत्रुओं को भली प्रकार परास्त करने वाले महारथी क्षत्रिय उत्पन्न हों, (अस्य यजमानस्य धेनुः दोग्ध्री) इस यजमान अर्थात् यज्ञ करने वाले पुरुष की गाय दूध देने वाली हो, (अनड्वान् वोढा) बैल वहनशील हों, (सप्तिः आशुः) घोड़ा शीघ्र गमन करने वाला हो, (योषा पुरन्धिः) स्त्री सर्वगुण सम्पन्न नगर का नेतृत्व करने वाली हो, (रथेष्ठाः) रथ में बैठ कर युद्ध करने वाला (जिष्णुः वीरः) वीर विजेता हो, (युवा सभेयः आजायताम्) युवा होकर पराक्रम करने वाला तथा सभा के योग्य उत्तम वक्ता पुत्र उत्पन्न हो, (नः पर्जन्यः निकामे निकामे वर्षतु) हमारे राष्ट्र में समय समय पर आवश्यकतानुसार वृष्टि हो, (नः ओषधयः फलवत्यः पच्यन्ताम्) हमारी ओषधियाँ अर्थात् अन्न की फसलें फलवती होकर परिपक्वता को प्राप्त हों और (नः योगक्षेमः कल्पपताम्) हमारा योगक्षेम उत्तम रीति से होता रहे।

ब्राह्म मुहूर्त में जगकर उषा काल का सौन्दर्य एवं सूर्योदय का मनोहर दृष्य देखकर हमें यह प्रार्थना एवं प्रयास करना चाहिये कि –

मूर्धाहं रयीणां मूर्धा समानानां भूयासम् ।

अथर्व. 16.1(3-1)

मैं सब प्रकार के धनों एवं ऐश्वर्य का स्वामी बनूँ और अपने समान लोगों में सर्व श्रेष्ठ बनूँ।

महत्व पूर्ण वाक्य

1 **अति सर्वत्र वर्जयेत**

किसी भी बात की अति नहीं करनी चाहिये।

2 **आत्मनः प्रतिकूलानि परेषाम् न समाचरेत**

जो व्यवहार अपने को अच्छा नहीं लगता उसे दूसरे के साथ नहीं करना चाहिये।

3 **अजीर्णे भोजनम् विषम्**

जब पहले किया हुआ भोजन पचा न हो तो और भोजन करना विष तुल्य है।

4 **यस्य छाया अमृतं यस्य मृत्युः**

भगवान् की कृपा ही अमृत है और उसकी कृपा हटना ही मृत्यु है।

5 **न वित्तेन तर्पणियो मनुष्यः ॥** कठोपनिषद्

मनुष्य कभी धन से तृप्त नहीं हो सकता।

6 **मन एव मनुष्याणां कारणं बन्ध मोक्षयोः।**

मन ही मनुष्यों के बन्धन और मोक्ष का कारण है।

7 **बुद्धिर्यस्य बलं तस्य।**

जिसके पास बुद्धि है उसी के पास बल है।

8 **विष्णोः कर्माणि पष्यत।**

भगवान् के कर्मों को देखो

9 **परिमितं भूतम् अपरिमितं भव्यम्।** गोपथ ब्राह्मण

भूत काल सीमित है भविष्य असीमित है।

10 **बलीयसी केवलमीश्वरेच्छा।**

केवल ईश्वर की इच्छा ही बलवान होती है।

11 **परोक्षप्रिया हि देवाः।**

देव परोक्ष प्रिय होते हैं वह प्रत्यक्ष आकर कोई काम नहीं करते ।

12 **केवलाघो भवति केवलादी।** ऋग्वेद

भूखे व्यक्ति को न खिला कर स्वयं अकेले खाने वाला पाप खाने वाला होता है।

13 **वयं राष्ट्रे जाग्रयाम पुरोहिताः।**

राष्ट्र में हम जाग्रत रहें और दूसरों को जाग्रत करें।

14 **सत्यमेव देवा अनृतं मनुष्या।** शतपथ ब्राह्मण1/1/1/4

बोलने वाले देवता होते हैं, मनुष्य असत्य बोलने वाले होते हैं।

15 **हेयं दुःखं अनागतम्।**

जो दुःख आया नहीं है उसकी कल्पना करके चिन्तित नहीं होना चाहिये।

16 **माता गुरुतरा भूमेः।**

माता पृथिवी से भी श्रेष्ठ एवं महान होती है।

17 **सा विद्या या विमुक्तये।**

विद्या वह है जिससे मोक्ष प्राप्त हो सके।

18 **योगः कर्मसु कौशलम्।** गीता2/50

योग के अनुसार कर्म करना ही कर्म करने में कुशलता है, दक्षता है।

19 **शीलम् परं भूषणम्।** नीति शतक

अच्छा शील स्वभाव ही सर्व श्रेष्ठ आभूषण होता है।

20 **वचने का दरिद्रता।**

अच्छी बात बोलने में भी क्या दरिद्रता ?

अर्थात् सदैव अच्छी बात बोलना चाहिये।

21 **विद्या धनं सर्व धनं प्रधानम्।**

विद्या ही सर्व श्रेष्ठ धन है।

22 **स्वदेशे पूज्यते राजा विद्वान् सर्वत्र पूज्यते।**

राजा की पूजा अपने देश में होती है किन्तु विद्वान् की पूजा सर्वत्र होती है।

23 **कः परः प्रियवादिनम्**

बोलने वाले के लिये कौन पराया ?

24 **ज्ञानेन हीनाः पशुभिः समानाः।**

ज्ञान से विहीन मनुष्य पशु के समान होता है।

25 **यज्ञोदानंतपश्चैवपावनानिमनीषिणाम्।** गीता

यज्ञ दान और तप मनीषियों को पवित्र करने वाले होते हैं।

26 **जननी जन्म भूमिश्च स्वर्गा दपिगरी यसी ।**

जननी और जन्म भूमि स्वर्ग से भी श्रेष्ठ होती है।

27 **सत्यम् वद धर्मं चर।**

सत्य बोलो धर्म पर आचरण करो।

28 **मातृ देवो भव पितृ देवो भव आचार्य देवो भव आतिथि देवो भव।**

माँ को देवता समझो, पिता को देवता समझो, आचार्य को देवता तुल्य समझो तथा अतिथि को देवता तुल्य समझो।

29 **ऋतं तपः सत्यं तपः दमस्त तपः स्वाध्याय स्तपः।**

परमात्मा के सत्य नियमों के अनुसार कार्य करना तप है, सत्य का पालन करना तप है, बुद्धि मन एवं इन्द्रियों का संयम करना तप है, वेद शास्त्रों का स्वाध्याय करना तप है।

30 ओमिति ब्रह्म।

ओम यह ब्रह्म है

31 ओमिति इदम् सर्वं।

यह समस्त संसार ओम् है।

32 धनात् धर्मः ततः सुखं।

धन से धर्म, धर्म से सुख।

धन से धर्म का पालन करने पर, धर्म से सुख मिलता है।

33नहि कल्याणकृत्कश्चिद् दुर्गतिं तात गच्छति।

गीता6/40

कल्याणकारी कर्म करने वाले की दुर्गति नहीं होती।

सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते।

गीता 2/48

सिद्धि और आसिद्धि अर्थात् सफलता और असफलता में समान बुद्धि रखना योग कहलाता है।

सर्वं सत्ये प्रतिष्ठितं।

सब कुछ सत्य में प्रतिष्ठति है।

प्राणायामः परं तपः।

प्राणायाम परं तप है।

ईशावास्यमिदम् सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।

यजु. 40/1

संसार में जो कुछ भी है सब ईश्वर का है,

तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा।

उसका त्याग भाव से अर्थात् यह समझ कर कि यह हमारा नहीं है ईश्वर का है, उपभोग करो।

मा गृधः कस्यस्विद्धनम्। यजुर्वेद 40/1

किसी के धन को, किसी की वस्तुको मत छीनो।

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतम् समाः ।

यजु. 40/2

अपने कर्तव्यों का पालन करते हुये सौ वर्षों तक जीने की इच्छा करनी चाहिय।

मनुष्य के लिये जिजीविषा अर्थात् जीने की इच्छा अत्यन्त आवश्यक है।

ऋतस्य पन्थां न तरन्ति दुष्कृतः।

दुष्ट लोग सत्य के मार्ग पर नहीं चलते।

वाग्वै सरस्वती।

ज्ञान युक्त पवित्र वाणी ही सरस्वती है।

यशो वै हिरण्यं।

श्रेष्ठ लोगों के लिये उनका यश ही स्वर्ण के समान है।

दीर्घ सूत्री विनश्यति।

बहोत धीरे धीरे काम करने वाले का नाश हो जाता है।

न ऋते शान्तस्य सख्याय देवाः। ऋग्वेद 4/33/1

कठिन परिश्रम के बिना देवतओं की मित्रता, उन्की सहायता प्रप्त नहीं होती।

धर्मार्थ काम मोक्षाणां आरोग्यं मूल मुत्तमम्।

धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष सब का आधार उत्तम स्वास्थ्य ही है।

क्र. सं.	मन्त्र	पृष्ठ सं.	क्र, सं.	मन्त्र	पृष्ठ सं.
1	अग्निमीले	7	25	अन्तरिक्षे	271
2	अग्न आ याहि	8	26	असंख्याता	74
3	अकामो धीरो	10	27	अभित्यं देवं	75
4	अग्नेनय सुपथा	11	28	अद्भ्याः संवृतः	283
5	अग्ने व्रतपते	11,109	29	आयं गौः	92
6	अम्बितमे नदीतमे	18	30	आत्मानं रथिनं	66
7	अग्निं मित्रं	42	31	आ नो भद्राः	33
8	अहानि शं	44	32	आहि ष्मा सूनवे	162
9	अन्ति सन्तं	81	33	आपो हिष्ठा	244
10	अग्निर्देवता	86	34	आत्मा देवानां	271
11	अनुव्रतः पितुः	138	35	आ ब्रह्मन्	293
12	अपि पन्थामगन्महि	157	36	इदंयत्परमे	51
13	अघोरचक्षुः	134	37	इमानि यानि	52
14	अहं सोममाहनसं	192	38	इन्द्रं मित्र	61
15	अहं राष्ट्री संगमनी	192	39	इन्द्रियाणा	106
16	अष्टा चक्रा नवद्वारा	183	40	इयं या परमेष्ठिनं	50
17	अहमेव स्वय मिदम्	194	42	इषे त्वो जेत्वा	276
18	अहं रुद्राय	194	43	इडे रन्ते	135
19	अहं रुद्रेभिर्व	190	44	इदानः पीति	227
20	अहं सुवे	195	45	इषुर्न	240
21	अहमेव वात	195	46	इदमापः	246
22	अप्सु मे सोमो	246	47	इळा सरस्वती	248
23	अभयं मित्राद्	250	48	इन्द्रो विश्वस्य	71
24	अभयं न करोति	250	49	इन्द्र श्रेष्ठानि	20
24	अनागसो	157			

क्र. सं.	मन्त्र	पृष्ठ सं.	क्र, सं.	मन्त्र	पृष्ठ सं
50	इन्द्र वर्धन्तो	237	74	ज्यायस्वन्तः	140
51	इन्द्राय सामगायत	68, 166	75	तमीशानं	35
52	ईशा वास्यं	101	76	तच्चक्षुर्देव	21
53	ईशानं वार्याणि	245	77	तदेवाग्निं	62
54	उप क्षरन्ति	221	78	तथा तदस्तु	161
55	उते दानीं	290	79	तमुष्टुहि	117
56	ऊर्ध्वः	190	80	तद्विष्णो	67
57	उदुत्यं जात	267	81	तद वा अथर्वणः	182
57	उद्यानं ते	225	82	तस्मिन्	184
58	एकं पादं	188	83	तद्विप्रासो	68
59	एतावानस्य	54	84	तत्सवितुर्	78
60	एषो ह देवा	286	85	ततो विराड	292
61	एषा शुभ्रा	275	86	त्वं हि विश्वतो	157
62	ऋता वानं	10	87	त्वं हि नः पिता	161
63	ऋषि बोध	226	88	त्वं जामिर्ज	161
64	कन्येव	275	89	त्वं मिद्रा	71
65	कुर्वन्ने	86	90	त्वं स्त्री	290
66	कृतं मे	224	91	तेजोसि	20
67	किमेता वाचा	239	92	दिवो विष्णा	19
68	गायन्तित्वा	70	93	देवो देवा नाम	273
69	चत्वारी श्रङ्गा	93	94	देव सवितः	79
70	चित्रं देवानां	276	95	द्वासुपर्णा	85
71	चन्द्रमा मनसो	281	96	दोषो गाय बृहत्	167
72	जिह्वया अग्रे	232	97	दृष्ट्वा रूपे	112
73	जज्ञिष इत्था	240	98	देवस्य चेततो	78

क्र. सं.	मन्त्र	पृष्ठ सं.	क्र, सं.	मन्त्र	पृष्ठ सं.
99	हते हं ह मा	289	126	प्रभ्राज माना	185
100	देवस्य त्वा	223	127	प्राणाय नमो	189
101	देवानां भद्रा	34	128	ब्रह्म चर्येण	118
102	दिवियो गन्धर्वः		129	ब्रेहन्नेषाम्	156
103	न द्वितीयो न	61	130	भद्रं कर्णेभि	37
104	नमस्ते अस्तु	289	131	भरेषु इन्द्रं	48
105	न पन्चमो	61	132	मधुवाता	231
106	नाष्टमो	61	133	मधुनक्तम्	231
107	नमः शंभवाय	2	134	मधुमान्नो	232
108	न देवानाम्	231	135	मधुमती	233
109	नमस्ते रुद्र	72	136	मा मा हिं सी	14
110	नमस्ते अस्तु	286	137	मूर्धाहं रयीणां	295
111	न तस्य प्रतिमा	285	138	मयोदधे	274
112	नाभ्या आसी	281	139	मा भ्राता	139
113	प्रजा पते नत्व	16	140	मोघमन्नम्	145
114	प्र सो अग्नि	274			
115	पुन्नतु मा	121			
116	प्रजा पतिश्चरति	284			
117	प्रतुष्टं	252			
118	पुरुरवो	241			
119	प्रियं मा कृणु	227			
120	प्राता रत्नं	220			
121	प्राणायनमो	189			
122	पुरुष एव इदं	58			
123	परिमाग्ने	219			
124	पुण्डरीकं	185			
125	प्राणा पानौ	180			

क्र. सं.	मन्त्र	पृष्ट संख्या	क्र. सं.	मन्त्र	पृष्ट संख्या
137	यो भूतं च	1	165	योवः शिवतमो	244
138	यस्य भूमिः	1	166	यत इन्द्र भयामहे	249
139	यस्य सूर्यश्चक्षु	1	167	ये जनेषु मतिम्लव	251
140	यस्य वातः	2	168	यो अस्मभ्यम	251
141	यस्येमे हिमवन्तो	14	169	ये रूपाणि	253
142	येन द्यौरुग्रा	15	170	याते रुद्र	72
143	ये देवानां	40	171	यामिषु गिरिशन्त	73
144	येभ्यो माता	40	172	यो अग्नौ	75
145	यन्मे छिद्रं	43	173	ये त्रिषप्ता	278
146	यो नः पिता	63	174	यो देवेभ्य	284
147	यथेमां वाचं	89	175	यस्मान्न जात	286
148	यस्तुसर्वाणि	104	176	यदिन्द्र चित्र	291
149	यज्जाग्रतो	129	177	रूपं रूपं	69
150	येन कर्माणि	130	178	वेनस्तत्प	288
151	यत्प्रज्ञान मुतचेतो	131	179	वेदाह मेतं	9
152	येनेदं भूतं	131	180	विश्वतश्चक्षुरुत	9
153	यस्मिन्नृचः	131	181	विश्वानि देव	12
154	येन देवा	139	182	विश्वेदेवाः	38
155	य आधाय	144	183	विधुं दद्राणं	80
156	यस्तिष्ठति	154	184	विद्यां च अविद्यां	105
157	यदि जाग्रद्	158	185	वायु रनिलं	54
158	यद्ग्रामे यदरन्ये	158	186	विष्णोः कर्माणि	162
159	यद् विद्वांसो	159	187	वृषा शोणो	236
160	यथा वाश्च्याक्यति	164	189	विश्वम्भरा	242
161	युन्जते मन उत	168	190	विश्वारूपाणि	264
162	युजे वां ब्रह्म	169	191	वात आ वात	270
163	यज्ञेन यज्ञमय	174	192	विभक्तारं	7
164	यदा त्वष्टा	181	193	सहस्र शीर्षा	8,279

क्र. सं.	मन्त्र	पृष्ठ संख्या	क्र. सं.	मन्त्र	पृष्ट संख्या
194	या मा लक्ष्मीः	203	201	सनोबन्धुर्	17
195	यशा इन्दो	208	202	स्वस्ति न इन्द्रो	36
196	यशो मा द्यावा	209	203	स्वस्तिनो मिमीता	37
197	यधेन्द्रो द्यावा	209	204	स्वस्तये वायु	38
205	स्वस्ति मित्रा	39	237	शतमिन्नु	217
206	स्वस्ति पन्थां	39,216	238	शिवे न वचसा	267
207	सुत्रमाणं	42	239	हिरण्य गर्भः	12
208	स्वोना पृथिवी	48	240	हिरण्यमयेन	99
209	सनः पवस्व	49	241	हये जाये	239
210	सत्ये नो त्तभिता	110	242	हिरण्य पाणि	271
211	सत्यस्य नावः	100	243	धाता दधातु	19
212	स्तुता मया	114	244	धूरसि धूर्व	238
213	स इद्ध्रोजो	144	245	श्रद्धयाग्निः	102
214	सहस्रधार	155	246	दृते दृं ह	286
215	सप्त मर्यादा	159	247	दृष्टवा रूपे	101
216	सहस्र साकं	154	248	द्यौः शान्ति	52
217	संसिचो नाम	174	250	**यद् वदामि**	243
219	स्वं वाजिंस्तन्वं	215	251	**यआत्मदा**	**13**
220	सप्तत्वा	255	252	**यः प्राणतो**	**13**
221	संवर्चसा	286	253	**यस्माज्जातं न**	**287**
222	संगच्छद्ध्वं	289	254	**या मा लक्ष्मीः**	**115**
223	समानो मन्त्रः	290	255	**यशा इन्द्रो**	**221**
224	सुमित्रियान	236	256	**यशो मा द्यावा**	**222**
225	सोमह पवते	222	257	यथेन्द्रो	222
226	शिवा नः	17	258	यस्याः पुरो	
227	शं नो मित्रः	43	259	रसाय्यः पयसा	236
228	शं नो वातः	44	229	शं नः सूर्य	45
230	शं नो अदितिर्	45	231	शं नो देवी	46,244
232	शं नो ग्रहा	46	233	शं रुद्राः	47
234	शं नो भगः	48	235	शान्तानि	49
236	शतहस्त	143			

सभी पुस्तकें केवल लागत मूल्य पर उपलब्ध करायी जाती हैं क्योंकि हमारा उद्देश्य वैदिक ज्ञान से अवगत कराना है, लाभ अर्जित करना नहीं।

हमारी अन्य पुस्तकें	मूल्य
1.**यजुर्वेद (अन्तिम अध्याय) ईशावास्योपनिषद्**	- 120
2. **सावित्री अथवा गायत्री महान्त्र**	- 100
3. **प्रेमामृत**	- 100
4. **वेद सुरभि**	- 120
5. **वेदों आदि में मिलावट की गंभीर समस्या**	- 40
6. **यज्ञानुराग**	- 100
7. **वैदिक धर्म का वास्तविक स्वरूप**	- 140
8. **शुक्ल यजुर्वेद में धूर्तों द्वारा मिलाये गये**	- 40

75 निकृष्ट मन्त्रों को हटाये जाने हेतु सभी के सहयोग के लिये विनम्र प्रार्थना

एतद्ध्येवाक्षरं ब्रह्म एतद्ध्येवाक्षरं परम् ।
एतद्ध्येवाक्षरं ज्ञात्वा यो यदिच्छति तस्य तत् ॥

यह अक्षर ओम् ही ब्रह्म है, यह अक्षर ही सर्वश्रेष्ठ है, इस अक्षर को जानकर, जो जिस वस्तु की इच्छा करता है, वह उसको प्राप्त हो जाती है अर्थात् इसके ज्ञान तथा इसकी उपासना से पुरुष को अभीष्ट फल एवं कामना की प्राप्ति होती है।

तस्य भासा सर्वमिदं विभाति ॥

उसी के प्रकाश से यह समस्त जगत् प्रकाशित होता है, आलोकित एवं सुशोभित होता है।

विधुशेखर त्रिवेदी I.A.S (अ. प्रा.)

मो. 9453849042 अध्यक्ष

6B वृन्दावन लखनऊ पं. उमादत्त त्रिवेदी वेद विद्यापीठ

226029